# शासन समुद्र

भाग-२ (क)

मुनि नवरत्न

श्री जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा प्रकाशन

शासन-समुद्र भाग २ (क) में समाहित हैं। उनका क्रमबद्ध अध्ययन कर जिज्ञासु-जन लाभान्वित होंगे।

अंत में अपने जीवन-निर्माता, भाग्य-विधाता, रत्नत्रयी के दाता आचार्यवर्य तुलसी के चरणों में नमन करता हुआ उनके प्रति हार्दिक आभार प्रकट करता हूं कि जिन्होंने जयाचार्य निर्वाण शताब्दी समारोह की मंगल वेला में जयाचार्य की विशालतम साहित्य शृंखला 'शासन-समुद्र' को संलग्नता का रूप दिया। जिसके परिणामस्वरूप ही आज वह जन-जन की दृष्टि का विषय बना है। मैं इसे आचार्यप्रवर की महती कृपा दृष्टि का सुफल मानता हूं। उनके प्रति अंतःकरण के भावों से समर्पित होता हुआ यही कामना करता हूं कि गुरुदेव के आशीर्वाद व मार्गदर्शन में मैं अपने चरण उत्तरोत्तर आगे बढ़ाता रहूं। ग्रन्थ के प्रूफ-संशोधन में साध्वी सोमलताजी ने अत्यन्त निष्ठा एवं श्रम पूर्वक कार्य किया है।

भिक्षु-विहार (स्वास्थ्य निकेतन)
जैन विश्व भारती
लाडनूं
१ जनवरी, १९८२

मुनि नवरत्नमल

अन्तेवासी शिष्य हुए। स्वामीजी का भी उन्हें सौहार्द भरा अमित वात्सल्य और स्नेह मिला। दोनों का इतना गहरा एकीभाव हो गया कि उनकी पारस्परिक प्रीति वीर-गौतम की उपमा को चरितार्थ करने लगी। जयाचार्य ने उसे अपनी अनेक कृतियों में दोहराते हुए लिखा है—'भिक्षु ने भारीमाल, वीर गोयम नी जोड़ी रे'। 'एहवी बीजें प्रीतड़ी, जेहवी भिक्खु भारीमालां रे।'

भारीमालजी स्वामी हर समय और हर स्थिति में स्वामीजी के अविच्छिन्न सहयोगी रहे। आन्तरिक श्रद्धा, भक्ति और विनम्र भावों से वे स्वामीजी द्वारा जितना ज्ञान, अनुभव, क्षमता एवं सद्गुणों का अमृत ले सके उतना उन्होंने बाधुबुद्धि से लिया। स्वामी जी उन्हें परम विनीत, अत्यंत श्रद्धा-निष्ठ और सभी दृष्टियों से योग्य समझकर जितना दे सके उतना उन्होंने कल्पवृक्ष की तरह खुले दिल से दिया। सं० १८३२ में उन्हें युवाचार्य पद पर मनोनीत किया। २८ साल तक आचार्य एवं युवाचार्य की वह जोड़ी तीर्थ चतुष्टय को विकसित करती रही। सं० १८६० भाद्रव शुक्ला १३ को सिरियारी में स्वामीजी का स्वर्गवास हुआ और भारीमाल स्वामी उनके आसन पर आरूढ़ होकर तेरापंथ के दूसरे आचार्य के रूप में विभूषित हुए।[1]

स्वामीजी के युग में अनेक उतार-चढ़ाव आते रहे पर आचार्य भारीमालजी का शासनकाल शांति-वातावरण-मय और जमा-जमाया, आचार्य भिक्षु की ख्याति को बढ़ाने वाला एवं बड़ा प्रभावशाली रहा। उनके समय में ३८ साधु और ४४ साध्वियों[2] की दीक्षा हुई। उनमें अनेक साधु-साध्वियां उच्च कोटि के साधक, घोर तपस्वी, अग्रणी एवं शासन-प्रभावक हुए जिन्होंने अपनी बलवती साधना व परिश्रम की बूंदों से शासन रूपी बगीचे को सींचा और उसकी सुषमा को बढ़ाया। उन्हीं शिष्यों में एक मुनि जीतमल जी थे, जो तेरापंथ के चतुर्थ आचार्य बने और संघ को सर्वतोमुखी विकास के शिखर पर चढ़ाया और पूर्वाचार्यों के नाम को बहुत ही उजागर किया।

आचार्य भारीमालजी के शिष्यों के मधुर, रसीले और प्रेरक जीवन प्रसंग प्रस्तुत हैं इस शासन-समुद्र भाग २ (क) तथा (ख) ग्रंथ में। जयाचार्य की यशोगाथाएं आकाश में नक्षत्रमाला की तरह अनगिन होने से उनके सुदीर्घ स्वर्णिम पृष्ठ शासन-समुद्र भाग २ (ख) पुस्तक में सजोए गए हैं। इससे पाठकों को उनके महान् यशस्वी और बहुमुखी जीवन को पढ़ने में अधिक सुविधा रहेगी।

जयाचार्य (क्रमांक १५) के अतिरिक्त ३७ साधुओं की जीवन घटनावलियां

---

१. आचार्यश्री भारीमाल जी का जीवन-वृत्त प्रकाशित 'शासन-समुद्र' भाग १ (क) पृ० २१३ से ३८० में देखें।

२. साध्वियों के जीवन-वृतान्त 'शासन-समुद्र' भाग २ (साध्वियां) में पढ़ें।

# प्रकाशकीय

तेरापथ धर्मसघ का इतिहास स्वर्णाक्षरो मे अकित करने योग्य है। धर्मसघ के महामनस्वी आचार्यों, साधु-साध्वियों तथा श्रावक श्राविकाओं ने समय-समय पर अपने त्याग एव बलिदान से इसके गौरव को बढाया है। युग प्रधान आचार्य तुलसी के कुशल नेतृत्व मे विगत चार दशकों मे हमारे धर्मसघ ने जो विकास किया है, उसे हम कुछ पृष्ठो मे ही अकित नही कर सकते। शिक्षा, साहित्य, शोध, सेवा और साधना के क्षेत्र मे हमारे धर्मसघ ने अभूतपूर्व प्रगति की है।

तेरापथ धर्मसंघ का इतिहास व्यवस्थित और सुसपादित होकर जनता के सामने आए, यह बहुत अपेक्षित था। अन्यान्य कार्यों मे व्यस्त रहते हुए भी आचार्य प्रवर का ध्यान इस ओर गया। आपने अत्यन्त कृपा करके मुनिश्री नवरत्नमलजी को इस कार्य के लिए प्रेरित किया। मुनिश्री ने बडी निष्ठा, लगन, श्रम एव विद्वतापूर्ण ढग से इस कार्य को सपन्न किया। कुछ समय पूर्व ही 'शासन-समुद्र' भाग-१ (क) एव (ख) प्रकाशित हुए हैं। पाठको ने दोनो ग्रन्थों को बड़े आदर के साथ स्वीकार किया है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि 'शासन-समुद्र' भाग-२ (क) एव (ख) को भी उसी रूप मे स्वीकार करेंगे।

मैं श्रद्धास्पद आचार्यवर के प्रति हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करता हू, जिनकी असीम अनुकपा से यह इतिहास-ग्रन्थ महासभा को प्रकाशन के लिए प्राप्त हुआ। आशा है ऐसी ही कृपा आपकी सदैव बनी रहेगी।


उत्तमचन्द सेठिया

अध्यक्ष

श्री जैन श्वेताम्बर तेरापथी महासभा, कलकत्ता

दीक्षा दी कुछ हाथ से देती 'प्रगात' गवाह।
नौजवान वत् हृदय में भर असीम उत्साह ॥४॥

दोहा

तपश्चरण में श्रमण ने, चरण बढ़ाये खूब।
विरति भावना से खिले, जैसे वन की दूब ॥५॥
पुर सरिता वत् विचरते, करते पर उपकार।
मरु धरती में आ गये ऋषिवर आखिरकार ॥६॥
हुआ असाता योग से, तन में पक्षाघात।
तप जप में रम सह रहे, समभावों के साथ ॥७॥
'चरपटिया' में कर दिया, अन्तिम चातुर्मास।
परिचर्या में आपकी, चार सत थे खास ॥८॥

छप्पय

आये चल दूधोड में वर्षा ऋतु के बाद।
की चालू सलेखना धर साहस साल्हाद।
धर साहस साल्हाद किया है आत्मालोचन।
पाया मरण समाधि व्याधि का हुआ विमोचन।
कर पाये अच्छी तरह सयम का निर्वाह।
नौजवान वत् हृदय में भर असीम उत्साह ॥९॥
विद नवमी वैसाख की साल पाच की भव्य।
पहुंचे पुर दूधोड से स्वर्ग सदन मे नव्य।
स्वर्ग सदन में नव्य परम चरमोत्सव छाया।
'जय' ने रच दी ढाल सुयश मुनिवर का गाया।
वर्ष पांच चालीस से पूर्ण हुई सब चाह।
नौजवान वत् हृदय में भर असीम उत्साह ॥१०॥

## ५१।२।२ मुनिश्री जीवणजी (सांचोर)

(संयम पर्याय १८६१-१८६२)

लय—कोटि कोटि कण्ठों से ···

धन्य धन्य ऋषि जीवन ने पा सयम का वरदान रे।
पन्द्रह वर्षों मे ही अपना किया आत्म-उत्थान रे ॥ध्रुवपद॥
था सांचोर ग्राम जीवन का मारवाड़ मे नामी।
श्री श्रीमाल गोत्र परिजन का ओसवश अनुगामी।
मां 'उगरां' २ था सतीदासजी पितृवर का
अभिधान रे ॥ धन्य ॥१॥

क्रमश बड़े हुए तब उनकी अन्तर आग्रँ उमड़ी।
इच्छा हुई चरण लेने की विरति भावना उमड़ी।
पर सच्चे २ मुनि निकट न कोई जिनका सही विधान रे ॥२॥

तेरापथी मुनियों का सुन नाम हुई जिज्ञासा।
सोचा पहले कर परीक्षा कैसा अन्तर पाशा।
फिर सिक्का २ गुरु का शिर धारू चढ़ू ऊर्ध्व सोपान रे ॥३॥

बिना परीक्षा दो पैसा का छोटा सा बर्तन भी।
नही खरीदता समझदार नर भूल चूक कर कब ही।
तो आवश्यक २ देव-धर्म गुरु की करना पहचान रे ॥४॥

ऐसा सोच जोधपुर आये, स्थानक मे पहुचाये।
जयमलजी के शिष्यों से मिल बातचीत करपाये।
किन्तु वहा २ सतोष जनक कुछ मिला न तत्त्व प्रधान रे ॥५॥

पाली मे जा तेरापथी श्रावक जन से पूछा।
ऐसे साधु बताओ जिनका साधु-क्रिया-बल ऊंचा।
वे बोले २ हैं भिक्षु सघ के प्रतिनिधि मुनि गुणवान रे ॥६॥

३ सं० १८७१ में आचार्य श्री ने उनका सिंघाड़ा बनाकर सं० १८७२ का
अलग चातुर्मास कराया।'

उन्होंने सं० १८७२ का चातुर्मास देवगढ़ में किया। सं० १८७३ का भी बड़े
मुनों के कल्प में देवगढ़ में ही किया। बड़े संत मुनि जीवोजी (४६) उनके साथ
थे। यद्यपि मुनि जीवोजी के आचारांग, निशीथ आदि सूत्र पढ़े हुए नहीं थे
परन्तु दीक्षा पर्याय में बड़े होने से मुनि जवानजी के दूसरे चातुर्मास-प्रवास के कल्प
में सहायक बन गए।

मुनिश्री ने मारवाड़, मेवाड़, मालवा, ढूंढाड़ तथा थली प्रदेश में विचर कर
अनेक व्यक्तियों को सुलभबोधि व श्रावक बनाया और कइयों को दीक्षा दी।'

(प्राचीन पत्र के आधार से)

सं० १८७४ में मुनिश्री मोतीजी बड़ा (७७) मोखाग (मोहाखाम) को
कटालिया में दीक्षा दी। इसका ख्यात तथा 'मोतीचंद पचढ़ालिया' ढा० ४ गा०
१२ तथा जवान मुनि गुण व० ढा० १ गा० १६ में उल्लेख है।

मुनिश्री रामसुखजी (१०५) की दीक्षा सं० १८८६ आसोज सुदि १० को

---

हेतु दृष्टांत कला घणी, सूत्रां नीं रहिस उदार।
हजारा ग्रंथ मूहडै सीखिया, याद करै नर नार॥

(गुण० व० ढा० १ गा० १५)

ख्यात में उनके लिए लिखा है—"बड़ा भण्या गुण्या, हीमतवान वखाण
वाणी री कला घणी, शास्त्र की धारणा बड़ी जबर, चरचावादी, परिषद में
सूरवीर, हेतु दृष्टान्त री कला बड़ी जबर।"

1. एकोतरा रै वर्स विचारो रे, पूज कीधो है न्यारो सिंघाड़ो रे।
पछै कियो घणो उपगारो॥

(गुण व० ढा० २ गा० ५)

भारीमाल नृप हेम नीं, सेव करी बहु मास।
सवत् अठारै बोहितरै, न्यारो करायो चौमास॥

(गु० व० ढा० १ गा० १२)

2. मुरधर मेवाड़ नें मालवो, हाड़ोती ढूंढार।
थाट किया थली देस में, एहवो जवान अणगार॥
घणां नैं दीयो साधुपणो, श्रावक बोहला कीध।
सुलभबोधी बहु नैं करी, जग मांहै जश लीध॥

(गुण व० ढा० १

उक्त पद्य में अनेक व्यक्तियों को दीक्षि...
आदि में कुछ ही नाम प्राप्त ...

### दोहा

सोलह दिन का थोकडा, फिर कर दो उपवास ।
छह दिन कर बेला किया, सावत्सर का खास ॥१६॥

शुक्ल अष्टमी भाद्र की, पचखे है दिन सात ।
आया है दिन पूर्णिमा, लाया स्वर्ण प्रभात ॥१७॥
थोडा अजवायन लिया, त्याग किया तत्काल ।
आया दिन बावीसवां, अनशन लिया विशाल ॥१८॥
सथारे के समय मे, सज्जन मिले अनेक ।
मुक्त स्वर स्तुति गा रहे, छवि सतयुग की देख ॥१९॥
गण की वढी प्रभावना, हुआ धर्म उद्योत।
भाई-बहनों में चला, त्याग तपोमय स्रोत ॥२०॥

लय—कोटि-कोटि कठो से···

बढते-चढ़ते परिणामों से दिवस अठारह बीते।
केवल पन्द्रह पक्षों मे सब बाजी जीवन जीते।
कार्तिक विद २ एकम को पाया पडित-मरण महान्[1] रे ॥२१॥

### दोहा

श्रावक पनजी ने रची, सुदर ढालें चार।
उनके जीवन वृत्त का, किया बहुत विस्तार[2] ॥२२॥

साधु उनकी परिचर्या में थे । १ मुनि उत्तमचंदजी (६०), २. बड़ा मोतीजी (७७) ३. जुहारजी (१२३) ४ छोटूजी (१४८) ।

(गुण वर्णन ढा० १ गा० २० से २२ तथा ढा० २ गा० १४ से १६ के आधार से)

चातुर्मास के पश्चात् चरपटिया से विहार कर पोष महीने में मुनिश्री 'डूघोड़' पधारे । वहां उन्होंने संलेखना तप चालू किया । उसमें उपवास अनेक, बेले ५ चोले २ तेले ४ और १ पचोला किया । फिर आत्मालोचन कर आत्म-समाधि में लीन हो गए ।

(गुण वर्णन ढा० १ गा० २३ से २६ के आधार से)

डूघोड़ में सं० १६०५ वैसाख कृष्णा ६ को पश्चिम रात्रि के समय परम शान्तिपूर्वक उन्होंने स्वर्ग-प्रस्थान कर दिया । लोगों ने २५ खंड की मंडी बनाकर उनके शरीर का दाह संस्कार किया । उनका साधना काल पैंतालीस वर्षों का रहा ।'

जयाचार्य ने मुनिश्री के गुणानुवाद की दो ढालें बनाईं । उनमें उनकी विविध-विशेषताओं का उल्लेख किया है ।

---

१. संमत उगणीसै पांचे समैं, वैशाख विद नवमी सार ।
पाछिली निशि परभव गया, वरत्या जै-जै कार ।
पचीस खंडी मंडी करी, जाणक देव विमाण ।
ए तो किरतब संसार ना, धर्म तो अंश म जांण ॥
(गुण ढा० १ गा० २६, २७)

वर्ष पैंतालीस आसरै, पाल्यो संजम भार ।
जन्म सुधारयो महामुनि, पयवर गांम मझार ॥
(गुण ढा० २ दो० ५)

बड़ी पाडु रा चरण हरसटे, मोड़ा नाम जवानो रे ।
उगणीसैं पांचे डुधारे मे, परभव कीध पयाणो रे ॥
(शासन [illegible]

### दोहा

सोलह दिन का थोकडा, फिर कर दो उपवास ।
छह दिन कर बेला किया, सावत्सर का खास ॥१६॥
शुक्ल अष्टमी भाद्र की, पचखे [हैं दिन सात ।
आया है दिन पूर्णिमा, लाया स्वर्ण प्रभात ॥१७॥
थोड़ा अजवायन लिया, त्याग किया तत्काल ।
आया दिन बावीसवा, अनशन लिया विशाल ॥१८॥
संथारे के समय में, सज्जन मिले अनेक ।
मुक्त स्वर स्तुति गा रहे, छवि सतयुग की देख ॥१९॥
गण की बढी प्रभावना, हुआ धर्म उद्योत।
भाई-बहनों मे चला, त्याग तपोमय स्रोत ॥२०॥

लय—कोटि-कोटि कंठों से…

बढते-चढ़ते परिणामों से दिवस अठारह बीते।
केवल पन्द्रह पक्षो मे सब बाजी जीवन जीते।
कार्तिक विद २ एकम को पाया पडित-मरण महान्' रे ॥२१॥

### दोहा

श्रावक पनजी ने रची, सुदर ढालें चार।
उनके जीवन वृत्त का, किया बहुत विस्तार' ॥२२॥

भिक्षु-शिष्य मुनि हेम पता पर पावस हित
मर्म साधना का श्रेयस्कर तुमको समझा
कुछ दिन में २ आषाढ़ मास में आये हेम उद्यान रे ॥७॥
जीवन ने कर दर्शन मुनि की गतिविधि सारी जानी।
निर्णय किया साधु आत्मार्थी है ये ज्ञानी ध्यानी।
चरणों में २ झुककर कहा—मुझे दे मुनिवर! चरण-निधान रे ॥८॥

**दोहा**

मुनि श्री बोले सीख लो, पहले तात्त्विक ज्ञान।
फिर सम्मति ले स्वजन की, संयम का संधान ॥९॥
आज्ञा हो परिवार की, दीक्षा जो दें आप।
तो न रहूं मैं गेह में, नियम ले रहा साफ ॥१०॥

लय—कोटि-कोटि कण्ठों से ..

दृढ़ संकल्प विकल्प बिना वे अपने घर पहुंचाये।
अनुमति मांगी तब अभिभावक जन ने शीश हिलाये।
जीवन ने २ नव भाव आत्मगत खोल दिये बलवान रे ॥११॥
स्थिर पता में हो जाऊंगा धर्माचरण करूंगा।
स्वयं होंगे जब तक अपनी रोटी मैं खाऊंगा।
घर-घर में २ फिर भिक्षा कर लाऊंगा भोजन-पान रे ॥१२॥
परिजन जन ने सोचा—अब यह नहीं ठहरने वाला।
बड़ी मजीठी रंग हृदय में जो न उतरने वाला।
आज्ञा का २ लिख दिया पत्र तब होकर के हैरान रे ॥१३॥
कार्तिक में वे पाली पहुंचे हेम खबर सुन आये।
फाल्गुन शुक्ल तीज को दीक्षा भागवती दे पाये।
मुनि जीवन २ अब गण गंगा में करते पावन स्नान' रे ॥१४॥
कर पीपाड़ शहर में दर्शन गुरुवर के हरषाये।
हेम संग पावस करने को जैतारण धाम आये'।
मन धन २ गण की निश्रा में सौंप दिया अभिमान रे ॥१५॥

बावीसमें दिन पचखियो, संथारो बड़भागी हो।
सतरै दिन रो आवियो, दिन गुणचाली सागी हो।
जिनमत महिमा जागी हो॥
(हेम नवरसो ढा० ४ गा० १०, ११)

पंडित-मरण ढाल

जीवणजी अंतरग में उगम सूं, गुणचालीस दिन अणसण धारी ए।
संवत् अठारै ने बासठे, भारीमाल रो प्रथम शिष्य भारी ए॥
(संत गुणमाला ढा० २-पंडित-मरण ढा० १ गा० ८)

शासन-विलास

जीवण दीधो झोंक, परभव नें पूरे मनें।
साधी सरधो सोय, पनरै पख में कीधो पनें।
जीवण कियो जरूर, संथारो बड़ सूरमें।
कर्म किया चकचूर, दिन गुणचालो सीझियो॥
(शासन-विलास ढा० ३ सो० ३, ४)

ख्यात शासन-प्रभाकर ढा० ४ गा० २६ से ३४ तथा शासन-विलास ढाल ३ गाथा १ की वार्तिका में उनके संलेखना एवं तप अनशन का विवरण इस प्रकार है—

१६ दिन की तपस्या के बाद ३ उपवास किये। फिर दो दिन आहार करके भादवा सुदि ८ को ७ दिन का प्रत्याख्यान किया। भादवा सुदि १५ को पारणे के दिन उन्होंने अचित्त अजवायन मंगाकर ली और उसी समय आसोज वदि १ से १३ तक तीनों आहारों का त्याग कर दिया। चौदहवें दिन संथारा ग्रहण किया। जो अठारह दिन से सम्पन्न हुआ। कुल इकतीस दिन हुए। उनमें १३ दिन संलेखना एवं अठारह दिन अनशन के समझने चाहिए। ७ दिन पूर्व तप के और एक दिन अजवायन लेने का मिलाने से ३९ दिन होते हैं जैसा उपर्युक्त पद्यों में कहा गया है। उपर्युक्त उल्लेखानुसार ख्यात तथा शासन-विलास ढा० ३ गा० २ की वार्तिका में भादवा सुदि ८ के पूर्व की तपस्या में कुछ भिन्नता है पर भादवा सुदि ८ से कार्तिक वदि १ तक ३९ दिनों की गणना में अन्तर नहीं है।

हेम नवरसा में कुल ३९ दिन की संख्या तो ठीक है पर अनशन के सतरह दिन लिखे हैं वहां अठारह दिन होने चाहिए। बावीसवें दिन अनशन प्रारम्भ करने व ३९वें दिन सम्पन्न होने के सम्बन्ध में सभी ग्रंथ एक मत हैं।

४. बलूदा निवासी श्रावक पनजी द्वारा रचित जीवन मुनि गुण वर्णन की चार ढालें 'प्राचीन गीतिका संग्रह' में उल्लिखित हैं तथा चरित्रावली पुस्तक में

ने पारणा करने के लिए कहा। मुनिश्री ने कहा, 'पारणा करने का विचार नहीं
है, थोड़ी अजवायन ला दीजिए। साधुओं ने अजवायन लाकर दी। उन्होंने उसे
लेकर तीनों आहारों का त्याग कर दिया। क्रमशः सोलहवां दिन आया उस दिन
उन्होंने संथारा करना चाहा पर साधु और श्रावकों ने मना किया। उनकी
विनति मानकर उन्होंने संथारा तो नहीं किया पर चार दिन का प्रत्याख्यान कर
दिया। इस तरह करते-करते इक्कीस दिन हो गये। बाईसवें दिन उन्होंने अरिहन्त
सिद्धों की साक्षी से आजीवन अनशन ग्रहण कर लिया। उनके संथारे के उपलक्ष
में त्याग वैराग्य की बहुत वृद्धि हुई। अनेक गांवों के लोग दर्शन करने के लिए
आये। सतयुग की-सी रचना देखकर मुक्त कंठों से मुनि श्री का गुणगान करने
लगे।' मुनिश्री हेमराजजी ने उनको मंगल पाठ सुनाते हुए चार शरणे दिलाये।
उन्होंने सब साधुओं को हाथ जोड़कर वंदना की और बोले—'मेरी भावना दृढ़ है।
अन्तिम उनचालीसवें (अनशन के अठारहवें) दिन उन्होंने हेमराजजी से चारों
आहारों का त्याग कराने के लिये कहा।' सभी ने मना किया पर उन्होंने
दृढ़तापूर्वक मुनि-साक्षी से चारों आहारों का परित्याग कर दिया। फिर सब
साधुओं को वंदना कर एवं सभी जीवों से क्षमा-याचना करते-करते सं० १८६२
कार्तिक वदि १ बुधवार को दिन के अन्तिम दुपहिया के समय जैतारण में वे स्वर्ग
पधार गये।' लगभग साढ़े सात महीनों में आत्म-कल्याण कर लिया। श्रावकों ने
४१ खंडी-मंडी बनाकर विशाल जुलूस के साथ उनके शरीर का दाह-संस्कार
किया।

(जीवण मुनि गुण वर्णन ढा० ४ गा० १ से १६ के आधार से)

हेम नवरसा

शैहर जैतारण बासठे, नवमो चोमासो सागी हो।
नर-नारी समज्या घणां, जीवणजी अन्न त्यागी हो।
बावीस पचख्या वैरागी हो॥

---

१. गुण ग्राम करै मुख सू घणा, धिन-धिन कहै हो आप मोटा अणगार।
चोथा आरा री हिवड़ा बानगी, देखाई हो सामी पांचमे आर॥
(जीवण मुनि गुण वर्णन ढा ४ गा० १३)

२. सर्व साधां नैं वनणा करता थकां, सब जीवां नैं हो खमावता वारूंवार।
इण रीते आऊखो पूरो कियो, समत अठारै हो बरस बासठे विचार॥सा०॥
काती बदी एकम रे दिन, वार जाणो ही बुधवार विचार।
पाछला दुपहिया मे चलता रह्या, जीवणजी हो सैहर जैतारण मझार॥
(जीवण मुनि गुण वर्णन ढा० ४ गा० १७, १८)

## ५३।२।४ मुनि श्री गुलावजी (गोगुंदा)

(सयम पर्याय १८६५-६५)

लय—इम सोचै राय उदाई···।

गुरु का अनुशासन धारा, शासन मे जन्म सुधारा जी। गुरु···
पाया भव सिन्धु किनारा जी। गुरु··· ॥ध्रुवपद॥
मेवाड प्रान्त मे गाया, पुर गोगुदा कहलाया जी।
थे पोरवाल परिवारी, विकसित धार्मिक कुल क्यारी जी। गुरु ॥१॥
वैराग्य भावना उमडी, आभ्यतर आंखें उघड़ी जी।
ली वेणी मुनि से दीक्षा, पाई है सच्ची शिक्षा[1] जी ॥२॥
थे अच्छे ज्ञानी ध्यानी, वन गए मधुर व्याख्यानी जी।
विचरे हो अगुआ भू पर, उपकार किया है बहुतर[2] जी ॥३॥

### दोहा

पाली में पावस किया, दिया धर्म उपदेश।
लिखते इसके विषय में, छप्पय एक महेश[3] ॥४॥

### गीतक-छन्द

अठतर की साल पावस किया उज्जयिनी नगर।
सात सतों से पधारे धर्म की खोली नहर।
आमरण अनशन कराया सत पीथल को वहा।
दिवस पन्द्रह से फला है सुयश-ध्वज फहरा[4] महा ॥५॥
चक्र कर्मों का चला है भाग्य पलटा खा गया।
भावना में विपमता का वेग भीषण आ गया।
भिक्षु गण से पृथक् होकर चरण मणि को खो दिया।
वन गए हैं गृही, धारण वेप फिर यति का किया ॥६॥

१ दीपजी सिरियारी (मारवाड़) के वासी थे।

(ख्यात)

ख्यात, शासन प्रभाकर ढा० ४ सो० ३५ तथा संत विवरणिका में उनका दीक्षा संवत् १८६५ लिखा है पर शासन-विलास ढाल १ गाथा ४१ की वार्तिका में उल्लेख है कि सं० १८६४ के देवगढ़ चातुर्मास में मुनि श्री हेमराजजी के साथ १ मुनि श्री गुलजी (३५) २. भागचन्दजी (४८) और (३) दीपोजी (५२) थे। अन्य कोई दीपोजी नाम के साधु उस समय नहीं थे अतः उनकी दीक्षा सं० १८६३ में ही प्रमाणित होती है।

२ दीपोजी के प्रथम बार गण से पृथक् होने का तथा नई दीक्षा लेकर वापस आने का संवत् नहीं मिलता। लेकिन हेम दृष्टान्त ३४ में उल्लेख है कि संवत् १८६६ की साल मुनि श्री हेमराजजी ने पाली चातुर्मास किया तब वहां ६ साधु थे—१ मुनि श्री हेमराजजी (३६) २. सामजी (२१) ३. रामजी (२३) ४. भागचन्दजी (४८) ५. भोपजी (४६) ६. दीपजी (५२)। चातुर्मास के बाद मुनि श्री हेमराजजी अस्वस्थ होने से विहार नहीं कर सके। उस समय भारीमालजी स्वामी ने अपने पास से मुनि भगजी (४७) और जवानजी (५०) को मुनि श्री हेमराजजी की सेवा में भेजा। बाद में मुनि भगजी और दीपजी भारीमालजी के पास वापस आ गये। इससे लगता है कि दीपोजी उसके बाद ही गण से पृथक् हुए और फिर नई दीक्षा लेकर 'फिर संजम ले मांहि रे' गण में आये।

३ अविनीतता एवं प्रकृति की कठोरता के कारण सं० १८७७ में उन्हें दूसरी बार संघ से अलग किया[1]। सं० १८७७ वैसाख वदि ९ के लेखपत्र पर दीपोजी के हस्ताक्षर नहीं है, इससे लगता है कि उक्त तिथि से पहले उन्हें गण से पृथक् कर दिया गया था।

---

१. "अविनीत, अयोग्य, प्रकृति कठण जाण छोड़्यो सतत्तरे"

(ख्यात)

सिरियारी नो ताहि रे, दीपो चरण लेई टल्यो।
फिर संजम ले मांहि रे, छूटो प्रकृति अजोग थी॥

(शासन-विलास ढा० २ सो० ५)

सं० १८७८ में साध्वी श्री अजबूजी (३०) का चातुर्मास उज्जैन शहर में था। (देखें समीक्षा उनके तथा मुनि पीथलजी (७२) के प्रकरण में)

५. जगत् में होनहार बलवान होती है वह ऐसी स्थिति उत्पन्न कर देती है कि जिसकी संभावना एवं कल्पना भी नहीं की जा सकती। इसके कारण ही मुनि श्री गुलाबजी के जीवन में बड़ी दुर्घटना घटी। वे सं० १८८२ में गण से पृथक् होकर गृहस्थ श्रावक बन गये। समयान्तर से यति हुए। ८ वर्ष पश्चात् वापस उनकी भावना शुद्ध हुई तब सं० १८९० में नई दीक्षा लेकर संघ में आये। बेले-बेले की तपस्या चालू की। पारणे में जौ की रोटी को पानी में डालकर खाते। शेष सब द्रव्य खाने का त्याग कर दिया।

(ख्यात)

६. दो वर्ष तक साधना का क्रम ठीक चला। सं० १८९२ में उन्होंने मुनि श्री अमीचन्दजी (८०) के साथ नाथद्वारा चातुर्मास किया। वहां वे शंकाशील हो गये। गण में ४१ दोष निकाले। मुनि अमीचन्दजी ने एक पन्ने में लिख लिए। चातुर्मास के बाद सात साधुओं से अमीचन्दजी ने खेरवा में आचार्य श्री रायचंदजी के दर्शन कर उपर्युक्त पत्र प्रस्तुत किया। उस समय मुनि श्री जीतमलजी आचार्य श्री के दर्शनार्थ वहां पधारे हुए थे। उन्होंने मुनि गुलाबजी के प्रश्नों का यथार्थ जवाब देकर उन्हें निःशंक कर दिया। प्रायश्चित्त दिलवा कर उनसे एक लेखपत्र करवा लिया। जिसमें आजीवन साधु-साध्वियों के अवर्णवाद बोलने का त्याग करवा दिया[1]।

---

अणसण कराय नैं बोलिया हो, साध श्रावक सुणजो वाय।
पीथेजी अणसण कियो हो, गुण नैं सहु अचरज थाय॥
पनरें दिन रो पीथल भणो हो, अणसण आयो सार।
जिन मार्ग पिण दीप्यो घणो हो, मालव देश मझार॥

(कोदर मुनि गुण वर्णन ढा० ४ गा० ३० से ३४)

१. त्यां अमीचदजी तिह समें, सात संत सूं जोय।
नाथद्वारे चोमास करी, जिहां आया अवलोय।
इकतालीस बोलां तणी, गुलाबजी रे मन माहि।
सक पडी ते बोल सहु, लिख्या पत्र में ताहि।
तास जाब जय दे करी, सक मेटी तिह ठाम।
प्रायछित दे तेहनूं, लिखत करायो ताम।
तिण में संत सतियां तणी, जेह उतरती बात।
करवा जावजीव लग, त्याग किया विख्यात।

(जय सुजश ढा० २२ दो० १ से ४)

१ मुनि श्री गुलाबजी गोगुंदा (मेवाड़) के निवासी और जाति से पोरवाल थे। सं० १८६२ में उन्होंने मुनि श्री वेणीरामजी (२८) द्वारा संयम ग्रहण किया। उनके छोटे भाई ईशरजी (६०) ने सं० १८६६ में उनके बाद दीक्षा ली। (ख्यात)

२ मुनि गुलाबजी गण में अच्छे संत थे। अग्रणी होकर विचरण करते थे। हेतु दृष्टान्तों के आधार पर सरस व्याख्याता थे। सं० १८७१ फाल्गुन वदि १३ को रचित सन्त गुणमाला ढा० १ गा० २४ में जयाचार्य ने उनके लिए लिखा है—

'संत गुलाबजी गण मांहै रे, पालै गुरु नी आण रे।
हेतु दृष्टान्त देवै भला रे, बांचै सरस बखाण रे॥'

३. उन्होंने सम्भवतः सं० १८७८ के पूर्व पाली चातुर्मास किया। इसका इन्द-गढ़ निवासी श्रावक महेशदासजी ने अपने छप्पय में इस प्रकार वर्णन किया है—

गहिरा साधु गुलाबजी सब जीवां सुखदाय।
पाली कीधो प्रेम सूं चौमासो चित लाय।
चौमासो चित लाय त्याग वैराग बधाया।
सूतर अरथ सिद्धंत बहु विध भेद बताया।
हलुकर्मी हर्षे घणा सुणत रयो की वाय।
गहिरा साधु गुलाबजी सब जीवां सुखदाय ॥१७॥

(श्रा० महेश कृत पूजगुणी)

४. सं० १८७८ का मुनि गुलाबजी ने सात साधुओं से नयापुरा (उज्जैन) में चातुर्मास किया। वहां मुनि पीथलजी (७२) 'छोटा' उनके साथ थे। मुनि पीथलजी एक दिन शहर से गोचरी करके वापस नयापुरा आ रहे थे। रास्ते में शारीरिक क्षीणता का अनुभव हुआ तब स्थान पर आकर उन्होंने मुनि गुलाबजी से संथारे के लिए निवेदन किया। मुनि गुलाबजी ने उनकी प्रबल भावना देखकर किसी को पूछे बिना ही तत्काल उन्हें अनशन करवा दिया। फिर साधु एवं श्रावकों को कहा—'पीथलजी ने अनशन कर लिया है।' यह सुनकर सभी आश्चर्य-चकित हुए। पन्द्रह दिनों में उनका कार्य सिद्ध हो गया। जैन शासन का बहुत उद्योत हुआ[1]।

---

१. तपसी कहै कर जोड़ी नै हो, नगर उजैणी चौमास।
गुलाबजी कियो सात सत सूं हो, लघु पीथल त्यांरै पास॥
नयापुरा थी जाय नैं हो, गोचरी शहर में कर पाछा आय।
डील ढीलो थयो जाण नैं हो, पीथल मांग्यो संथारो ताय॥
साध श्रावक बैठा घणा हो, विण किण ही नैं न पूछ्यो ताय।
विण पूछ्यां लघु पीथल भणी हो, दीयो संथारो कराय॥

## ५४।२।५ मुनि श्री मोजीरामजी (गोगुदा)

(सयम पर्याय-१८६५-६६)

लय—होलो खेलो ।

ीराम जी हाक मोजीराम जी, शासन उपवन मे रम कर फूले हो।
मोजीराम जी ...।
साहस से शम रस झूले मे जमकर झूले हो।
मोजीराम जी ॥ ध्रुवपद॥

मेदपाट में पुर गोगुदा, जन्म-भूमि कहलाई हो।
हो विरक्त वेणी मुनि द्वारा, दीक्षा पाई हो'। मो...॥१॥
साधु-क्रिया में कुशल बने हैं, गण गणपति मे निष्ठा हो।
ज्ञान ध्यान की तन्मयता से, वढी प्रतिष्ठा हो॥२॥
किये पाच आगम कंठ स्थित, सीखी साथ 'हुडिया' हो।
वहु वर्षों तक रखे सुरक्षित, कर कर स्मृतिया हो॥३॥
वाक्-पटुता व्याख्यान-कुशलता, चर्चादिक में नामी हो।
उद्यम से उन्नति कर पाये, सद्गुण-धामी हो'॥४॥
अग्रगण्य बन विचरे भू पर, सरितावत् उपकारी हो।
किया वहुत उपकार, सार रस सींचा भारी हो॥५॥
तपः प्रेरणा देते वहुधा, तात्त्विक ज्ञान सिखाते हो।
जन-जन को हित शिक्षा दे सन्मार्ग दिखाते हो'॥६॥
उपवासादिक किया विविध तप, दिन चालीस ऊर्ध्वतर हो।
तप मे भी व्याख्यान दिया है, पौरुष धर कर हो'॥७॥
एक बार की बात-मुनि श्री पुर लावा में ठहरे हो।
पता चला जब कहते मुख से, गुरुवर गहरे हो॥८॥
मोजीराम अभी लावा मे, क्यो ठहरा विन अवसर हो।
करते लोग कदाग्रह, रहना नहीं शुभकर हो॥९॥

प्रकीर्णक पत्र २७ प्रकरण ४ में लिखा है कि मुनि श्री गुलाबजी के शंका पड़ी तब मुनि श्री जीतमलजी ने २७ बोलों का जवाब दिया जिससे उनकी सब शंकाएं मिट गईं।

यह सुनकर अमीचन्दजी बहुत नाराज हो गये। गुलाबजी (जिन्होंने उनको दीक्षा दी थी) के साथ पहले से ही प्रकृतिजन्य मनमुटाव होने के कारण वे उनसे अधिक द्वेष भावना रखने लगे और उन्हें गण से पृथक् करवाने का उपाय सोचने लगे।

७. कर्मों की गति बड़ी विचित्र होती है। वह बड़े-बड़े पुरुषों को भटका देती है। उसने फिर मुनि गुलाबजी को घेर लिया। सं० १८६४ का मुनि गुलाबजी ने ५ ठाणों से पुर (मेवाड़) में चातुर्मास किया। १. मुनि श्री ईशरजी (६०) उनके छोटे भाई, २. उदैरामजी (६४) ३. रामोजी (१००) तथा ४. जोवराजजी (११३) उनके साथ थे। गुलाबजी तपस्या बहुत करते थे। जिसका लोगों में अच्छा प्रभाव था। परन्तु मोहकर्म के उदय से उनके विचार संदिग्ध हो गए। एक दिन भीलवाड़ा के श्रावक भोपजी सिंघी दर्शनार्थ आए तब उन्होंने कहा—'भोपजी! जिस तरह साहूकार के घर में घाटा हो और ऊपर से काम चलाए तो कितने दिन काम चल सकता है?' भोपजी अन्तर भेद को समझ गए और बोले—'घाटा समझने के बाद जो हमेशा उनके साथ रहे तो उसे क्या कहना चाहिए?' यह सुनते ही वे आवेश में आ गए और गण के अवर्णवाद बोलने लगे। मुनि ईशरजी ने उन्हें बहुत रोका तब उस दिन तो रुके पर दूसरे दिन फिर उसी तरह अटसट बोलने लगे। तब मुनि रामजी ने वहां से विहार कर नाथद्वारा में आचार्य ऋषिराय के दर्शन किये। सब समाचार सुनकर आचार्य श्री रायचन्दजी ने युवाचार्य आदि ८ साधुओं से पुर की तरफ विहार कर दिया। कांकड़ोली, गंगापुर होते हुए कारोही पधारे तब भोपजी सिंघी ने दर्शन कर आचार्य श्री से विनती की—'गुलाबजी ने अपने बोलों का संकोच कर कहा है कि मेरे ४ बोलों की शंका है उनके समाधान के समाचार हेमराजजी स्वामी से मंगवा लें, वे जो कहेंगे वह मुझे स्वीकार है।' युवाचार्य श्री जीतमलजी ने कहा—'ये तो प्रारम्भ के ही बोल हैं इनके लिए क्या समाचार मंगवा लें?' दूसरे दिन आचार्य श्री जब पुर पधार रहे थे तब गुलाबजी ने कहलाया एक साधु आकर कह दे कि 'स्वामीजी की बनाई हुई सब मर्यादाएं हमें मान्य हैं तो मैं सम्मुख आकर आपके चरणों में गिर जाऊं।'

युवाचार्यश्री ने कहा—'हमें तो स्वामीजी की सभी मर्यादाएं मान्य हैं। इसके लिए साधुओं को भेजकर क्या कहलाएं।' युवाचार्य श्री ने आचार्य श्री से निवेदन किया—'गुलाबजी सामने आकर पैरों में गिर जाएं तो ठीक है वरना इनसे आहार-पानी का संबंध विच्छेद कर देना है।' लोगों ने ऋषिराय से प्रार्थना की कि आप एक साधु को भेज दें तो क्या आपत्ति है? आचार्यश्री ने उपयुक्त न समझ कर

## ५४।२१५ मुनि श्री मोजीरामजी (गोगुदा)

(सयम पर्याय-१८६५-६६)

लय—होली खेलो···।

मोजीराम जी हाक मोजीराम जी, शासन उपवन मे रम कर फूले हो।
मोजीराम जी ···।
साहस से शम रस झूले में जमकर झूले हो।
मोजीराम जी ।। ध्रुवपद।।

मेदपाट में पुर गोगुदा, जन्म-भूमि कहलाई हो।
हो विरक्त वेणो मुनि द्वारा, दीक्षा पाई हो'। मो···।।१।।
साधु-क्रिया में कुशल बने हैं, गण गणपति में निष्ठा हो।
ज्ञान ध्यान की तन्मयता से, बढी प्रतिष्ठा हो।।२।।
किये पाच आगम कठस्थित, सीखी साथ 'हुडिया' हो।
बहु वर्षो तक रखे सुरक्षित, कर कर स्मृतिया हो।।३।।
वाक्-पटुता व्याख्यान-कुशलता, चर्चादिक मे नामी हो।
उद्यम से उन्नति कर पाये, सद्गुण-धामी हो'।।४।।
अग्रगण्य बन विचरे भू पर, सरितावत् उपकारी हो।
किया बहुत उपकार, सार रस सीचा भारी हो।।५।।
तप: प्रेरणा देते बहुधा, तात्त्विक ज्ञान सिखाते हो।
जन-जन को हित शिक्षा दे सन्मार्ग दिखाते हो'।।६।।
उपवासादिक किया विविध तप, दिन चालीस ऊर्ध्वतर हो।
तप में भी व्याख्यान दिया है, पौरुष धर कर हो'।।७।।
एक बार की बात-मुनि श्री पुर लावा मे ठहरे हो।
पता चला जब कहते मुख से, गुरुवर गहरे हो।।८।।
मोजीराम अभी लावा मे, क्यो ठहरा बिन अवसर हो।
करते लोग कदाग्रह, रहना नही शुभंकर हो।।९।।

ने ऋषिराय के पास आकर जन-समूह में 'तिक्खुत्ता' के पाठ से वंदना कर प्रायश्चित्त मांगा। लोग बड़े आश्चर्यान्वित हुए। गुरुदेव ने प्रायश्चित्त (चातुर्मासिक छेद) देकर उन्हें संघ में सम्मिलित किया।

(जय सुजश ढा० २४, २५ के आधार से)

८ प्रकीर्णक पत्र २७ प्रकरण ४ में लिखा है कि सं० १८७५ में उन्होंने मुनि अमीचंदजी (८०) कोवला वालों को दीक्षा दी।

९ सं० १८९३ फाल्गुन में मुनि श्री हीरजी (८५) ने पुर में अनशन किया। तब मुनि श्री जीवोजी (८६) और गुलाबजी उनकी सेवा में थे।[1]

१० सं० १८९५ पुर में उन्होंने ६ दिन का संथारा कर पंडित-मरण प्राप्त किया।[2] अन्त में अपना जीवन सुधार लिया।

(ख्यात)

ख्यात में उनके सबंध का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

'गुलाबजी सोगुंदा रा पोरवाल ईसरदासजी रा भाई, दीक्षा वेणीरामजी स्वामी १८६५ दीधी। अने १८८२ निकल गृहस्थ श्रावक थयो पछै जती होय १८९० दीक्षा फेर लीधी। बेले-बेले पारणों करणो, पारणा में जवा री रोटी पाणी में घाल नें खावणी और द्रव्य का जावजीव त्याग किया। फेर कर्म जोग सूं पुर में शंका पड़ी, टोला बारे थयो। पछै ऋषिराय महाराज अनें पाटवी जीतमल-जी स्वामी पुर में आय उणा नें ओलखायो। राम (अविनीत राम) लिखत सूत्र री अनेक बाता सूं लोक तो घणकरा समझ गया अनें जोर न चाल्यो। पछै गुलाबजी नें पण बोला रा अनेक जाव देई समझायो। पछै गुलाबजी पगा पड़्या। विनो करी प्राछित लेवा नें त्यार थया जदं चौमासी रो छेद देई माहिनें लिया। पछै तपस्या मोकलो करी, १८९५ संथारो ६ दिन रो आयो।'

शासन प्रभाकर···भारी संत वर्णन ढा० ४ गा० ३६ से ४५ में ख्यात की तरह ही विवरण है।

---

१. सधु बंधव(जीवोजी) गुमान ऋष दम कहै, तपसीजी ही संथारो दुक्करकार।

(हीर मुनि गुण वर्णन ढा० १ गा० १८)

२. गुलाब दीक्षा ग्रही नीकल फुन, चरण नेऊमें वासो रे।

पोरासूमें दस छेद सह नें गण, पुर में परभव वासो रे॥

(शासन-विलास ढा० ३ गा० ६)

४ मुनिश्री ने बहुत तपस्या की। ऊपर मे आछ के आगार से ४० दिन का तप किया। तप के समय भी वे व्याख्यान देते थे।[1]

५. स० १८७७ के पोष महीने मे मुनिश्री स्वरूपचदजी (६२) ने मुनिश्री जीवोजी (८६) गगापुर वालो को जगल मे दीक्षा दी। दीक्षा के समाचार सुनकर जीवोजी के बड़े भाई दीपोजी आवेश मे आ गये। उन्होने लावा आदि ग्रामो मे जाकर शासन एव शासनपति की आलोचना व निन्दा की जिससे वहा के श्रावक लोग उनके पक्ष मे होकर सघ से विमुख हो गये। (इस घटना का विस्तृत वर्णन मुनि श्री जीवोजी और दीपोजी के प्रकरण मे पढ़ें)।

मुनिश्री मोजीरामजी स० १८७१ का चातुर्मास सपन्न कर गुरु दर्शनार्थ राजनगर की तरफ जा रहे थे। रास्ते मे कुछ दिन लावा मे ठहर गये। उस समय आचार्य श्री भारीमालजी काकडोली विराजते थे। उनका चिन्तन था कि लावा के श्रावक अनास्थाशील होकर बहुत उदगल करते हैं, ऐसी स्थिति मे साधु-साध्वियो को वहा नही ठहरना चाहिए। लेकिन मुनि मोजीरामजी को गुरुदेव का अभिप्राय ज्ञात नही था, इसलिए वे कई दिन वहा रुक गये।

जब वे (माघ या फाल्गुन महीने मे) राजनगर मे प्रवेश करने लगे तब आचार्य श्री भारीमालजी ने सब साधु-साध्वियो को आदेश दिया कि मेरी आज्ञा के बिना कोई भी उन्हें वदन न करें। मुनि मोजीरामजी बाजार के बीच स्थान के सम्मुख पहुच गये। सब साधु-साध्वी उनके सम्मुख झाकने लगे पर किसी ने भी उनको वदना नही की। तब वे आश्चर्य और विस्मय भरी नजरो से सब की तरफ देखने लगे।। मन मे विविध कल्पना करते हुए उन्होने भारीमालजी स्वामी को सविनय बद्धाजलि वदन किया। तब आचार्य श्री ने साधु-साध्वियों को उन्हे वदना करने का आदेश दिया। आचार्य प्रवर ने उन्हे उलाहना देते हुए फरमाया—'तुम मेरी दृष्टि के बिना लावा में क्यो रहे?' उन्होने निवेदन किया—'गुरुदेव! मुझे यह जानकारी नही थी।' फिर भी गुरुदेव के कड़े उपालम्भ को उन्होंने भर परिषद् मे बडी क्षमता के साथ सहन किया और आचार्य श्री ने जो प्रायश्चित्त दिया उसे सहर्ष स्वीकार किया।

उनकी गुरु-भक्ति, सघ निष्ठा और सहनशीलता से लोग बड़े प्रभावित हुए। वे कडी परीक्षा मे खरे उतरे और धैर्य पर डटे रहे जिससे उत्तरोत्तर उनके गुणो की अभिवृद्धि हुई और चार तीर्थ मे अच्छी प्रतिष्ठा बढ़ी।

(दीपोजी (८५) जीवोजी (८६) की ख्यात से)

---

१. पोते पिण बहु तपस्या कीधी, चालीस ताई हद लीधी।
आछ आगारे प्रसीधी रे, तपस्या मे वखाण छोड्यो नही॥
(जय कृत गुण वर्णन ढा० १ गा० ८)

१ मुनिश्री मोजीरामजी गोगुंदा (मेवाड़) के वासी थे। उन्होंने मुनि श्री वेणीरामजी (२८) के पास दीक्षा ग्रहण की।

(ख्यात, शासन प्रभाकर ढा० ४ गा० ४९)

जयाचार्य विरचित मोजी मुनि गुण वर्णन ढा० १ गाथा ११ में उनका दीक्षा सं० १८६७ लिखा है—

"सतसठे संजम लीधो, तप जप बहुलो कीधो।
जीत नगारो दीधो रे, कांइ समत अठारै लिखाणुं रे ए॥"

परन्तु ध्यान में उनके पहले की दीक्षा सं० १८६५ की और बाद की सं० १८६५ की है अतः उनका दीक्षा संवत् १८६५ ही अधिक सगत लगता है। स्वयं जयाचार्य ने अपनी कृति 'संत गुण माला' ढा० १ गा० २५ में पहले मुनि मोजीरामजी के और पीछे गा० २६ में मुनि पीथलजी (क्र० ५६ सं० १८६५ में दीक्षित) के नाम का उल्लेख किया है, इससे भी मोजीरामजी का दीक्षा संवत् १८६५ ही सिद्ध होता है। उक्त ढाल में 'सतसठे संजम लीधो' के स्थान पर 'पैंसठे संजम लीधो' होना चाहिए।

मुनि जीवोजी (८६) ने उनकी गुण वर्णन ढाल में लिखा है कि वे बाल-ब्रह्मचारी थे और तरुण वय में दीक्षित हुए[1]। इससे स्पष्ट हो जाता है कि वे अविवाहित वय में दीक्षित हुए।

२ उन्होंने आवश्यक, दशवैकालिक, उत्तराध्ययन, बृहत्कल्प, आचारांग का दूसरा श्रुतस्कंध तथा अनेक सूत्रों की हुंडियां (संक्षिप्त नोंध रूप) कंठस्थ कीं। आगमों के अतिरिक्त आख्यानादिक के हजारों पद्य सीखे। अनेक वर्षों तक मुखस्थ ज्ञान का स्वाध्याय (पुनरावर्तन) करते रहे। उनकी व्याख्यान कला व चर्चा-शैली आकर्षक थी। लोगों को ज्ञान-ध्यान सिखाने का तथा त्याग-तपस्या द्वारा उनमें अध्यात्म भावना भरने का अच्छा प्रयत्न करते थे।

(जयाचार्य कृत गुण वर्णन ढा० १ गा० १ से ७ के आधार से)

३. मुनिश्री सं० १८७५ के पूर्व अग्रणी हो गये थे। सं० १८७५ में उनका चतुर्मास कोचला ग्राम में था। वहां मुनि श्री जीवोजी (४६) और माणकचंदजी (७१) उनके साथ थे। ऐसा उल्लेख शासन विलास ढा० १ गा० ५१ की वार्तिका में है। उन्होंने अनेक क्षेत्रों में विचरकर अच्छा उपकार किया[2]।

---

१. मुनि वासी गोगुंदा ना वाजिया रे, तरुणपणां में व्रत धार रे।
बाल ब्रह्मचारी बुध आगरी रे, हुवा-हुवा गुणां रा भंडार रे॥

(गुण वर्णन ढा० १ गा० २)

२. विचर्या मरुधर मेवाड़ो, हाड़ोती थली ढुंढारो।
वलि मालव देश मझारो रे, उपगार कियो स्वामी अति घणो॥

(जय कृत गुण वर्णन ढा० १ गा० ६)

## ५५।२।६ श्री जयचंदजी (कंटालिया)

(दीक्षा सं० १८६५-१८६६ मे गणबाहर)

रामायण-छन्द

कंटालिया ग्राम के वासी स्त्री को तज करके जयचंद।
पाली में मुनि हेम पास में साधु बने घर विरति अमंद'।
दस दिन का तप चालू जिसमे किये पाच दिन पानी बिन।
अधिक प्यास लगने से धोवन अधिक पी लिया छठे दिन ॥१॥

जिससे उधड़ा शीत अंग में किया विविध औषध-उपचार।
पर न मिटा है रोग कर्म वश दुर्बलतम हो गये विचार।
निशा समय मे निकल सघ से चले गये वे अपने घर।
बन गृहस्थ श्रावक व्रत पालन करते गण सम्मुख रहकर' ॥२॥

जयाचार्य ने उक्त सदर्भ मे लिखा है—

तीन ठाणे मोजीरामजी, तिण मुरजी लावा मे रहिवाया हो।
राजनगर आया पूज आगले, गुण स्वाम संता नै बोलाया हो॥
कोई वदणा थां नै कीजो मती, हिवै मोजीरामजी आया हो।
देखै सहू साध साधवी, पिण किण नवि शीष नमाया हो॥
पछै आय पूज पगा लागिया, भारीमाल हुक्म फुरमाया हो।
जब वदणा कीधी साध साधव्यां, निरंधी तसु दंड दिराया हो॥

(साधु शिक्षा की ढा० गा० ३६ से ४१)

६. मुनि शिवलाल 'गुण वर्णन' ढाल गा० १ मे उल्लेख है कि मुनि शिवरामजी (११७) ने मुनि श्री मोजीरामजी के पास (स० १८६५) मे दीक्षा ली।[1]

७. तपस्वी मुनिश्री हीरजी (७६) ने उनके साथ कई चातुर्मास किये[2]।

८ मुनिश्री ने स० १८६६ मे अनशनपूर्वक समाधि मरण प्राप्त किया[3]।

(ख्यात)

गुण वर्णन ढाल १ गा० १२ मे उनका स्वर्ग स्थान नाथद्वारा लिखा है—

'श्रीजीद्वारे परभव गया'

९. मुनि श्री के गुणो की ढाल १ जयाचार्य रचित 'सत गुण वर्णन' मे तथा ढाल १ मुनि श्री जीवोजी (८६) रचित 'प्राचीन गीतिका सग्रह' मे है।

जयाचार्य ने सत गुणमाला मे उनके गुणो का स्मरण करते हुए लिखा है—

मोजीरामजी स्वामी मुनीसरु रे, ते तो सजम पालैं चित्त ल्याय रे।
गामां नगरां विचरै गूजता रे लाल, टालै च्यार कषाय रे॥

(सत गुणमाला ढा० १ गा० २५)

मोजीरामजी सैहर गोगुदा रा जाण कै, भारीमाल गुरु भेटिया जी।
कट कसा धर बहु सूत्र मुद्दै रिठाण कै, ऋषराय तणें वारे चल्याजी॥

(सत गुणमाला ढा० ४ गा० ४३)

---

१. ऋषि शिवलाल सुहामणो रे, सुमति गुप्त सुखकार।
मोजीरामजी स्वामी कनै, लीधो सजम भार॥
(मुनि शिवलाल गुण वर्णन ढा० १ गा० १)

२. केनमाएक चउमासा मोजीरामजी कनै कीधा।
त्यां पिण बोहत जस लीधा रे॥
(हेम मुनि विरचित हरी मुनि गुण वर्णन ढा० १ गा० ७)

३. गोगुदा ना मोजीरामजी, वेणीरामजी पासो रे।
दीक्षा लेई वर्ष निनाणुअें, सथारो सुध रासो रे॥
(शासन-विलास ढा० ३ गा० ७)

## ५६।२।७ मुनि श्री पीथलजी 'बड़ा' (वाजोली)

(संयम पर्याय सं० १८६६-१८८३)

लय—म्हारे घणां मोल रो…।

कैसी पीयलजी स्वामी ने तप की बाजी खेली रे।
खेली-खेली-खेली रे की पूर्ण पहेली रे। कैसी ॥ध्रुवपद॥
'तप. सूर अणगार' उक्ति यह, है आगम में स्पष्ट।
की चरितार्थ श्रमण पीथल ने, करके तप उत्कृष्ट रे।
सब शक्ति उंडेली रे ॥कैसी ॥१॥
मारवाड में वाजोली के रहने वाले आप।
नाहर गोत्र वयस्क समय में, लगी विरति की छाप रे ॥
जाती न ढकेली रे ॥२॥

### रामायण-छन्द

स्त्री की अनुमति लेकर पाली पहुचे दीक्षा हित पीथल।
ससुर दौड़ पीछे से आया मचा रहा भारी हलचल।
लालच विविध तरह के देता आंसू बहुत बहाता है।
पीछा नहीं छोडता उनका राग मोहमय गाता है ॥३॥

### सोरठा

पीथल ने परिहार, किया चतुर्विध अशन का।
तब तो पाकर हार, आज्ञा दी है श्वसुर ने ॥४॥

लय—म्हारे घणां मोल रो…।

वर्ष अठारह सौ छासठ में, हेम महा मुनि पास।
धन परिजन ललना को तजकर, बने संयमी खास रे।
गुरु शिक्षा झेली रे' ॥६॥

१. जयचन्दजी मारवाड़ में कटालिया के वासी थे। उन्होंने घर-वास को छोड़कर सं० १८६५ के आषाढ़ महीने में मुनिश्री हेमराजजी (३६) के हाथ से दीक्षा ली।

(हेम दृष्टांत ३६)

ख्यात, तथा शासन प्रभाकर ढा० ४ सो० ४८ में उनकी दीक्षा सं० १८६६ लिखा है जो चैत्रादि क्रम से है। संत विवरणिका में उनकी दीक्षा मुनिश्री वेणीरामजी के हाथ से लिखी है जो उपर्युक्त प्रमाण से गलत है।

२. मुनिश्री हेमराजजी सं० १८६६ का चातुर्मास करने के लिए आषाढ़ महीने में छह साधुओं से पाली पधारे। जयचन्दजी के दीक्षित होने पर सात ठाणे हो गये। वहां मुनि मोतीजी (४६) ने १८ दिन की तपस्या का पारणा करने के पश्चात् अनशन ग्रहण किया। उस अवसर में जयचन्दजी ने १० दिन तप करने का संकल्प किया। पांच दिन चौविहार किये। छट्ठे दिन प्यास अधिक लगने से धोवन-पानी अति मात्रा में पी लिया, जिससे तत्काल शीत उत्पन्न हुआ[1]। औषध का उपचार भी किया पर रोग शांत नहीं हुआ। तब वे मानसिक दुर्बलता के कारण रात्रि के समय गण से अलग होकर कटालिया चले गये।

(हेम दृष्टांत ३८)

गृहस्थ बनने के पश्चात् उन्होंने श्रद्धा में दृढ़ रहकर श्रावक के व्रतों का पालन किया और साधु संघ के प्रति अनुकूल रहे[2]।

(ख्यात)

---

१. शीत - (शीतांग, सन्निपात) चित्त विभ्रमता होने से पागल की तरह सुध-बुध रहित होना।

२. कटास्या गो ताय रे, जयचंद निज तज चरण ग्रही।
शीत वशे गृह आय रे, पाल्या व्रत श्रावक तणा॥
(शासन-विलास ढा० ३ सो० ८)

ख्यात तथा शासन प्रभाकर ढा० ४ सो० ४८ में ऐसा ही उल्लेख है।

लय—म्हांरे घणो मोल रो…।

रसना रुकी अचानक व्यापी तन में व्याधि अथाह।
सागारी अनशन करवाया, सवा प्रहर में राह रे।
सुरपुर की ले ली रे' ॥१३॥

## दोहा

विविध स्थलों में 'जीत' ने, गाये हैं गुण गान।
गण में तपः प्रभाव से पाये हैं सम्मान' ॥१४॥

### दोहा

विनयी वैयावृत्य रत, बने तपस्वी आप।
तपश्चरण के मार्ग में, सहते थे बहु ताप ॥७॥

### लय—रामायण

उपवासादिक स्फुटकर तप का मिल न रहा क्रमशः अधिकार।
बड़े बड़े जो किये थोकड़े गुन लो उनका कुछ विस्तार।
साल तिहोत्तर से लेकर के साल सत्यासी तक प्रतिवर्ष।
वीरवृत्ति का परिचय देते तप में बढ़ते गये सहर्ष ॥८॥

### गीतक-छंद

प्रेरणा ऋषिराय की पा हो गये तैयार हैं।
तीन मुनि ने मास छह का किया तप स्वीकार है।
कांकड़ोली केलवा निकटस्थ राजसमंद में।
किये पावस पूज्य आज्ञा से परम आनंद में ॥९॥

### लय—म्हारे घणां मोल रो…।

वर्षावास उदयपुर करके, आये श्री गुरुदेव।
बड़े पारणे निज हाथों से, करवाये स्वयमेव रे।
यश ध्वनियां फैली रे ॥१०॥
खुशियों से मुनियों की नस नस, फूली पा गुरु-पोष।
रवि से पंकज घन से चातक, पाता अति संतोष रे।
छवि लगी नवेली रे' ॥११॥

### दोहा

मालव यात्रा के लिये, गुरु ने किया विहार।
भीम श्रमण सहवास में, हैं पीयल अणगार ॥१२॥

वे बड़े विनयी, सेवार्थी और तपस्वी हुए[1]। दीक्षित होते ही उन्होंने उत्कट तप करना प्रारंभ किया। छह चातुर्मासों (१८६७ से ७२) में विविध तपस्या की पर उन वर्षों में की गई तपस्या का विवरण नहीं मिलता। तपस्या के साथ वे आतापना भी लेते थे।[2]

उसके बाद सं० १८७३ से १८८१ तक उन्होंने बड़ी तपस्या (प्रायः आछ के आगार से) की, उसका विवरण इस प्रकार है—

१. स० १८७३ में मुनि श्री हेमराजजी के साथ सिरियारी में ४० दिन का तप किया।
२. स० १८७४ में मुनिश्री हेमराजजी के साथ गोगुंदा में ८२ दिन का तप किया।
३. स० १८७५ में मुनिश्री हेमराजजी के साथ पाली में ८३ दिन का तप किया।
४. स० १८७६ में मुनिश्री हेमराजजी के साथ देवगढ़ में १०६ दिन का तप किया जो गण में सर्वप्रथम था।
५. स० १८७७ में मुनिश्री स्वरूपचंदजी के साथ पुर में[3] १२० दिन का तप किया। कहा जाता है कि इसी वर्ष मुनि माणकचंदजी (७१) ने भी चातुर्मासिक तप किया। दोनों मुनियों का यह तप गण में (भारीमालजी स्वामी के युग में) सर्वप्रथम था।
६. स० १८७८ में मुनि श्री हेमराजजी के साथ आमेट में ९९ दिन का तप किया।
७. स० १८७९ में १०० दिन का तप किया।
८. सं० १८८० में ६० दिन का तप किया।
९. स० १८८१ में ७५ और २१ दिन का तप किया।

इन तीन वर्षों की तपस्या उन्होंने कहां और किसके साथ की इसका उल्लेख नहीं मिलता।

---

१. सुविनीत घणो सुखकारी, विनय व्यावच नो गुण भारी।
तपस्या में हरे, महा सिरदारी॥
(गुण वर्णन ढा० २ गा० २)

२. षट चोमासै तप खड्ग धारा, विविध प्रकारे विसाला।
आतापना लेता ऊनाला॥
(गुण ढा० १ गा० ३)

३. मुनि स्वरूपचंदजी का चातुर्मास उस वर्ष 'पुर' में था।
(स्वरूप नव० ३

१. मुनि श्री पीथल जी मारवाड मे बाजोली के वासी, और गोत्र मे नाहर (ओसवाल) थे। वे ससार से विरक्त होकर दीक्षा लेने के लिए तैयार हुए और अपनी पत्नी की स्वीकृति लेकर स० १८६६ के पाली चातुर्मास मे मुनि श्री हेमराजजी (३६) के पास पहुचे। निवेदन करने पर मुनि श्री ने उनकी दीक्षा तिथि निर्णीत कर दी। पीथलजी के श्वसुर को जब यह खबर मिली तो वे शीघ्रता से पाली आये और अनेक प्रकार के प्रलोभन देकर उन्हे डिगाने का प्रयत्न करने लगे। मोहवश आखो से आसुओ की धारा बहने लगी। परन्तु पीथलजी अपने विचारो मे अडिग रहे। श्वसुर जब उनके पीछे ही पड गया तब उन्होंने यह प्रतिज्ञा कर ली कि साधु-व्रत स्वीकार किये बिना मुझे चारो प्रकार के आहार का त्याग है। तब श्वसुर ने दीक्षा की आज्ञा दी। पीथलजी ने बड़े हर्ष से स्त्री को छोड़कर मुनि श्री हेमराजजी द्वारा स० १८६६ पाली मे सयम ग्रहण किया।[1]

२. मुनि पीथलजी दीक्षा लेने के पश्चात् सभवत १८६६ तक मुनि श्री हेमराजजी के सान्निध्य मे रहे। स० १८७० के इन्द्रगढ, १८७१ के पाली और १८७२ के कटालिया चातुर्मास मे तो साथ रहने का हेम नवरसा ढा० ५ मे उल्लेख भी मिलता है। उसके बाद भी वे कई चातुर्मासो मे उनके साथ थे ऐसा उक्त ढाल से प्रमाणित है।

---

(१) पीथल हरि (नाहर) बाजोली थकी, चारित्र लेवा आया हो।
सगुरे लारै आय नै, विविध पणे ललचाया हो।
रूदन करत अधिकाया हो॥
पीथल कहै ससुरा भणी, सांभल तू मुझ वाया हो।
साधपणों लियां बिना, च्यारू आहार पचखाया हो।
मन वैराग सवाया हो।
सुसरै दीधी आगन्या, पीथल मन हरषाया हो।
सजम लीधो हेम पै, छांडि त्रिया व्रत स्याया हो।
सर्गा नै सुखदाया हो॥
(हेम नवरसो ढा० ४ गा० १५ से १७)
बड़ पीथल त्रिय छडी दीक्षा, बाजोली ना नाहरो रे।
(शासन-विलास ढा० ३ गा० ६)
वस ओस हरि (नाहर) जात वर, बाजोली वसीवान।
सजम पामी सैहर मे, छाडै साम सुजान॥
(पीथल गु० व० ढा० १ दो० २)
हेम दृष्टान्त १४ मे भी दीक्षा का उल्लेख है।

उसी दिन राजनगर पधार कर मुनि हीरजी को १८६ दिन का और दूसरे दिन केलवा पधार कर मुनि वर्धमानजी को १८७ दिन का पारणा कराया।

तेरापंथ धर्म संघ मे इससे पहले छहमासी तप नही हुआ था।

४ ऋषिराय ने मालव-यात्रा के लिये प्रस्थान किया तब मुनि पीथलजी को भीमजी स्वामी के पास रखा[1]। साथ मे अन्य संत रत्नजी (७४) माणकचंदजी (७१) और हुकमचंदजी (९३) थे।

सं० १८८३ मे पोष शुक्ल १० के दिन कांकडोली मे अकस्मात् उनकी जबान बंद हो गयी। मुनि भीमजी ने उन्हें पूछकर सागारी अनशन कराया। सवा प्रहर के पश्चात् पंडित-मरण प्राप्त किया[2]।

५. जयाचार्य ने मुनि पीथलजी के गुणानुवाद की दो ढालें बनाकर उनके तपोमय जीवन का सुंदर विश्लेषण किया है। बाल्यकाल मे दिये गये सहयोग के प्रति कृतज्ञता भी व्यक्त की—

मुझ सूं तो घणो गुण कीधो, बालपणा थकी साझ दीधो।
विडद धारी हुंरे, भलो जश लीधो॥
(गुण वर्णन ढा० २ गा० ४)

संत गुणमाला मे उनका स्मरण करते हुए लिखा है—

---

केलवे वर्धमान छ मासी रे, राजनगर हीर तप वासी रे।
कांकरोली पीथल पद पासी रे। त०॥

चतुरमास करी ऋषिरायो रे, आया कांकरोली सैहर चलाया रे।
पारणो पीथल नैं करायो रे। प०॥
(पीथल मुनि गु० व० ढा० १ गा० ११ से १३)

१. भीमजी ने पीथल भलायो, रत्न माणक हुकम सुहायो।
पांचू साध कांकडोली मायो॥
(पीथल मुनि गुण० वर्णन ढा० १ गा० ३०)

२. पोस सुदि दशम दिन सोयो रे, जीभ थाकी असाता होयो रे।
चित्त सावचेत अवलोयो॥

भीम पूछ्यो करावां संथारो रे, भरियो तब कांय हुंकारो रे।
सावचेत पणें श्रीकारो रे॥

पचखायो संथारो सागारी रे, आसरै सवा पौहर विचारी रे।
पहुंता परलोक मझारी॥
(पीथल मुनि गु० व० ढा० १ गा० ३२ से ३४)

तप बहु षटमासी सग कीधो, दयामीये संथारो रे।
(शासन-विलास ढाल ३ दा० ६)

१०. सं० १८८२ में ऋषिराय के साथ पाली में १०१ दिन का तप किया।[1]
११. सं० १८८३ में मुनि भीमजी (६३) के साथ कांकरोली में १८६ दिन का तप किया।

उपर्युक्त तप का विवरण पीथल मुनि गुण वर्णन ढाल १ गा० ४ से १०, हेम नवरसा ढा० ५ दूहा तथा शासन विलास ढा० ३ गा० ७ की वार्तिका के अनुसार दिया गया है।

उनकी छोटी तपस्या का विवरण उपलब्ध नहीं है।

३ उक्त छहमासी तप का प्रसंग इस प्रकार है—

सं० १८८२ ज्येष्ठ महीने में आचार्य श्री रायचन्दजी गोगून्दा में विराजते थे वहां उन्होंने साधुओं को तपस्या के लिये विशेष प्रेरणा दी। तब मुनि पीथलजी, वर्धमानजी (६७) तथा हीरजी (७६) ने परस्पर सलाह करके ऋषिराय से प्रार्थना की कि हमारा तपस्या करने का विचार है। गुरुदेव ने कहा—'क्या तपस्या करने की इच्छा है?' वे बोले—'जो आपकी इच्छा हो वह करने के लिए तैयार हैं।' ऋषिराय ने प्रसन्न मुद्रा में कहा—'यह कार्य तो तुम्हारा है। मैं तो क्षेत्र संबंधी सुविधा तथा सहयोगी साधुओं की उचित व्यवस्था कर सकता हूं।' तब तीनों मुनियों ने सविनय बद्धांजलि छह मासी पचखाने की प्रार्थना की। आचार्य श्री ने उनकी प्रबल भावना देखकर उन्हें एक साथ आठ के आगार से छह महीनों तक अशन आदि का प्रत्याख्यान करवा दिया[2]।

(ख्यात-वार्तिक तप-संग्रह से)

आचार्यश्री ने सं० १८८३ का मुनिश्री पीथलजी का चातुर्मास मुनिश्री भीमजी (६३) के साथ कांकड़ोली तथा मुनि वर्धमानजी (६७) का केलवा और मुनि हीरजी (७६) का राजनगर फरमाया। स्वयं उदयपुर चातुर्मास के लिए पधारे। चातुर्मास के पश्चात् कांकड़ोली पधार कर आचार्य श्री ने मुनि पीथलजी को १८६ दिन का पारणा कराया[3]।

---

१. एक सौ एक पाली आणदो रे, बयासीये तप गुण वृन्दो रे।
गुरू मिलिया पूज रायचन्दो रे॥
(गुण० व० ढा० ३१ गा० १०)

२. रायचन्द पूज सुहाया रे, तीनूं रा परिणाम चढ़ाया रे।
तपसी तप करण उमाया। त०॥
जेष्ठ कृष्ण पखे मुनिराया रे, छह मास तीनूं नै पचखाया रे।
पूज उदीयापुर चल आया रे॥
(पीथल मुनि गुण वर्णन ढा० १ गा० १३, २१)

३. तयासीये कांकड़ोली तासो रे, षट मास भीम ऋष पासो रे।
पचखाया पूज हुलासो रे। त०॥

## ५७।२।८ श्री सांवलजी (धूनाड़ा)

(दीक्षा सं० १८६६, १८६६ में थोड़े दिन बाद गणबाहर)

रामायण-छन्द

*मारवाड़ की धरती पर था 'सांवल' का 'धूनाड़ा' ग्राम।*
पाली में मुनि हेम चरण में चरण लिया तज स्त्री धन धाम[1]।
कुछ दिवसों से उनकी पत्नी दर्शनार्थ पाली आई।
रोने लगी देखकर उनको राग-भाव मन में लाई ॥१॥
लोग सिखाकर उलटी बातें उसे ले गये हाकिम पास।
चलित कर दिया सांवलजी को रचकर के व्यामोहक पाश।
रह न सके वे दृढ़ संयम में बंधन परिचय का भारी।
बन गृहस्थ वापस घर पहुचे कर्मों की गति है न्यारी[2] ॥२॥

## ५८।२।६ मुनि श्री वगतोजी (तिवरी)

(सयम पर्याय १८६६-७३)

### रामायण-छन्द

'तिवरी' के वासी 'वगतोजी' ओसवाल थे धाडीवाल।
समझ-बूझकर तत्त्व उन्होंने मान्य किये गुरु भारीमाल।
योग न मिला साधुओं का फिर हुए स्वत दीक्षा के भाव।
मुनि गुमानजी के टोले के करते अपनी तरफ झुकाव।।१।।
तेरापंथी मुनियोंवत् हम भी न स्थानकों मे रहते।
एक समान समाचारी है वे कहते ज्यो हम कहते।
कपट पूर्व बाते कर ऐसे दीक्षा दी उनको तत्काल।
रहते उनके साथ वगतजी क्रमशः बीता है कुछ काल।।२।।
शिथिलाचार विचार देखकर उनका अन्तर मन बदला।
वहस चली कुछ दिन आपस मे किन्तु न कुछ भी हल निकला।
छोड़ उन्हे श्री भारी गुरु की चरण-शरण मे आये हैं।
लेकर सच्चारित्र-रत्न वे फूले नही समाये हैं'।।३।।
आचारागादिक सूत्रो का नही कर सके वे वाचन।
अतः 'अगड सूत्री' रह पाये करते मुनियों सह विहरण'।
त्यागी विनयी और विरागी तपोधनी बन पाये हैं।
भर पुरुषार्थ ऊर्ध्व भावो से तप के शिखर चढाये है।।४।।

### सोरठा

दिवस एक सौ एक, साल तिहत्तर मे किये।
लिखे उच्चतम लेख, चतुर्मास कर 'धाकडी'।।५।।
कुछ ही दिन के बाद, आजीवन अनशन किया।
पडित-मरण प्रसाद, पाया दिन इक्कीसे'।।६।।
सात साल तक स्वाद, भारी सयम का लिया।
'जय' ने उनको याद, अपनी कृतियों मे किया।।७।।

लय—तुमको लाखों प्रणाम ।

आगम वाचन किया अधिकतर, चिंतन मथन चला निरंतर।
लिपि कौशल में कुशल कुशलतर, ग्रंथ लिखे बहुमान'॥७॥
उपवासादिक मे अग्रेसर, मासखमण बहु किये विरति घर।
आत्म-शुद्धि के लिए उच्चतर खोला यह अभियान'॥८॥
पुर-पुर मुनि श्री विचरण करते उपदेशामृत मुख से झरते।
भविकजनों के पातक हरते, भरते अभिनव ज्ञान॥९॥

## दोहा

दीक्षा मुनि श्री हाथ से, चपाजी की एक।
मिलती इस संदर्भ मे, ख्यात लीजिए देख'॥१०॥

लय—तुमको लाखो प्रणाम ।

आया बारह का संवत्सर, अंबापुर की पुण्य धरा पर।
वर्षावास किया है सुखकर, हुए अचानक ग्लान॥११
कारणवश कुछ दिन रह पाये, जयाचार्य खुद चलकर आये।
दर्शन पाकर ऋषि हरषाये, पाये जीवन दान॥१२॥
जय ने की बरुशीश कृपा कर, भोजन जल विभाग की गुरुतर।
चार साधु सेवा मे रखकर, बढा दिया सम्मान॥१३॥
जय गणपति तो हुये रवाना, दिवस सातवें सौलह आना।
सिद्ध हुआ सब काम सुहाना, पहुचे अमर विमान'॥१४॥

## ५६।२।१० मुनि श्री संतोजी (सणदरी)

(संयम पर्याय १८६६-१६१२)

लय—तुमको लाखों प्रणाम ···।

शासन सिन्धु समान, मुनि मणियों का स्थान। शासन···।
उनमें एक प्रधान, शासन। संत 'सन' अभिधान। शासन···।
॥ ध्रुवपद ॥

मारवाड में ग्राम सणदरी, बोकरिया परिजन बिरादरी।
विरति भावना दिल में उभरी, लगा एक ही ध्यान। शासन ॥१॥
आया छासठ का शुभ वत्सर, लिया साधना-पथ श्रेयस्कर।
बने सुगुरु के शिष्य शिष्टतर, लघु वय में मतिमान' ॥२॥

सोरठा

पचपदरा में वास, किया महीने चार तक।
'जोध' 'वगत' सहवास, 'अगडमूप' तीनों व्रती' ॥३॥
पावस हेम समीप, किया ग्राम कंटालिया।
जला ज्ञान का दीप, बने अग्रणी याद में' ॥४॥

लय—तुमको लाखों प्रणाम···।

बड़े विरागी त्यागी ऋषिवर, पापभीरु थे पग-पग ऊपर।
ज्ञान ध्यान में हरदम रमकर, बढ़ते ज्यों फलवान ॥५॥

दोहा

आज्ञाकारी थे बड़े, गण-गणपति से प्रीति।
शोभित होते संघ में, रखते ···

किया। ख्यात मे उनके संबध मे लिखा है—"बड़ा वैराग सू दीक्षा लीधी, पाप रो भय घणो, तिखणो घणो कीयो, सूत्र घणा वाच्या, साधपणा पर दृष्टि बड़ी तीखी।'

जयाचार्य ने उनकी निर्मल नीति का वर्णन करते हुए 'सत गुणमाला' में लिखा है—

"सतोजी स्वामी शोभता रे, त्यांरी रुडी छै निर्मल नीत रे।
आहार पाणी री गवेषणा आछी करै रे, पकी छै ज्यांरी प्रतीत रे॥" *

(सत गुणमाला ढा० १ गा० २८)

५ उन्होंने उपवास, वेले आदि विविध तपस्या की। ऊपर मे मासखमण भी अनेक बार किये।[1] (सख्या प्राप्त नहीं है।)

६ साध्वी चपाजी (१६१) 'सिरियारी' की ख्यात मे लिखा है कि उन्हें स० १८६५ जेठ वदि ५ को सिरियारी मे मुनि सतीदासजी ने दीक्षा दी। वे सतीदासजी ये सतोजी ही थे क्योकि जयाचार्य ने अपनी कृति 'आर्या दर्शन' ढाल ४ सोरठा ४ मे इन्हें सतीदासजी नाम से सम्बोधित किया है—

'सतीदासजी सत रे, वासी ते गणदरी तणा॥'

दूसरे मुनि सतीदासजी (८४) 'गोगुदा' तो मुनिश्री हेमराजजी के साथ थे।

मुनिश्री अग्रणी होकर विचरे। उनके सिंघाड़बध होने का वर्ष व चातुर्मास-स्थान प्राय उपलब्ध नही है। श्रावकों द्वारा लिखित प्राचीन चातुर्मासिक तालिका के अनुसार उनका स० १८१२ का चातुर्मास पाच साधुओ से आमेट था। मुनि जीवोजी (८६) रचित मुनि शिवजी(८२) के गुणो की ढाल गा० २८ के उल्लेखानुसार मुनिश्री शिवजी मुनिश्री सतोजी के साथ आमेट चातुर्मास में थे।

मुनिश्री सतोजी वहा अस्वस्थ हो गये जिससे चातुर्मास के पश्चात् वे विहार नही कर सके। उस समय मुनि माणकचदजी (६६) आदि ४ साधु उनकी सेवा में थे। जयाचार्य ने वहा पधार कर मुनिश्री को दर्शन दिये तथा भोजन-विभाग से मुक्त किया।[2] मुनि सतोजी जयाचार्य के अनुग्रह से अत्यन्त हर्षित हुए। उन्होंने आचार्य प्रवर से एक साधु की और माग की। तब जयाचार्य ने मुनि नेमजी (१३६) छोटा को उनकी परिचर्या मे रखा और मधुर वचनो से उन्हें सन्तुष्ट कर वहा से विहार किया।

(गुण वर्णन ढा० १ गा० ५ से ८ के आधार से)

---

१. मासखमण मुनि बहु किया, वलि तप विचित्र प्रकार।
(सतोजी गुण वर्णन ढा० १ गा० ११)

२. पाती छोडी सत नी, हरख्यो सत विसेख।
(गुण० व० ढा०१ गा० ७)

१ मुनिश्री मनोजी पार...
(ओसवाल) थे...

उ...

के...
का...
आचा...
सूत्री...
श्री...

३ ... १८७२ में उन्होंने मुनिश्री हेमराजजी (३६) के साथ कटालि... यहां चातुर्मास किया।

(परम्परा के बोल संख्या २२

४ मुनिश्री साधु-क्रिया में कुशल, पापभीरु और बड़े आत्मार्थी थे। संघ एवं संघपति के प्रति अनुरागी व निष्ठावान थे। उन्होंने आचार्यश्री भारीमालजी, रायचन्दजी और जयाचार्य की बड़ी तन्मयता से सेवा-भक्ति की।

उन्होंने अनेक सूत्रों का वाचन किया तथा लेखन (प्रतिलिपि) भी

---

१. सणधरी ना वासी मुनि, जाति चोकरिया सार।
समत् अठारै छासठे, लीधो संजम भार॥
(सतोजी गु० व० ढा० १ गा० १०, ११

मनोदासजी (सतोजी) संत रे, वासी ते सणदरी तणा।
आचारी गुणवन्त रे, अठार छयासठे दिक्षा॥

२ सुख वास मित्र मन भावियो, पाली संहर मझार॥
(आर्या दर्शन ढा० ४ सो० ४)

३ चोइतरे कटालिया मांह्यो रे, हेम मनोजी चौमास सुहायो रे।
स्वच्छन्द, सोम सुख पायो॥
(गुण व० ढा० १ गा० १३)
(हेम नवरसो ढा० ५ गा० ३)

४ पंच महाव्रत पालतो, मन रहित सुध रीत।
चोहूंक पाप थकी बहू, परम गुरुद सूं प्रीत॥
भारीमाल ऋषराय नी, सेव आण सुध मान।
सेव तणी अति जन्म सूं पाली आण प्रधान॥
(मनोजी गु० व० ढा० १ गा० ३, ४)

१. मुनिश्री ईशरजी मोगुदा (मेवाड़) के वासी, जाति से पोरवाल और मुनि गुमानजी (५१) के छोटे भाई थे। गुमानजी सं० १८६५ में दीक्षित हो गए थे। ईशरजी ने सं० १८६६ में मुनिश्री वेणीरामजी (६८) के हाथ से दीक्षा ग्रहण की[1]।

(ख्यात)

२. मुनिश्री प्रकृति से सौम्य, धैर्यवान्, विनयी और साधु-चर्या में बड़े सावधान थे। अपनी धनवर विहार करते व जन-जन को प्रतिबोध देते[2]।

(ख्यात)

३. कहा जाता है कि सं० १८८६ में आचार्य श्री रायचन्दजी ने थली प्रदेश के क्षेत्रों का निरीक्षण करने के लिए मुनि ईशरजी को भेजा था। उन्होंने बीदासर आदि गावों में जाकर सारी स्थिति की जानकारी की। वापस आचार्य प्रवर के दर्शन कर सब हकीकत मालूम करते हुए थली प्रान्त की तीन विशेषता-संघ, सरलता, सादगी पर उनका ध्यान आकृष्ट किया।

तब आचार्यश्री ऋषिराय ने साधु-साध्वी परिवार से थली में पधार कर सं० १८८७ का चातुर्मास बीदासर में किया। मुनिश्री जीतमलजी का चूरू, मुनिश्री स्वरूपचंदजी (६२) का तारानगर और मुनि ईशरजी का चातुर्मास रतनगढ़ में करवाया। अन्य ग्रामों में साध्वियों के चातुर्मास करवाये।

(ऋषिराय सुजश ढा० ६ गा० ७ से ६ के आधार से)

४. सं० १८८६ में आचार्यश्री रायचंदजी गुजरात, कच्छ की तरफ पधारे तब मुनि ईशरजी साथ थे। आचार्यश्री शेषकाल में वहां विहरण कर वापस मारवाड़ पधार गए। मुनिश्री कर्मचन्दजी (८३) का ठाणा ३ से सं० १८६० का चातुर्मास बेला (कच्छ) में फरमाया जो कच्छ प्रान्त में सर्वप्रथम चातुर्मास था। उनके साथ मुनि मोतीजी बड़ा (७७) और कृष्णचंदजी (१०३) थे। मुनि ईशरजी का ठाणा ३ से उस वर्ष का चातुर्मास वीरमगांव (गुजरात) में फरमाया जो गुजरात प्रान्त में सर्वप्रथम चातुर्मास था। उन्होंने वहां अच्छा उपकार

---

१. गुमानजी रा बंधव ईशरजी, सौम्य प्रकृति सुखकारी रे।
वेणीराम स्वामी दी दीक्षा, उगणीसे सधारी रे॥
(शासन-विलास ढा० ३ गा० १३)

२. ईशरजी स्वामी घणा ओपता रे, ते संजम पालें रूडी रीत रे।
जिन मार्ग नें जमावता रे, ते सतगुरु ना सुवनीत रे॥
(सत गुणमाला ढा० १ गा० २६)

१. मुनिश्री गुमानजी ने स० १८६६ में मुनिश्री वेणीरामजी (२६) के हाथ से दीक्षा स्वीकार की¹। उनके गाव दीक्षा जाति तथा दीक्षा स्थान आदि का उल्लेख नहीं मिलता।

ख्यात आदि मे दीक्षा सवत् नही है पर क्रमानुसार उक्त सवत् ठीक लगता है।

२. मुनिश्री बडे आत्मार्थी, मेधावी और धर्म-प्रचारक थे। वे हेतु, दृष्टान्त तथा बोधात्मक चित्रो के माध्यम से धर्मोपदेश देकर लोगो को समझाते। अनेको व्यक्तियों को उन्होने गुरु-धारणा करवाई²।

३. मुनिश्री ने लगभग चौवालीस साल साधुत्व का पालन कर स० १६१० के मृगसर महीने मे समाधि-पूर्वक पडित-मरण प्राप्त किया। अन्तिम समय मे जयाचार्य ने सतों को भेजकर उनकी बडी परिचर्या करवाई³।

---

१. गुमानजी नैं दीक्षा दीधी, वेणीरामजी स्वामी रे।

(शासन विलास ढा० ३ गा० १४)

२ गुमानजी स्वामी सीखावं भायां भणी रे, चोखो पाले सजम सार रे।
वले ध्यावच करे साधां तणी रे, त्यारोई खेवो पार रे॥

(मत गुणमाला ढा० १ गा० ३०)

'घणां वरस चारित्र पाल्यो, बडा जूना हा, लोका नैं हेतु दृष्टान्त दे नैं पाना वताय नैं समझाया, गुरुधारणा घणां नैं कराई।'

३. आमेट में उगणीसे दशके, परभव शिव सुखकामी रे।

(शासन विलास ढा० ३ गा० १४)

देवीचद (१५४) त्रिय साथ रे, उगणीसें पांचे दिख्या।
गुमान वृद्ध विख्यात रे, मृगसर परभव वेहु मुनि॥

(आर्या दर्शन ढा० २ सो० ५)

'सं० १६१० आमेट मे आयु, जयाचार्य साध मेल नैं चाकरी जबर कराई।'

(ख्यात)

किया[1]।

५ सं० १८९४ में उन्होंने अपने बड़े भाई मुनिश्री गुलाबजी के साथ पुर चातुर्मास किया। दूसरे सहयोगी ३ सन्त—१ मुनिश्री उदयरामजी (९४) २. रामोजी (१००) ३ जीवराजजी (११३) थे। वहां मुनि गुलाबजी शंकाशील हो गए। व गण के अवर्णवाद बोलने लगे। मुनि ईशरजी ने उन्हें समझाया पर वे नहीं माने। कुछ दिनों बाद आचार्यश्री रायचन्दजी युवाचार्य श्री जीतमलजी आदि साधुओं सहित पुर पधारे। युवाचार्यश्री के समझाने से गुलाबजी समझ गए और प्रायश्चित्त लेकर गण में आ गए। पूरा विवरण मुनि गुलाबजी के प्रकरण में दे दिया गया है।

६ मुनिश्री ईशरजी ने सं० १९०१ फाल्गुन शुक्ला २ को रणपाम में मुनि रूपचन्दजी (१३४) को दीक्षा दी।

७ उन्होंने ९ साल एकान्तर तथा फुटकर तप बहुत किया। शीतकाल में सर्दी और उष्णकाल में ताप सहन किया। (ख्यात)

सत गुणमाला ढा० ४ गा० ४४ में उल्लेख है— (ख्यात)

ईशरदासजी सहर गोगुदे रा सोय कै, जावजीव एकान्तर आदर्या जी।
सोम प्रकृति वर सधारे परलोय कै, भारीमाल गुरु भेटिया जी॥

इसका तात्पर्य यही लगता है कि उन्होंने जीवन के अन्तिम ९ वर्षों में एकान्तर तप किया।

८ मुनिश्री ने लगभग ३४ साल साधुत्व का पालन कर सं० १९०० में अनशनपूर्वक स्वर्ग प्रस्थान किया, ऐसा ख्यात तथा शासन विलास ढा० ३ गा० १३ तथा वार्तिका में लिखा है।

परन्तु उपर्युक्त उल्लेख से प्रश्न होता है कि मुनि ईशरजी ने सं० १९०१ फाल्गुन शुक्ला २ को मुनि रूपचन्दजी को दीक्षा दी तब मुनि ईशरजी का स्वर्गवास संवत् १९०० में कैसे हुआ?

ख्यात में रूपचन्दजी की दीक्षा सं० १९०१ फाल्गुन शुक्ला २ को हुई तथा

---

१ जद कर्मचंद ने सत मोती, वलि कृष्णचंदजी नैं तदा।
ए तीनूं नैं चोमास बेले, ठहराय नैं गणपति मुदा।
अनें ईसर आदि मुनि मतिवंत है, रह्या गुजरात में तिहुं सत है।
सत तिहुं रह्या 'ग्रामवीरम' कियो चोमास सुहामणो।
बहु लोक तिहां थोक समझ्या, हुवो उपगार तो त्यां अति घणो॥
(जय सुज[illegible]

१. मुनिश्री गुमानजी ने सं० १८६६ में मुनिश्री वेणीरामजी (२६) के हाथ से दीक्षा स्वीकार की¹। उनके गांव दीक्षा जाति तथा दीक्षा स्थान आदि का उल्लेख नहीं मिलता।

ख्यात आदि में दीक्षा संवत् नहीं है पर क्रमानुसार उक्त संवत् ठीक लगता है।

२. मुनिश्री बड़े आत्मार्थी, सेवार्थी और धर्म-प्रचारक थे। वे हेतु, दृष्टान्त तथा बोधात्मक चित्रों के माध्यम से धर्मोपदेश देकर लोगों को समझाते। अनेकों व्यक्तियों को उन्होंने गुरु-धारणा करवाई²।

३ मुनिश्री ने लगभग चौवालीस साल साधुत्व का पालन कर सं० १६१० के मृगसर महीने में समाधि-पूर्वक पंडित-मरण प्राप्त किया। अन्तिम समय में जयाचार्य ने संतों को भेजकर उनकी बड़ी परिचर्या करवाई³।

---

१ गुमानजी नै दीक्षा दीधी, वेणीरामजी स्वामी रे।
(शासन विलास ढा० ३ गा० १४)

२ गुमानजी स्वामी सीखावै भायां भणी रे, चोखो पालै संजम सार रे।
वले व्यावच करै साधां तणी रे, त्यांरोई सेवो पार रे॥
(संत गुणमाला ढा० १ गा० ३०)

'घणां वरस चारित्र पाल्यो, बड़ा जूना हा, लोका नै हेतु दृष्टान्त दे नै पाना बनाय नै समझाया, गुरुधारणा घणां नै कराई।'

३. आमेट मे उगणीसै दशके, परभव शिव सुखकामी रे।
(शासन विलास ढा० ३ गा० १४)

देवीचंद (१५४) त्रिय साथ रे, उगणीसै पांचे दिख्या।
गुमान वृद्ध विख्यात रे, मृगसर परभव वेहु मुनि॥
(आर्या दर्शन ढा० २ सो० ५)

'सं० १६१० आमेट मे आयु, जयाचार्य साध मेल नै चाकरी जबर कराई।'

(क्रमशः)

## ६१।२।१२ मुनि श्री गुमानजी

(संयम पर्याय १८६६-१९१०)

छप्पय

शासन के सुख सदन में आये संत गुमान।
बहुत वर्ष कर साधना पाये शांति महान्।
पाये शांति महान् चरण मुनि वेणी द्वारा'।
धर गुरु आज्ञा शीष त्रिविधनर खोली धारा।
दिन प्रतिदिन चढ़ते गये उन्नति की सोपान।
शासन के सुख सदन में आये संत गुमान॥१॥
सेवा कर मुनि वर्ग की लेते लाभ अपार।
ज्ञान ध्यान में लीन हो करते धर्म-प्रचार।
करते धर्म-प्रचार मधुर उपदेश सुनाते।
साथ हेतु दृष्टान्त बोधमय चित्र दिखाते।
करवाई गुरु धारणा बहुजन को दे ज्ञान'।
शासन के सुख सदन में आये संत गुमान॥२॥
शतोन्नीस दस साल का आया मृगसर मास।
अम्बापुर से ली विदा किया स्वर्ग में वास।
किया स्वर्ग में वास बने संयम-आराधक।
जय ने भेजे संत अन्त में बने सहायक।
की मुनियों ने शुश्रुषा देकर गहरा ध्यान'।
शासन के सुख सदन में आये संत गुमान॥३॥

फिर वापस आकर यहा, कर लूगा सुविवाह ।
कामदार से मिल चले, ली हरिगढ की राह' ॥१२॥

### गीतक-छन्द

किशनगढ में किया पावस हेम ने उस वर्ष है।
सग से मा पुत्र तीनो खिले पाकर हर्ष है।
सुना हित उपदेश मुनि का लाभ सेवा का लिया।
चन्द्र चदनसे अधिक शीतल सजल दिल को किया ॥१३॥

भेंट भारीमाल के पद शहर जयपुर में मुदा।
रात दिन संपर्क करके पिया है शिक्षा-सुधा।
मिला अजवू सती का भी वहा शुभ सयोग है।
प्रबल उनकी प्रेरणा से हुआ सफल प्रयोग है॥१४॥

### दोहा

जय उद्यत थे प्रथम ही, फिर स्वरूप तैयार।
अग्रज को गुरु दे रहे, पहले सयम सार॥१५॥

माता की अनुमति मिली, दीक्षा तिथि निर्णीत।
दीक्षार्थी के गा रही, बहनें मगल गीत॥१६॥

### गीतक-छन्द

किये हैं हरचंद लाला ने महोत्सव चरण के।
बने शिष्य स्वरूप भारीमाल तारण-तरण के।
थी अठारह सौ उनहत्तर पौष नवमी शुक्लतर।
लगी मोहनवाटिका मे छटा दीक्षा की प्रवर॥१७॥

### दोहा

माघ कृष्ण तिथि सप्तमी, जय दीक्षा-सस्कार।
जननी कल्लू भीम सह, फिर दीक्षित सविचार॥१८॥
सौंपे हैं मुनि हेम को, गुरु ने जीत स्वरूप।
करने शिक्षा ग्रहण वे, भरने श्रुत रस कूप' ॥१६

करवाया मुनि हेम को, भी प्रभुवर ने त्याग।
सुनकर सब विस्मित हुए, गुरु का बड़ा दिमाग ॥२६॥
जय ने श्रमण स्वरूप को, करवाया स्वीकार।
मान्य सिंघाड़ा जब किया, तब तो उनरा भार ॥३०॥
चाह बड़ों के साथ मे, रहने की अतिरेक।
विनयी गुणी स्वरूप का, उदाहरण यह एक ॥३१॥

लय—जावण द्यो रे ।

याद न मुझे देव ! व्याख्यान, निशा समय क्या गाऊ गान।
स्मृति मे सिर्फ अंजना है, चार मास तक रहना है।
मेरा चिंता भार हरो ॥३२॥
पुनः पुन. गाते जाना, मति से रस लाते जाना।
गुरु वाणी को मन मे धार, पढी अजना को छह बार।
गुरु आस्था रख विनय वरो ॥३३॥
रामायण फिर कर-कर याद, रजनी मे गाते साल्हाद।
प्रतिपादन-शैली सुदर, जनता खुश होती सुनकर।
सद्गुण रत्न सयत्न भरो' ॥३४॥

लय—म्हारी रस सेलड़िया ।

सुनलो रे सुनलो, सुनलो कुछ अनुभव सत स्वरूप के।
चुन लो रे चुन लो, चुन लो गुण अभिनव संत स्वरूप के ॥ध्रुवपद॥
साल सततर का 'पुर' पावस कर गगापुर आये।
दीक्षित कर चुपचाप 'जीव' को, गुरु चरणो मे लाये रे। सुन लो
॥३५॥
प्रभु आज्ञा से पुनरपि आकर, अच्छा सुयश लिया है।
'चत्रू' पत्नी साथ दीप को, संयम रत्न दिया है रे' ॥३६॥
किया काकड़ोली चौमासा, साल अठतर वाला।
उन्यासी मे शहर लाडनू, पहला दिया हवाला रे' ॥३७॥
अस्सी का बोरावड पुर मे, उज्जयिनी इक्यासी।
दीक्षाए दी तीन, किया कोदर को विरति-विकासी रे ॥३८॥
मालव-यात्रा कर गुरु-पद मे, आठ संत सह आये।
समाचार सुन सघ-वृद्धि के, हर्ष रायऋषि पाये रे' ॥३६॥

एक साल मे शहर उदयपुर, तप मोती ने बडा किया।
दो मे हरिगढ जीत आदि सह शात सुधारस घोल दिया।
शहर लाडनू में 'सरसां' को सयमकी स्थिर निधि दी है।
चदेरी बीदासर पटुगढ़, चूरू पावस स्थिति की है॥४६॥

## दोहा

बीदासर आकर दिया, मूला को चारित्र।
चरण टिकाते मुनि जहा, करते भूमि पवित्र"॥४६॥

## रामायण-छन्द

जय सह बीकानेर सात का और आठ का बीदासर।
सुरपुर श्री ऋषिराय गये तब जीत हुए आचार्य प्रवर"।
भारी गुरु के कृपापात्र फिर रायचन्द के अधिकाधिक।
जय ने बहु सम्मान बढ़ाया कर बख्शीश विभागादिक"॥४८॥

लय—म्हांरी रस सेलड़ियां···

उपाध्याय उपमान सघ में, गये गुणो से बढते।
शान्त प्रकृति सौम्याकृति धृति से, प्रगति शिखर पर चढते रे॥
सुनलो···॥४६॥
सरल तरल दिलदार गुणों के ग्राहक और विचारक॥
शिक्षक व्यक्ति-परीक्षक नय के पोषक दोष-निवारक रे॥५०॥
साधु-क्रिया मे सजग बड़े ही, देख-देख पग धरते।
आलस निद्रादिक को तजते, सफल समय को करते रे॥५१॥
विद्यार्जन करवाने देते शिक्षा-धन मुनिजन को।
कला निभाने की थी अच्छी, करते वश में उनको रे॥५२॥
शासन मे अनुरक्ति भक्ति बहु सुविनीतो की करते।
अविनीतो से नजर न मिलती, सम्मुख कदम न धरते रे"॥५३॥
सूत्र सीख दो ग्रथ अनेकों, पढ़े ध्यान अति देकर।
सीखे हैं बहु बड़े थोकड़े, रचे नये चिन्तन कर रे"॥५४॥
गण की मर्यादा का पालन करते और कराते।
एक बार सघु ग्राम एक मे, आये चरण बढ़ाते रे॥५५॥

गीतक-छन्द

काकडोली और बोरावड किया रतलाम में।
नाथद्वारा उदयपुर फिर वास रीणी ग्राम में।
कालवादी थे वहां प्रतिबोध जन-जन को दिया।
थली देश विशेष ने उस वर्ष शिर ऊंचा किया" ॥४०॥

रामायण-छन्द

बोरावड श्रीजीद्वारा फिर गोगुंदा में पावस खास।
मोता को चारित्र दिया फिर गंगापुर दो वर्षावास।
शेषकाल में मुनि अनूप को संयम-रत्न प्रदान किया।
घोर तपस्वी हुए संघ में कीर्तिमान कर सुयश लिया" ॥४१॥

किया काकडोली में पावस नवति तीन की साल सुखद।
ज्ञान-ध्यान की अधिक वृद्धि से रहा बड़ा वह लाभप्रद॥
प्राय शेषकाल में करते मुनि श्री गुरु-सेवा हर वर्ष।
विनय भक्ति कर उन्हें रिझाते पाते तन-मन में अति हर्ष ॥४२॥

नवति तीन में गुरु ने जय को युवाचार्य पद गुप्त दिया।
सौंपा पत्र स्वरूप श्रमण को, व्यक्त अनुग्रह भाव किया।
पावस पूरा होने पर जब किये जीत ने गुरु दर्शन।
प्रकट किया पद चार तीर्थ में फूला है सबका तन-मन" ॥४३॥

दोहा

पंच नवति का लाडनूं, मुनि स्वरूप जय संग।
कर पाये सप्तर्षि सह, चतुर्मास सोमंग ॥४४॥

रामायण-छन्द

किया काकडोली बोरावड चंदेरी चूरू पावस।
तदनन्तर 'रीणी' में नूतन बरसाया अध्यात्मिक रस।
क्रमश विहरण करते-करते चंदेरी का स्पर्श किया।
माघ मास में 'पन्ना' 'चूना' मां बेटी को चरण दिया" ॥४५॥

सतरह दीक्षाएं दी सारी, भारी कीर्ति कमाई।
श्रम बूंदों से सींच-सींच कर, गण-वनिका विकसाई" ।।७१।।
दे सहयोग साधु-सतियों को, परम शान्ति पहुंचाई।
तप अनशन के प्रेरक बनकर, नूतन ज्योति जलाई"।।७२।।
रहे पास मे उन मुनियों को, गुण भर निपुण बनाये।
पच अग्रणी उनके द्वारा दीक्षित मुनि हो पाये" ।।७३।।
मुनि भवान कालू मुनि श्री की सेवा बहु कर पाये।
पढा लिखाकर जय सोदर ने, उनको योग्य बनाये ।।७४।।
बने बाद में उभय अग्रणी, अच्छी सुषमा लाये।
कालूजी स्वामी तो गण मे, नाम अमर कर पाये"।।७५।।
तप उपवासादिक पन्द्रह तक, जय स्वाध्याय अधिकतर।
शीत समय में एक पटी मे, रहे बहुत सवत्सर" ।।७६।।
शहर लाडनूं में छह वार्षिक, स्थित सकुशल कर पाये।
बडे भाग्य जनता के जिससे, बड़े अतिथि घर आये ।।७७।।
लिये आपके रहते प्रायः, निकट-निकट जय गणिवर।
बार-बार आकर उपजाते, चित्त समाधि अधिकतर ।।७८।।
पचवीस का शहर जोधपुर, पावस कर जय आये।
सम्मुख गये स्वरूप श्रमण सह, पुर में नव छवि लाये ।।७९।।
जन समूह मे जय ने वदन, किया स्वरूप श्रमण को।
देख मिलाप राम भरतोपम, हुआ हर्ष जन-गण को ।।८०।।
एक मास जयगणी विराजे, फिर आना फिर जाना।
मधुरालापों से बरसाते, रस तो सोलह आना ।।८१।।
कर स्वाध्याय सूत्र की मुनि श्री, क्षण-क्षण सफल बनाते।
मस्तक आदि व्याधि को सहते, धृति-बल सतत बढ़ाते ।।८२।।
भाव भरे वचनों से बहु विध, जय परिणाम चढाते।
महाव्रतारोपण आलोचन, शरण चार दिलवाते ।।८३।।
पंचवीस की साल श्रेष्ठतर, ज्येष्ठ चोथ तिथि आई।
समय सुबह का था मगलमय, चरमोत्सव छवि छाई ।।८४।।
चुम्बक रूप स्वरूप सत का, जीवन विवरण गाया।
है 'स्वरूप नवरसा' आदि मे, जिनकी विस्तृत छाया" ।।८५।।

जल कम आने से मुनि बोले—माप माप कर पीना।
'असंविभागी नहु तस्स मोक्खो' वाक्य हृदय में सीना रे॥५६॥
अनुशासन का ध्यान सभी रख, पीते कर बटवारा।
एक साधु झट पात्र उठाकर, सलिल पी गया सारा रे॥५७॥
कहने से फिर उलटा बोला, अविनय बड़ा किया है।
तब तो सब संबंध संघ से, उसका तोड़ दिया है रे॥५८॥
कहा रायऋषि ने स्वरूप से, रे! क्यों उसे बिगाड़ा।
उचित किया भारी गुरु बोले, दूषित दांत उखाड़ा रे"॥५९॥
नौ की साल लाडनूं पुर में, नौ मुनियों से आये।
ज्ञान-ध्यान जागृति से घर-घर, मंगल दीप जलाये रे॥६०॥
'सिणगारां' को संयम देकर, लाये नई बहार।
मेदपाट की तरफ किया है, नव-कल्पिक सुविहार रे॥६१॥
मोखणदा में खेमाजी को, दी दीक्षा दिलदार।
शहर उदयपुर दश का पावस, कर पाये अणगार रे॥६२॥
ग्यारह संतों से ग्यारह का, किया बख्तगढ़ वास।
बारह संतों से बारह का, श्रीजीद्वारा खास रे॥६३॥
पादू में मुनि हसराज को, दिया चरण सुविशाल।
तेरह का ग्यारह ऋषियों से, जयपुर वर्षाकाल रे॥६४॥
माघ मास में लिछमाजी को, संयम की श्री दी है।
चंदेरी बीदासर चूरू में पगफेरी की है रे॥६५॥
सतरह में फिर शहर लाडनूं, तेरह मुनि सह आये।
साल अठारह में बीदासर, ग्यारह मुनि रह पाये रे॥६६॥
दिया 'ज्ञान' को रत्नदुर्ग' में, जाकर संयम भार।
ग्यारह ठाणों से चूरू में, पावस किया उदार रे॥६७॥
बीस साल से पच्चीस तक, चंदेरी स्थिरवास।
वृद्ध अवस्था अंग-व्याधि से, हुआ शक्ति का ह्रास रे"॥६८॥

लय—पल पल बीती जाए…

अप्रतिबंध-विहारी मुनिवर, विचरे पर उपकारी।
चतुर्मास उनचास किये कुल, तारे बहु नर-नारी"॥६९॥
चर्चा बोल-थोकड़े श्रम कर, बहुतों को सिखलाये।
सुलभ-बोधि श्रावक दृढ़धर्मी, दे प्रतिबोध बनाये॥७०॥

विवाह किये बिना आपको यहां से जाने नहीं देंगे क्योंकि हमारी लड़की काफी बड़ी हो चुकी है अतः अधिक प्रतीक्षा का अवसर नहीं है।

स्वरूपचन्दजी ने उन सबको वापस आने का आश्वासन दिया और बतलाया कि मुझे इस समय शीघ्र ही किशनगढ़ पहुंचना है। मैंने सुना है कि वहां कोई रोग फैला हुआ है अतः माता और भाइयों को संभालने के पश्चात् उनकी सम्मति से ही विवाह का समय निश्चित किया जायेगा। इस प्रकार ससुराल वालों को समझाकर और वहां के कार्य से निवृत्त होकर वापस किशनगढ़ आ गये।

(स्वरूप नवरसा ढा० २ दो० २ से ६ के आधार से)

४. सं० १८६८ के शेषकाल में आचार्यश्री भारीमालजी का मुनि हेमराजजी आदि साधुओं के साथ किशनगढ़ में पदार्पण हुआ। वे सं० १८६९ का चातुर्मास करने के लिए जयपुर की ओर जा रहे थे। मार्ग में कुछ दिनों के लिए वहां भी ठहरे। उस समय कल्लूजी आदि को आचार्य प्रवर की सेवा का अच्छा अवसर मिला। वहां से आचार्यश्री भारीमालजी ने जयपुर की तरफ और मुनिश्री हेमराजजी ने माधोपुर की तरफ चातुर्मास के लिए विहार किया। आचार्यश्री तो निर्विघ्न जयपुर पहुंच गये। परन्तु मुनि हेमराजजी माधोपुर नहीं जा सके, क्योंकि वर्षा अधिक होने के कारण मार्ग अवरुद्ध हो गया था। वे वापस किशनगढ़ आ गये और वह चातुर्मास उन्होंने वहीं किया। कल्लूजी आदि को अनायास ही सेवा का दूसरा अवसर प्राप्त हुआ। बालकों के धार्मिक संस्कारी होने की सुदृढ़ भूमिका के लिए वह बहुत उपयोगी हुआ।

उस चातुर्मास में कल्लूजी का किशनगढ़ में थोड़ा ही रहना हुआ। वे पुत्रों सहित जयपुर में आचार्यश्री भारीमालजी की सेवा में चली गईं। वहां उन्हें काफी लम्बे समय तक गुरु सेवा का सौभाग्य प्राप्त हुआ। शारीरिक अस्वस्थता के कारण आचार्यश्री भारीमालजी का फाल्गुन महीने तक जयपुर में ठहरना हुआ। वहां पर स्वरूपचन्दजी आदि तीनों भाइयों तथा माता कल्लूजी को वैराग्य प्राप्त हुआ।

सर्वप्रथम जीतमलजी का दीक्षा लेने का विचार हुआ। उनके बाद स्वरूपचंदजी की दीक्षा लेने की भावना हुई। उन्हें दीक्षा की विशेष प्रेरणा उनकी ससुराल पक्षीया भुआ साध्वीश्री अजबूजी (२६) से मिली। वे चातुर्मास समाप्ति पर गुरु दर्शनार्थ जयपुर आई हुई थीं। स्वरूपचंदजी ने जब उनकी सेवा की तो उन्होंने उनको धर्मोपदेश दिया। उसका उन पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि उन्होंने लगभग एक महीने के अंदर-अंदर तत्काल दीक्षित होने का संकल्प कर लिया।[1]

---

१. वचन सुणी सतियां तणा रे, चढ़िया अति परिणाम।
तत्खिण त्याग किया तदा रे, मास आसरै आम॥
(स्वरूप नव० ढा० ३ गा० १५)

ऋषिराय सुजश ढा० ६ गा० ६ में डेढ़ महीने का उल्लेख है।

१ मुनिश्री स्वरूपचंदजी का जन्म रोयट (मारवाड) में सं० १८५० में हुआ। वे मुनिश्री भीमजी (९३) और जीतमलजी (जयाचार्य) के संसार पक्षीय बड़े भाई थे। उन दोनों का जन्म सं० १८५५ और १८६० में हुआ। वे जाति से ओसवाल और गोत्र से गोलेछा थे। उनके पिता का नाम आईदानजी और माता का कल्लूजी था।

एक बार स्वामी भीखणजी रोयट पधारे। तब उनके उपदेश से वहां गोलेछा आदि अनेक परिवार के लोग समझकर तेरापंथ के अनुयायी बने। मुनि स्वरूपचंदजी की संसार पक्षीया भुआ साध्वीश्री अजबूजी (२९) ने स्वामीजी के पास सं० १८४४ में दीक्षा ग्रहण की। उनके प्रसंग से गोलेछा परिवार में धर्म-ध्यान की विशेष जागृति हुई।

(सरूप नव० ढा० १ दो० १ से ६ के आधार से)

२ आईदानजी ने अपने पुत्र स्वरूपचन्दजी की लघुवय में ही सगाई कर दी थी। उनके विवाह के लिए भी वे उत्साहित हो रहे थे। किन्तु अकस्मात् सं० १८६३ में 'मीर खां' नामक एक मुसलमान सरदार ने ग्राम को लूट लिया। आईदानजी के घर से भी अधिकांश धनमाल ले गए। उस धनापहरण के मानसिक आघात को आईदानजी सहन नहीं कर सके, अत: उसी समय मृत्यु को प्राप्त हो गए[1]।

धन और जन की आकस्मिक क्षति से उनके परिवार को बड़ी क्षति का सामना करना पड़ा। बड़े भाई होने के कारण घर का सारा भार सरूपचंदजी पर आ गया। उन्होंने कुछ वर्षों तक तो वहां रहकर अपना व्यावसायिक कार्य जमा लेने का प्रयत्न किया, परन्तु उसमें सफलता नहीं मिली तब वे अपनी माता कल्लूजी तथा दोनों भाई भीमजी और जीतमलजी को साथ लेकर किशनगढ़ में आकर रहने लगे, उन्होंने व्यापारिक कार्य प्रारंभ कर दिया[2]।

(स्वरूप न० ढा० १ गा० ६, १० ढा० २ दो० १ के आधार से)

३ एक बार सरूपचंदजी किसी कार्यवश किशनगढ़ से वापस रोयट गए तो वहां उनके ससुराल वालों ने उन्हें रोक लिया। उन लोगों का आग्रह था कि हम

---

१ संवत् अठारै तेसठे, 'मीर खां' लूट्यो ग्राम।
धमका थी आईदानजी, परभव पहुंता ताम॥

(जय सुजश ढा० २ दो० १)

स्वरूप नवरसा में सिंधियों की सेना द्वारा लूटे जाने का उल्लेख है।

किशनगढ़ बसवा वसं वस्ते, मात लिए सुत लेह।
हुन्नर आगर वही किशन नगर करेह॥

(स्वरूप नवरसो ढा० २ दो० १)

दिनों से, मुनि भीमजी को मुनि जीतमलजी से बड़ा रखने के लिए चार मास से और मुनि जीतमलजी को छह महीनों से दी गई।

आचार्यश्री ने मुनि भीमजी को अपने पास रखा। साध्वी कल्लूजी को साध्वी अजबूजी को सौंप दिया।

(स्वरूप नवरसा ढा० ५ दो० ३, ४ तथा ढा० ४ गा० १८ के आधार से)

मुनि स्वरूपचंदजी मुनिश्री हेमराजजी के साथ रहकर आचार-विचार मे कुशल, गण-गणी के प्रति श्रद्धा-निष्ठ होकर विनय पूर्वक विद्याभ्यास करने लगे। उन्होने आवश्यक, दशवैकालिक, उत्तराध्ययन (छत्तीस अध्ययन) वृहत्कल्प तथा आचाराग का द्वितीय सूत्रस्कध[1] आदि आगमो को कठस्थ किया। अनेक बार बत्तीस सूत्रो का वाचन कर विविध प्रकार की सैद्धान्तिक रहस्यो की धारणा की।[2] व्याख्यान कला, लिपि-कौशल, वाचन-शैली, तथा चर्चा आदि मे भी अच्छा विकास कर लिया।

मुनि स्वरूपचदजी ने मुनि हेमराजजीके साथ छह एव आचार्यश्री भारीमालजी के साथ एक चातुर्मास किया।

| संवत् | ग्राम | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| १. १८७० | इन्द्रगढ | मुनिश्री स्वरूपचदजी और जीतमलजी साथ थे। | | | |
| २. १८७२ | कटालिया | ,, | भीमजी सहित तीनो भाई साथ थे।[3] | | |
| ३. १८७३ | सिरियारी | ,, | ,, | ,, | ,, |
| ४. १८७४ | गोगुदा | ,, | ,, | ,, | ,, |
| ५. १८७५ | पाली | ,, | ,, | ,, | ,, |
| ६. १८७६ | देवगढ़ | ,, | ,, | ,, | ,, |

स० १८७१ का चातुर्मास भारीमालजी के साथ बोरावड मे किया। मुनि भीमजी और जीतमलजी ने हेमराजजी स्वामी के साथ पाली चातुर्मास किया।[4]

(स्वरूप नव० ढा० ५ के आधार से)

---

१ स० १८७४ के गोगुदा चातुर्मास मे मुनि हेमराजजी के साथ मुनिश्री ने आचाराग का द्वितीय श्रुतस्कध सीखा था। (शान्ति विलास ढा० ३ गा० ४)

२. वार अनेक वाचिया, सूत्र वत्तीस उदार हो।
जाण क्षोणी रहिमा तणा, वारु न्याय विचार हो॥
(स्वरूप न० ढा० ८ गा० १)

३. पभणे भारीमालजी, ए त्रिहु बधव ताम हो।
हेम समीपे भेला रहो, इम कहि सूप्या आम हो॥
(स्वरूप नव० ढा० ५ गा० १०)

४. द्वितीय चौमास बोरावडे, भारीमाल रै पास हो।
भीम जीत ऋषि हेम पै, पाली सैहर प्रकाश हो॥
(स्वरूप नव० ढा० ५ गा० ६)

सरूपचंदजी जयपुर से अपने घर गये और एक महीने में गृहस्थ-संबंधी अपने समस्त कार्य से निवृत्त होकर वापस जयपुर आ गये। उन्होंने आवश्यक तात्त्विक ज्ञान सीखकर दीक्षा के लिए गुरुदेव से निवेदन किया तब आचार्यश्री ने जीतमल-जी से पहले स्वरूपचंदजी को संयम देने की घोषणा कर दी। स्वरूपचंदजी ने माता कल्लूजी से दीक्षा की स्वीकृति प्राप्त की। जयपुर के लाला हरचंदलाल जी ने धूमधाम से उनका दीक्षा महोत्सव किया। सं० १८६६ पोष सुदि ९ को 'मोहनवाड़ी' में वट वृक्ष के नीचे सरूपचंदजी ने आचार्यश्री भारीमालजी से दीक्षा ग्रहण की।[1]

ख्यात तथा शासन प्रभाकर ढा० २ गा० ८३ में मुनिश्री की दीक्षा तिथि पोष शुक्ला १५ लिखी है, जो उक्त प्रमाण से गलत है। स्वरूप-विलास तथा जय सुजश में भी दीक्षा तिथि पोष शुक्ला नवमी ही है।

मुनि सरूपचंदजी की दीक्षा के पश्चात् आचार्यश्री भारीमालजीने जीतमल-जी को दीक्षित करने के लिए मुनि रायचंदजी को आदेश दिया। उन्होंने घाट के दरवाजे के बाहर वट वृक्ष के नीचे माघ कृष्णा सप्तमी के दिन उन्हें दीक्षा प्रदान की।[2] माता कल्लूजी ने दोनों पुत्रों को दीक्षा की अनुमति देकर बहुत बड़ा लाभ प्राप्त किया।

आचार्यश्री भारीमालजी ने मुनि स्वरूपचंदजी और जीतमलजी को ज्ञाना-र्जन के लिए मुनि हेमराजजी को सौंपा तथा उन्हें कोटा की तरफ विहार करा दिया।

दोनो भाइयों की दीक्षा के बाद माता कल्लूजी और भाई भीमजी की संयम लेने की भावना हुई तब फाल्गुन कृष्णा ११ को आचार्यश्री भारीमालजी ने दोनों को संयम प्रदान किया।[3]

(स्वरूप न० ढा० २, ३, ४ के आधार से)

५. मुनिश्री स्वरूपचंदजी को बड़ी दीक्षा (छेदोपस्थानीय-चारित्र) सात

---

१. संवत् अठार गुणतरे, पोह सुदि नवमी पेख कै।
   स्वहस्त भारीमालजी, चरण दीयो सुविसेख कै।।
   (स्वरूप नव० ढा० ४ गा० ८

२. महाविद सातम दिने, जीत चरण सुखकार कै।
   वड तरु तल ऋषिरायजी, दीधो संजम भार कै।।
   (स्वरूप नव० ढा० ४ गा० १२

३. फागुण विद एकादशी, स्वहस्त भारीमाल कै।
   मात सघाते भीम नैं, चरण दीयो सुविशाल कै।।
   (स्वरूप नव० ढा० ४ गा० १७

मुनिश्री ने आचार्यश्री भारीमालजी से निवेदन किया कि मुझे अंजना सती के अतिरिक्त व्याख्यान याद नहीं है और चातुर्मास प्रवास का लम्बा समय है, अतः रात्रि के समय किस व्याख्यान का वाचन करूं? आचार्यप्रवर ने फरमाया—'अंजना के व्याख्यान का ही बार-बार वाचन करते रहना।'

मुनिश्री ने गुरुवाणी को शिरोधार्य कर सं० १८७७ का प्रथम चातुर्मास पुर में किया। वहां रात्रि के समय 'अंजना सती' के व्याख्यान का छह बार वाचन किया। कुछ दिनों बाद रामचरित्र कंठस्थ करना प्रारम्भ किया। दिन में कंठस्थ करते और रात्रि में उसका वाचन करते। उनकी व्याख्यान शैली सुन्दर थी जिससे जनता बहुत आती और सुनकर प्रभावित होती।[1]

(श्रुतिगत)

उस चातुर्मास में मुनिश्री सहित पांच साधु थे। उनमें मुनि पीथलजी (५६) ने चातुर्मासिक तप किया जो तेरापंथ में तब तक सर्वप्रथम था।

(पीथल मुनि गुण वर्णन ढा० १ गा० ७ के आधार से)

७. मुनिश्री के सं० १८७७ के पुर चातुर्मास में धर्म का प्रचार-प्रसार अच्छा हुआ। अपना प्रथम चातुर्मास सानंद सम्पन्न कर वे गंगापुर पधारे। वहां भी धर्म-ध्यान की अच्छी जागृति हुई। उन्होंने जब वहां से विहार किया तब गंगापुर से डेढ़ कोस दूर 'बागणी के माल' (स्थान) में कुआं के पास सं० १८७७ पौष वदि ६ के दिन मुनि जीवोजी (८६) को तेरह वर्ष की वय में गृहस्थ के वस्त्रों सहित दीक्षा दी और फिर कांकरोली आकर भारीमालजी स्वामी के दर्शन किये एवं नव दीक्षित मुनि को प्रथम भेंट में समर्पित किया।[1]

इसी वर्ष दूसरी बार गंगापुर जाकर मुनिश्री ने सं० १८७७ ज्येष्ठ शुक्ला तेरस को जीवोजी के बड़े भाई मुनि दीपोजी (८४) को तथा उनकी पत्नी साध्वीश्री चनूजी (१००) को संयम प्रदान किया।[2]

---

१. रामचरित्र दिन नैं किमैं गु०, कांई मूंडै करी सिधार।
 रात्रि समय व्याख्यान दें गु०, कांई एहवो बुद्धि उदार॥

(स्वरूप विलास ढा० ३ गा० ५)

१. पुर सूं विहार करी मुनि रे, गंगापुर में आय।
 जीव रुषि ने सोमणो रे, चरण दियो सुखदाय॥
 पूज समीपे आय नैं रे, दर्शण कर हरषाय।
 शिष्य किनें भारीमाल नी रे, सेव करी सुखदाय॥

(स्वरूप नव० ढा० ६ गा० १, २)

२. इतलै वडव जीव नो रे, दीप सजोड़े न्हाल।
 चरण लेण त्यारी थयो रे, सांभलियो भारीमाल॥

लिए तैयार किया¹।

सं० १९०८ माघ वदि १४ को आचार्यश्री रायचंदजी का छोटी रावलिया (मेवाड) में स्वर्गवास हो गया। सं० १९०८ माघ शुक्ला पूर्णिमा को बीदासर में जयाचार्य चतुर्थ पट्ट पर आसीन हुए।

(स्वरूप नव० ढा० ७ गा० ३ से ८)

१६ मुनिश्री स्वरूपचंदजी आचार्यश्री भारीमालजी तथा रायचंदजी के विशेष कृपापात्र थे। जयाचार्य ने पदासीन होकर उनको बहुत सम्मान दिया एवं आहारादिक के विभाग से मुक्त किया²।

ख्यात में उल्लेख है कि उन्हें आहार तथा सभी प्रकार के कार्य विभाग से मुक्त किया।

१७ जयाचार्य ने मुनिश्री की प्रमुख-प्रमुख विशेषताओं का संत गुणमाला तथा 'स्वरूप नवरसा' में उल्लेख किया है। उसके कुछ पद्य निम्न प्रकार हैं—

स्वामी स्वरूपचंदजी शोभता रे, त्यां संजम लीयो जयपुर मांय रे।
ते पढत हुआ छै परवडा रे, त्यांनै वादी पाचूं अंग नमाय रे॥

(संत गुणमाला ढा० १ गा० ३१)

लिखणो पढ़णो वाचणो, चित्त चरचा नी चूंप हो।
विनय वैयावच्च करण में, अति उजमाल अनूप हो॥
जबर सासण नी आसता, परम पूज्य सूं प्रीत हो।
प्रबल पंडित बुद्धि सागरू, सतगुरु ना सुविनीत हो॥
कला घणी चरचा तणी, अन्य मति नें आप हो।
वद करै इक बोल में, साधीयंता चित्त स्थाप हो॥

(स्वरूप नव० ढा० ५ गा० १४, १७, १८)

भारीमाल ऋषिराय नी, हेम व्यावच विध रीत हो।
विध-विध सूं रीझाविया, पूर्ण त्यासूं प्रीत हो॥

---

१. हिवे संवत उगणीसैं वर्ष आठे, कियो बीदासर चउमास जी।
स्वरूपचंदजी स्वामी पिण साथे, द्वादस मुनि गुणरास जी॥

(जय सुजश ढा० ३४ गा० ८)

आठे बीदासर सैंहर में, जीत संग चउमास।
चारित्र लेण मघराज नैं, त्यार कियो सुप्रकास॥

(स्वरूप नव० ढा० ७ गा० ११)

२. सरूप नै तिणवार रे, असणादिक पाती बिना।
जय वर बगसी सार रे, वलि अति कुर्व वधावियो॥

(स्वरूप नव० ढा० ७ का अन्तर्गत सो० १०)

पुत्री) वन्नाजी (२०६) और चूनाजी(२१०) कुमारी कन्या को दीक्षा प्रदान की।

(उक्त साध्वियों की ख्यात)

१४ स० १९०१ मे मुनिश्री ने उदयपुर चातुर्मास किया। वहां मुनिश्री मोतीजी (११८) 'द्रुपोड' ने पानी के आधार से १०८ दिन का तप किया, जो तेरापन्थ मे सर्वोत्कृष्ट था।[1]

स० १९०२ मे मुनिश्री का चातुर्मास युवाचार्यश्री जीतमलजी के साथ किशनगढ था। वहां सात साधु थे।[2] चातुर्मास के पश्चात् मुनिश्री ने लाडनूं पधार-कर मृगसर सुदि ४ को साध्वीश्री सरूपांजी (२२२) 'लाडनूं' को दीक्षित किया।

(साध्वीश्री सरूपांजी की ख्यात)

स० १९०३ से १९०६ तक के चातुर्मास—लाडनूं, बीदासर, सुजानगढ और चूरू मे किये।

(स्वरूप न० ढा० ७ गा० ९, १० के आधार से)

स० १९०६ जेठ सुदि तेरस को बीदासर मे साध्वीश्री मूलांजी (२२५) 'बीकानेर' को चारित्र दिया।

(सा० मूलांजी की ख्यात)

१५ युवाचार्यश्री जीतमलजी ने स० १९०६ का चातुर्मास बीकानेर मे किया था। फिर श्रावकों की विशेष प्रार्थना पर आचार्यश्री रायचन्दजी ने युवाचार्यश्री को स० १९०७ का चातुर्मास भी बीकानेर मे करने का आदेश दिया। कल्प के लिए मुनिश्रीस्वरूपचन्दजी को भेजा[3]। मुनिश्री ने युवाचार्यश्री जीतमलजी के साथ वह चातुर्मास किया। चातुर्मास मे १० साधु थे[4]।

स० १९०८ का चातुर्मास भी मुनिश्री ने युवाचार्यश्री जीतमलजी के साथ बीदासर मे किया। वहां बारह साधु थे। चातुर्मास मे बालक मघवा को दीक्षा के

---

१ उगणीसै एके समै, उदीयापुर सैहर मझार।
एक सौ आठ 'मोती' किया, वर तप उदक आगार॥

२. उगणीसै बीये वर्ष, साध मुमुक्ष सात।
कृष्णगढ माहे कियो, चतुरमास विख्यात॥

(स्वरूप नव० ढा० ७ गा० ८)

३ जिन मुनियो ने चातुर्मास किया वहा उन्हें अगले दो वर्षों तक बड़े साधुओ के साथ मे रहने से ही चातुर्मास करने का विधान है।

(जय सुजश ढा० ३० दो० १)

४ साते वर्ष सरूप शशि दे रे, दस मुनि सग चौमास।

(जय सुजश ढा० ३१ गा० १३)

पीना आवश्यक नही होता पर आज तो विशेष स्थिति थी, इसलिए तुम्हे ध्यान रखना था।' फिर भी वह साधु आग्रह करता रहा और अट-सट बोलता रहा। न तो वह अपनी गलती मानने को तैयार हुआ और न व्यवस्था को ही। आखिर अनुशासन और व्यवस्था का भग करने पर मुनिश्री ने उसका सघ से सबध विच्छेद किया।

कुछ दिन पश्चात् मुनिश्री ने आचार्यश्री भारीमालजी के दर्शन किये। उ समय ऋषिराय ने मुनिश्री से कहा—'स्वरूप! तुमने छोटी-सी बात के लिए उ गण से अलग कर दिया, यह अच्छा नही किया।'

आचार्यश्री भारीमालजी ने बीच मे टोकते हुए फरमाया—'नही, स्वरूप ठीक काम किया। जो साधु अनुशासन का भग करे, उसे सघ मे रखना कभी हितकर नहीं होता।'

(अनुश्रुति के आधार

२०. मुनिश्री ने स० १९०९ का चातुर्मास ६ साधुओ से लाडनू मे किय वहा साध्वीश्री सिणगाराजी (२८०) को दीक्षा दी। सिणगाराजी की ख्यात दीक्षा तिथि कार्त्तिक शुक्ला ३ है तथा स्वरूप नवरसा ढा० ७ सो० १ मे मृगा महीने मे दीक्षा देने का उल्लेख है।

स० १९०९ के शेषकाल मे मुनिश्री मेवाड पधारे। वहा जयाचार्य ने मुनि स्वरूपचदजी तथा साध्वीश्री नवलाजी (२४०) को मोखणदा भेजा। मुनिश्री मोखणदा मे फाल्गुन वदि ७ को खेमाजी (२८४) 'मोखणदा' को दीक्षित किय साध्वी खेमाजी मुनिश्री जोगीदासजी (१६०) की पुत्री तथा साध्वीश्री हस्तू (३६२) की बहिन थी।

(स्वरूप नव० ढा० ७ गा० १२, सो० १, २ तथा ख्यात के आधार से

मुनिश्री ने स० १९१० का चातुर्मास उदयपुर, १९११ का ग्यारह ठाणा बखतगढ और १९१२ का बारह ठाणो से श्रीजीद्वारा मे किया। स० १९१२ चातुर्मास तालिका मे ६ ठाणों का उल्लेख है।

स० १९१२ के शेषकाल मे मुनिश्री विहार करते हुए बडी पादू पधारे। व मुनि हमराजजी (१७२) 'बडी पादू' को दीक्षा प्रदान की।

स० १९१३ मे ग्यारह साधुओ से जयपुर चातुर्मास किया। वहा माघ सु २ को लिछमाजी (३११) 'जयपुर' को दीक्षा देकर साध्वी मोताजी (१३६) सौप दिया।

स० १९१४ का चातुर्मास १२ साधुओ से लाडनू, १९१५ का बीदास १९१६ का चूरु, १९१७ का तेरह साधुओ से लाडनू और स० १९१८ का १ साधुओं से बीदासर किया। स० १९१८ के शेषकाल मे मुनि ज्ञानचदजी (१८ को दीक्षा दी। वे रतनगढ के थे और उन्हे रतनगढ मे दीक्षा दी, ऐसा उन

अधिक सामण नी आगता, जिमा नी तिह अधिकाय हो।
कोइ कटमी बात करै गण तणी, तिण नें जेहर सरीसो जाणै ताय हो॥
सम्यक्त्व में सेंठा घणा, ए गुण अधिक अमोल हो।
स्वामी देख भयभ्रान्त होवै नहीं, मदर जेम अडोल हो॥
सत निभावण नी कला, ते पिण कहिय न जाय हो।
'ऊपचलाइ पणो' तजी, देवै धोरप सूं समजाय हो॥
आलोचना ऊंडी घणी, ए पिण गुण इधिकाय हो।
तीन काम री विचारणा, जबर हिया रै मांय हो॥
गुणग्राही पिण अति घणां, अधिक निभावत प्रीत हो।
जेहनें आप अगी करयो, राखै तेहनी रीत हो॥
अधिक मनुष्य नी पारखा, स्वाम सरूप रै सार हो।
कोई कपट प्रपच करै तमु, ओलखी तुरत निवार हो॥
जय गणपति नी आगन्या, अखड आराधी आप हो।
परम प्रीत चित में घणी, मिलवै हर्ष सुव्याप हो॥
सासण अधिक दिपावता, व्याख्यानादिक मांय हो।
सासण दिपावै तेह सू, राखै हेत सवाय हो॥
(स्वरूप नव० ढा० ८ गा० १३, १६ से २१, २३, २४)

१८. मुनिश्री ने अनेक बार ३२ सूत्रों का वाचन किया। गूढ़तम रहस्यों की बारीकी से छानबीन की। नियठा, सजया, बड़ी सढी, समोसरण, गम्मा, चरम पद, महादडक, खड़ाजोयण, गागेय का भांगा, पुद्गल परावर्तन, डाला, पाला, कपमान आदि अनेक थोकड़े कठस्थ किये तथा अपनी प्रतिभा से नये थोकड़े भी बनाये।

(स्वरूप नव० ढा० ८ गा० १ से ८ के आधार से)

१९. एक बार मुनिश्री स्वरूपचदजी विहार करते हुए मार्ग के किसी गांव में ठहरे। वहां आहार तो पर्याप्त आ गया परन्तु पानी बहुत कम आया। मुनिश्री ने साथ के सभी साधुओं से कहा—'आज पानी बहुत कम है इसलिए सभी को ऊनोदरी तो करना ही है, फिर भी सम विभाग के लिए टोपसी से माप-माप कर ही पानी पीना है, जिससे दूसरों को उसका पूरा विभाग मिल सके।'

मुनिश्री के वचन का प्राय सभी साधुओं ने ध्यान रखा पर एक साधु ने बिना मापे ही पानी पी लिया। मुनिश्री ने उसे उपालम्भ देते हुए कहा—'मेरे कहने के पश्चात् तुमने बिना मापे पानी क्यों पिया?' वह साधु बेपरवाही से उत्तर देता हुआ बोला—'पानी भी कोई माप-माप कर पिया जाता है? मुझे प्यास लगी थी अत. अधिक पी लिया तो क्या हुआ?'

मुनिश्री ने उसे समझाते हुए कहा—'सामान्य स्थिति में पानी को मापकर

२५. १६०१ उदयपुर
२६. १६०२ किशनगढ़ युवाचार्यश्री जीतमलजी के साथ, साधु ७[1]।
२७ १६०३ लाडनू
२८. १६०४ बीदासर
२६. १६०५ लाडनू
३०. १६०६ चूरू
३१. १६०७ बीकानेर युवाचार्यश्री जीतमलजी के साथ, साधु १०[2]।
३२. १६०८ बीदासर ,, ,, ,, ,, ,, ,, १२[3]।
३३. १६०६ लाडनू ६ साधुओं से
३४. १६१० उदयपुर
३५. १६११ कांकरोली? देवगढ़ ११ साधुओं से
३६. १६१२ श्रीजीद्वारा १२ ,, ,,[4]
३७. १६१३ जयपुर ११ ,, ,,
३८. १६१४ लाडनू १२ ,, ,,
३६. १६१५ बीदासर
४०. १६१६ चूरू
४१. १६१७ लाडनू १३ ,, ,,
४२. १६१८ बीदासर ११ ,, ,,
४३. १६१६ चूरू ११ ,, ,,
४४ से ४६. १६२० से १६२५ तक लाडनू में स्थिरवास किया।

(स्वरूप नव० ढा० ६ से ८ के आधार से)

जयाचार्य पदासीन होने के पश्चात् मुनिश्री की सेवा में कम से कम ८ साधु

---

१. जय सुजश ढा० ३० दो० १।
२. जय सुजश ढा० ३१ गा० १३।
३. जय सुजश ढा० ३४ गा० ८।
४. मुनि जीवोजी (८६) कृत साध्वी नवलांजी (२८५) की गुण वर्णन ढालिका के अन्तर्गत एक दोहे के उल्लेखानुसार इस चातुर्मास में नौ साधु थे।

चेतन (८६), उदैचंद (६४), जीव ऋषि (११३), जीतराज (११५), रूपचंद (११४) भवानजी (१२०), माणक (६६), मन बसिये साधु (११६) करै आनंद ॥

(नवल सती गु० व० ढा० दो० १)

उदयपुर के श्रावकों द्वारा लिखित प्राचीन चातुर्मासिक तालिका में भी ६ ठाणों का उल्लेख है।

ख्यात में लिखा है।

सं० १९१९ का ११ साधुओं से चूरू चातुर्मास किया। तत्पश्चात् वृद्धावस्था एवं शारीरिक दुर्बलता के कारण मुनिश्री धीरे-धीरे लाडनूं पधारे और सं० १९२० से १९२५ तक वहां स्थिरवास किया।
(स्वरूप नव० ढा० ७ गा० १३ से १६ तथा ढा० ८ दो० १ से ५ के आधार से)

२१ मुनिश्री के अग्रणी अवस्था के चातुर्मासों की तालिका इस प्रकार है—

| संवत् | ग्राम |
| --- | --- |
| १ १८७७ | पुर, पांच साधुओं से। |
| २. १८७८ | कांकरोली, पांच साधुओं से। |
| ३. १८७९ | लाडनूं, पांच साधुओं से। |
| ४. १८८० | बोरावड़। |
| ५. १८८१ | उज्जैन, ५ साधुओं से। |
| ६ १८८२ | कांकरोली। |
| ७. १८८३ | बोरावड़। |
| ८. १८८४ | रतलाम |
| ९. १८८५ | श्रीजीद्वारा |
| १०. १८८६ | उदयपुर |
| ११. १८८७ | रीणी (तारानगर) |
| १२. १८८८ | बोरावड़ |
| १३. १८८९ | श्रीजीद्वारा |
| १४. १८९० | गोगुंदा |
| १५. १८९१ | गंगापुर |
| १६. १८९२ | गंगापुर (बड़े संतों के कल्प से) |
| १७. १८९३ | कांकरोली |
| १८. १८९४ | श्रीजीद्वारा, आ० रायचंदजी के साथ |
| १९. १८९५ | लाडनूं युवाचार्यश्री जीतमलजी के साथ, स |
| २०. १८९६ | कांकरोली |
| २१. १८९७ | बोरावड़ |
| २२. १८९८ | लाडनूं आ० रायचंदजी के साथ |
| २३ १८९९ | चूरू |
| २४. १९०० | रीणी |

जय सुजश ढा० २७ दो० १।

२. सं० १८९० मृगसर वदि १० को कुमारी कन्या मोताजी (१३६) 'गोगुन्दा' को गोगुन्दा मे दीक्षा दी।
३. सं० १९०० माघ वदि ७ को वन्नाजी (२०६) 'लाडनूं' को पुत्री चूनाजी सहित लाडनूं में दीक्षा दी।
४. सं० १९०० माघ वदि ७ को कुमारी कन्या चूनांजी (२१०) 'लाडनूं' को माता वन्नाजी सहित लाडनूं मे दीक्षा दी।
५. सं० १९०२ मृगसर सुदि ४ को साध्वीश्री सरसांजी (२२२) 'लाडनूं' को लाडनूं मे दीक्षा दी।
६. सं० १९०६ जेठ सुदि १३ को साध्वीश्री मूलांजी (२५५) 'बीकानेर' को बीदासर मे दीक्षा दी।
७. सं० १९०९ कार्तिक शुक्ला ३ को साध्वीश्री सिणगाराजी (२८०) 'लाडनूं' को लाडनूं मे दीक्षा दी। ऐसा ख्यात मे है पर स्वरूप नवरसा ढाल ७ सो० १ मे मृगसर महीने मे दीक्षा देने का उल्लेख है।
८. सं० १९०९ फाल्गुन वदि ७ को खेमांजी (२८४) 'मोखणदा' को मोखणदा मे दीक्षा दी।
९. सं० १९१३ माघ सुदि २ को साध्वीश्री लिछमांजी (३११) 'जयपुर' को जयपुर मे दीक्षा दी।

(उक्त साध्वियों की ख्यात)

२३. मुनिश्री ने अनेक साधु-साध्वियों को अस्वस्थता के समय चित्त-समाधि उपजा कर, तप तथा अन्तिम समय मे अनशन करवा कर बहुत सहयोग दिया[1]। उनकी प्राप्त तालिका इस प्रकार है—

१. सं० १८८७ में माता कल्लूजी (७४) को अन्तिम सलेखना के समय दर्शन, सेवा का लाभ देकर मातृ-ऋण से मुक्त हुए।

(साध्वी कल्लूजी की ख्यात)

२. सं० १८९० गोगुंदा चातुर्मास मे मुनिश्री जीवोजी (४४) तासोल वालों को अस्वस्थता के समय अच्छा सहयोग दिया[2]।

३. सं० १८९७ मे मुनिश्री मोतीजी (९६) 'बाघावास' वालों को अन्त

१ पंडित मरण घणां भणी, आप करायो साय हो।
अधिक साहज्य दीधो मुनि, वलि सजम साहज्य सवाय हो॥
(स्वरूप नव० ढा० ८ गा० ३३)

२. पांचू साध सेवा कीधी प्रेम सू, सरूपचन्दजी भने दीधो साज रे।
सागारी अणसण कीधो अति सोभती, जीत नगारा रह्या बाज रे॥
(जीव० मु० गु० व० ढा० १ गा० १०)

तथा अधिक से अधिक १८ साधु तक रहे ऐसा ख्यात तथा शासन प्रभाकर भारी मत वर्णन ढा० ४ गाथा ६१ में उल्लेख है।

२२. मुनिश्री बड़े परिश्रमी और यशस्वी थे। वे जो कार्य करते उसमें प्रायः सफल होते। उन्होंने प्रतिबोध देकर तथा तत्त्वज्ञान सिखाकर अनेक व्यक्तियों को सुलभ बोधि, सम्यक्त्वी और श्रावक बनाया तथा कई भाई-बहिनों को दीक्षा प्रदान की[1]।

मुनिश्री द्वारा दीक्षित ८ साधु और ६ साध्वियों की सूची इस प्रकार है—

साधु—

१. सं० १८७७ पोष वदि ६ को मुनिश्री जीवोजी (८६) 'गंगापुर' को गंगापुर से १॥ कोश दूर कागणों के माल में कुए के पास दीक्षा दी।
२. सं० १८७७ जेठ सुदि १३ को मुनिश्री दीपोजी (८५) जीवोजी के बड़े भाई को उनकी पत्नी चनूजी सहित गंगापुर में दीक्षा दी।
३. सं० १८८१ में मुनिश्री पूजोजी (८८) 'उज्जैन' को उज्जैन में।
४. सं० १८८१ में मुनिश्री हिन्दूजी (९१) 'बड़नगर' को बड़नगर में धनजी के साथ दीक्षा दी।
५. सं० १८८१ में मुनिश्री धनजी (९२) उज्जैन को बड़नगर में हिन्दूजी के साथ दीक्षा दी। (जय सुजश ढा० १० दो० २)
६. सं० १८९२ चैत्र कृष्णा ८ को मुनिश्री अनोपचन्दजी (११४) 'नाथद्वारा' को नाथद्वारा में दीक्षा दी।
७. सं० १९१२ में मुनिश्री हंसराजजी (१७२) 'बड़ी पादु' को बड़ी पादु में दीक्षा दी।
८. सं० १९१६ में मुनिश्री ज्ञानचन्दजी (१८६) 'रतनगढ़' को रतनगढ़ में दीक्षा दी।

(उक्त साधुओं की ख्यात)

साध्वियां—

१. सं० १८७७ जेठ सुदि १३ को साध्वीश्री चनूजी (१००) 'गंगापुर' पति दीपोजी सहित गंगापुर में दीक्षा दी।

---

[1] च्यार तीर्थ नें सीखावता, उद्यमी अधिक अनूप।
बहु नें बोध पमावियो, वले बहुजन नें समजाय हो।
श्रावक कीधा गुहरा, बहु नें चरण दीयो सुखदाय हो।
(स्वरूप नवरसो ढा० ८ गा० ८, ९)

३. मुनिश्री पूजोजी (८८), जो तपस्वी संत हुए। जिन्होंने २२ तक की लडी, ऊपर मे ३३ दिन का तप तथा अनेक बार मासखमण किये।
४. मुनिश्री हिन्दूजी (९२), जिनमे हस्तकौशल अच्छा था। जिन्होंने १८९७ मे मुनिश्री हेमराजजी की आख का ऑपरेशन किया।
५. मुनिश्री अनोपचन्दजी (११४), जो महान् तपस्वी हुए। जिन्होने साधु-संघ मे सर्वोत्कृष्ट तप किया। स० १९०९, १०, ११ मे लगातार तीन वर्ष छह्-मासी तप किया। स० १९१२ मे सवा सातमासी तप किया। जो साधु-समाज मे सर्वाधिक है। स० १९१५ मे फिर छह्मासी की।

(उक्त साधुओं की ख्यात)

२५ मुनिश्री ने मुनि भवानजी लघु (१६०) तथा मुनिश्री कालूजी बडा (१६३) आदि सतो को पढा-लिखा कर तैयार किया। दोनो ही मुनियो ने मुनिश्री की प्रारम्भ से अत तक बहुत सेवा की[1] एव बाद मे वे अग्रगामी बनकर विचरे। मुनिश्री कालूजी की शासन सेवा तो इतिहास के स्वर्णिम पृष्ठो मे अकित है।

(ख्यात)

२६ मुनिश्री ने उपवास, बेले आदि बहुत किये। ऊपर में १५ दिन का तप किया[2]।

स० १८७४ मे मुनिश्री हेमराजजी के साथ गोगुदा चातुर्मास मे १४ दिन की तपस्या की थी। (हेम नवरसो ढा० ५ गा० २१)

स० १८७५ के पाली चातुर्मास मे मुनिश्री हेमराजजी के साथ ४२ उपवास किये थे। (जय सुजश ढा० ६ दो० २)

मुनिश्री ने शीतकाल मे अनेक वर्षों तक एक पछेवडी से अधिक नहीं ओढी। स० १९०८ के पश्चात् तो वे रात्रि के समय उस पछेवडी को उतार कर विशेष रूप से स्वाध्याय किया करते थे[3]।

---

१. बहु वर्षां लग छेडा सूधी, 'भवान' 'कालू' आदि।
तन-मन सेती सेव करि अति, विविध प्रकार समाधि॥
(स्वरूप नवरसो ढा० ९ गा० ६६)

२ चोथ छठादिक तप बलि, पनर दिवस लग कीध हो।
कर्म काटण उद्यमी घणा, जग माहै जश लीध हो॥
(स्वरूप नव० ढा० ८ गा० १२)

३. शीतकाल माहै मुनि, एक पछेवडी उपरत।
बहुलपणे ओढी नहीं, वर्ष घणे मतिवत॥
आठा ना वर्ष पछै मुनि, इक पछेवडी परिहार।
प्रवर सझाय निशा विषै, करता अधिक उदार॥
(स्वरूप नव० ढा० ८ गा० १०, ११)

समय मे शरणें आदि दिलाकर उनकी भावना बलवती की'।

४ स० १९१२ मे मुनिश्री का चातुर्मास नाथद्वारा मे था। चातुर्मास मे कोठारिया पधार कर उन्होने साध्वीश्री नवलांजी (२८५) को साहाय्य दिया।

(साध्वी नवलांजी की गु० व० ढाल)

५. मुनिश्री जीवोजी (८९) रचित साध्वीश्री नवलांजी (२८५) की ढाल के अन्तर्गत दोहे के उल्लेखानुसार मुनि रूपचंदजी (१३४) स० १९१२ के नाथद्वारा चातुर्मास मे मुनिश्री स्वरूपचंदजी के सिंघाड़े मे थे। ख्यातानुसार उस वर्ष अनशन-पूर्वक नाथद्वारा मे दिवगत होने से लगता है कि वे मुनिश्री के पास चातुर्मास मे पंडित-मरण प्राप्त हुए और मुनिश्री सहायक बने।

६ स० १९२२ लाडनू मे मुनिश्री उदयराजजी (९५) को अनशन करवाया एव संलेखना, संथारे के ६५ दिनों मे पूर्ण सहयोग दिया।

(उदयचंद चो० ढा० ३, ४)

७ स० १९२४ वैसाख मे मुनिश्री शिवमालजी (११७) को संथारा करवाया'।

८ स० १९२५ मृगसर मे मुनिश्री भेरजी (७९) देवगढ़ वालों को सहयोग दिया'।

९. स० १९२५ द्वितीय वैसाख मे साध्वीश्री मन्नांजी (२७०) (मघवागणी की माता) को अंतिम समय मे अच्छा सहयोग दिया।

(जय सुजश ढा० ५२ गा० १४)

२४ ख्यात मे उल्लेख है कि मुनिश्री द्वारा दीक्षित ५ साधु अग्रगामी बने—

१ मुनिश्री दीपोजी (८५), जो बड़े तपस्वी हुए, जिन्होंने छह मासी तप किया।

२. मुनिश्री जीवोजी (८९), जिन्होंने ११ सूत्रो की जोड़ की, अनेक सत सती गुण वर्णन की ढालें बनाईं। आयम्बिल वर्धमान तप की ४४ ओली तक चढ़कर सघ मे नया कीतिमान स्थापित किया।

---

१ छेहड़े साझ दीधो भलो, सरूपचद जसोनी हो।
चित्त साधं कर मरथिया, गुण गाहक मोती हो॥

(मोती गु० व० ढा० १ गा० १)

२ स्वाम सरूप रे आगमं रे, सत पोढ़र मझार।
चौवीसे वैसाख मे रे, कर गयो खेवो पार॥

(शिवमाल मुनि गुण० व० ढा० १ गा० १)

३ स्वरूपचदजी स्वामीश्री, सझरो दीधो सहाज।
वर्ष पचवीसे साझ्यो, भैर भवोदधि पाज॥

(भैर मुनि गु० ढा० १ गा०

किसी तरह मन में विचार न करें।' फिर सरदार सती ने जयाचार्य को उक्त सब बात कही तब जयाचार्य ने तत्काल स्वरूपचंदजी स्वामी के समीप आकर कहा—"मैं आपके पास शेषकाल में रहने के अतिरिक्त चातुर्मास भी कर सकता हू। आप निश्चित रहे।' ये शब्द सुनकर मुनिश्री का मन हर्ष से भर गया[1]।

जयाचार्य ने मुनिश्री स्वरूपचदजी को महाव्रतों का उच्चारण करवाया। मुनिश्री ने सम्यक् प्रकार से आलोचना तथा क्षमायाचना की। जेठ वदि ३ को मुनिश्री ने अच्छी तरह भोजन किया। दो प्रहर दिन चढने के बाद मुनि भवानजी को अमूल्य शिक्षाए दी। मुनि कालूजी ने शिक्षा देने के लिए प्रार्थना की तब फरमाया—'तुम्हें तो अनेक बार शिक्षा दी हुई है।' युवाचार्यश्री मघराजजी ने मुनिश्री की सुखपृच्छा की तब कहा—'कुछ जी मचल रहा है।' जयगणी ने मेरे लिए किसी प्रकार की कमी नही रखी। फिर 'साल' (शाला) से उठकर ओरे (कमरा) के पास तम्बाकू मसला कर रात्रि-शयन के स्थान पर आए। जयाचार्य और सरदार सती ने मुनिश्री को सुखसाता पूछी तब बोले—'आज कुछ घबराहट हो रही है।' फिर मुनिश्री ने जयाचार्य को सुख-पृच्छा की। इस तरह वे पूर्ण सावचेत थे। सायकाल अल्प भोजन लिया। थोड़ा-थोड़ा कई बार पानी पिया। एक मुहूर्त्त रात्रि के पश्चात् मुनिश्री को पूछकर जयाचार्य ने सागारी सथारा करवाया। चार शरण दिलाकर सैद्धान्तिक उद्धरणो के द्वारा उनके भावों को ऊर्ध्व चढाया। जेठ वदि ४ शनिवार को एक मुहूर्त्त दिन चढने के बाद परम समाधिपूर्वक मुनिश्री स्वर्ग पधार गए[2]। साधुओ ने उनके शरीर का विसर्जन करके चार 'लोगस्स' का ध्यान किया। श्रावक-वृन्द ने इकतीस खडी मडी बना कर धूमधाम से मृत्यु-महोत्सव मनाते हुए मुनिश्री के शरीर का दाह-सस्कार किया।

मुनिश्री के स्वर्गवास से चतुर्विध सघ में अथक उदासी छा गई। मन में स्मृति और नयनो के सम्मुख उनकी मूर्त्ति नृत्य करने लगी। मुख-मुख पर उनके गुणों के स्वर गूजने लगे।

जयाचार्य ने मुनिश्री स्वरूपचन्दजी के जीवन-प्रसग मे दो आख्यान बनाए। उनमे उनके विविध पहलुओ पर सुन्दरतम प्रकाश डाला है।

'स्वरूप नवरसा'—इसकी ६ गीतिकाए हैं। जिनमें ६२ दोहे १५ सोरठे और

---

१. आप तणे पासे मुज रहिवू, वलि भेलो चउमास।
सरूप एहवो वचन सुणी नै, पाम्या अधिक हुलास॥
(स्वरूप नव० ढा० ६ गा० ३१)

२३. मुनिश्री स्वरूपचंदजी का वार्धक्य तथा शारीरिक अस्वस्थता से दस वर्ष (सं० १९१६ से २५) लाडनूं में स्थिरवास रहा। उन वर्षों में जयाचार्य प्रायः आस-पास विहरण करते। समय समय पर पधार कर मुनिश्री को परम समाधि उपजाते। सं० १९२५ का जोधपुर चातुर्मास करके आचार्यश्री लाडनूं पधार रहे थे तब मुनिश्री स्वरूपचंदजी ने तीन साधुओं को डेगाना तक आचार्यश्री के सामने भेजा। जयाचार्य ने माघ वदि ७ को शहर में प्रवेश किया तब स्वयं मुनिश्री ने बहुत साधुओं से सामने पधार कर जयाचार्य की अगवानी की। पारस्परिक मिलन को देखकर भाई-बहिनों में हर्ष की नई लहर दौड़ गई। सभी अत्यन्त प्रभावित हुए। समूचे शहर में उल्लासमय वातावरण हो गया। विशाल जुलूस के साथ जयाचार्य एवं मुनिश्री ने शहर में प्रवेश किया। पंचायत के नोहरे में विराजना हुआ। व्याख्यानादिक में अच्छा रंग निखरने लगा। जयाचार्य का मुनिश्री के साथ अध्यात्म-प्रधान आगम-रहस्यों के विषय में सरस वार्तालाप हुआ। मुनिश्री की स्वाध्याय में विशेष रुचि रहती थी। वे दिन-रात में उत्तराध्ययन, दशवैकालिक आदि के हजारों पद्यों का पुनरावर्तन करते थे। माघ वदि १३ के दिन वमन होने से मुनिश्री के मस्तक में वेदना बढ़ गई। वे उसे समभावों से सहते रहे। माघ शुक्ला ७ को मर्यादा महोत्सव मनाया। जयगणी २१ दिन विराजकर सुजानगढ़ पधारे। वहां ९ दिन रहकर बीदासर पधारे। बीसवें दिन मुनिश्री के हिचकी अधिक आने के समाचार सुनकर जयाचार्य ने बीदासर से तत्काल विहार किया और रास्ते में एक रात्रि ठहर कर वापस लाडनूं पधारे। आचार्यश्री के आगमन से मुनिश्री को पूर्णत आराम हो गया। जिससे सभी को बहुत हर्ष हुआ। जयाचार्य ९ दिन लाडनूं में ठहरे। मुनिश्री के स्वस्थ होने पर सुजानगढ़ की तरफ विहार किया। वहां एक महीने लगभग विराजकर वापस लाडनूं पधार गए।

एक दिन मुनिश्री स्वरूपचंदजी से साधुओं ने विनति की कि आप जयाचार्य को यहां ठहरने के लिए निवेदन करें। मुनिश्री बोले—'यदि जयगणी मेरी बात मानें तो मैं उनके पैर पकड़ कर यहां रख लूं।' उस समय साध्वीश्री सरदाराजी ने मुनिश्री के दर्शन करके कहा—'आपकी शक्ति प्रतिदिन क्षीण हो रही है, यदि आपकी इच्छा हो तो जयाचार्य यहां पर और भी विराज सकते हैं।' मुनि स्वरूपचंदजी बोले—'मुझे उनके रहने का कोई भरोसा नहीं लगता।' सरदाराजी ने निवेदन किया—'आप ऐसा क्यों फरमाते हैं, आपके लिए ही तो गुरुदेव जोधपुर से विहार कर शीघ्रता से यहां पधारे हैं। आप पूर्णत आश्वस्त रहें

---

१ जयाचार्य ने उन वर्षों में इन ग्रामों में चातुर्मास किये—सं० १९१९ सुजानगढ़, सं० १९२० चूरू, १९२१ जोधपुर, १९२२ [illegible], १९२३ बीदासर, १९२४ सुजानगढ़, १९२५ जोधपुर

## ६३।२—१४ मुनिश्री भीमजी (रोयट)

(सयम पर्याय १८९६-१८९७)

लय—सभापति मिले हमें मतिमान

भीम का मगलकारी नाम, भीम का मगलकारी काम।
पंचाक्षर (अ भी रा शि को) के मन्त्र जाप से, मिटते विघ्न तमाम।
भीम ध्रु०॥

मरुधरणी जिनकी जनुधरणी, गाया रोयट ग्राम।
कल्लू-आईदान गोलेछा कुल के तिलक ललाम॥ भीम…१॥
प्रथम स्वरूप भीम फिर जय का, जन्म हुआ अभिराम।
मिली त्रिवेणी की सम श्रेणी, खिली पुण्य की दाम॥२॥
युगल बधु ने पहले सयम, पाया है साराम।
कुछ दिन से मुनि भीम बने हैं, जननी सह निष्काम॥३॥

### दोहा

दी इनको दीक्षा बड़ी, चार मास के बाद।
षड् मासान्तर जीत को, कर चिन्तन अविवाद[1]॥४॥
पहले वर्षावास में, भीम पूज्य के सग।
रहे हेम परिपार्श्व में, जय स्वरूप सोमग॥५॥
भीम जीत ऋषि हेम सह, रहे दूसरे वर्ष।
मुनि स्वरूप गुरुचरण की, सेवा मे धर हर्ष[1]॥६॥

लय—सभापति मिले हमें मतिमान

विनयी सेवाभावी कर्मठ, सरलाशय गुणधाम।
सीखे आगम व्याख्यानादिक, करके मति-व्यायाम॥७॥
वाचन करके बत्तीसी का, खींचा रस अविराम।
ज्ञान कंठगत है उपयोगी, नगद गाठ में दाम॥८॥

लय—सभापति मिले हमें मतिमान

तप की ले तलवार किया है, कर्मो सह संग्राम।
उपवासादिक मास ऊर्ध्वतः, भर पुरुषार्थ प्रकाम ॥१८॥
शीतकाल में शीत सहा है, ग्रीष्मकाल में घाम।
आत्म नियन्त्रण करते धरते मन में विरति लगाम ॥१९॥
विविध अभिग्रह विगय विवर्जन आदि घोल आयाम।
ज्ञान ध्यान स्वाध्याय मनन में, रमते आतमाराम ॥२०॥

रामायण-छन्द

चार संत सह अष्ट नवतिका घोषित चूरू चातुर्मास।
पडिहारा-वसुगढ़ हो चूरू आकर ठहरे मुनिवर मास।
गये विसाऊ और मंणसर किया रामगढ़ मासिक वास।
आये पुनः विसाऊ, कृष्णापाखी छठ को भर उल्लास ॥२१॥

लय—सभापति मिले हमें मतिमान

वमन दस्त की हुई शिकायत, व्यथा बढ़ी उद्दाम।
सम भावों से सही वेदना, जीत लिया संग्राम ॥२२॥

रामायण-छन्द

बीता दिन रजनी भी बीती उदित सप्तमी का दिनकार।
आत्मालोचन क्षमायाचना किया लिया अनशन सागार।
पुद्गल क्षीण पड रहे पल-पल निकला एक प्रहर लगभग।
एक मुहूर्त रहा दिन बाकी, तन से चेतन हुआ अलग ॥२३॥
आकस्मिक मुन मरण श्रमण का विस्मित चार तीर्थ हो पाये।
शिष्य सुविनयी के मुक्त स्वर, गणि रायचंद ने गुण गाये।
एक भाग बीता घर में दो भाग साधु व्रत का अभ्यास।
दृढ़ संकल्प अनल्प योग से फलित हो गया सकल प्रयास ॥२४॥

लय—सभापति मिले हमें मतिमान

दिवस दूसरे भागचंद मुनि, पहुंचे हैं सुर धाम।
साथ निभाया यहां वहां का बना साथ प्रोग्राम ॥२५॥

चर्चावादी बने विचक्षण, चर्चोत्सुक हर याम।
सद्गुरु-कृपया बढ़े चढ़े हैं, ज्यों उपवन में आम' ।।९।।

दोहा

रहे वर्ष छह हेम सह, फिर स्वरूप मुनि पास।
योग्य बने सब दृष्टि से, अच्छा किया विकास ।।१०।।
इक्यासी की साल में, बने अग्रणी आप।
विचर-विचर पुर नगर में, खूब जमाई छाप ।।११।।
वर्ष बयासी में किया 'माडा' वर्षावास।
कोदर और भवानजी, युगल संत थे पास ।।१२।।

गीतक-छन्द

तयासी की साल पावस काकडोली में किया।
पच मुनि सह श्रमण ने उपकार कर अति यश लिया।
मुनि पीथल ने किया छह मास तप का आचरण।
आप सहयोगी बने फिर किया जब पंडित मरण ।।१३।।
मरुधरा मेवाड़ मालव किया हाड़ौती गमन।
टिके हरियाणा थली ढूंढाड़ में पावन चरण।
वहाँ देश निवासियों को दिया वह प्रतिबोध है।
सम्यक् श्रद्धा सलिल द्वारा की प्रफुल्लित पौध है ।।१४।।

लय—सभापति मिले हमें मतिमान

श्रावक सुलभ बोधि कर बहु नर, पाये सुयश निकाम।
बालोत्री में अन्तिम पावस, किया लिया विश्राम' ।।१५।।

रामायण-छन्द

कर दर्शन सरदार सती ने उनसे किया निवेदन है।
पत्र पात्र सो लिखकर रखना उक्त सिखाना सुवचन है'।
श्रावक बाद 'नद' की दीक्षा दी है पादू में आकर।
भेंट किया गुरु को गुरुवर ने सौंपा उनको करुणा कर ।।१६।।

सोरठा

जाना जी की ओर, दीक्षा मिलती ध्यान में।
मुनिवर करके गौर, सजे पर को तारने' ।।१७।।

१. मुनिश्री भीमजी का जन्म रोयट (मारवाड) में सं० १८५५ मे हुआ। उनके पिता का नाम आईदानजी और माता का कल्लूजी था। उनके बड़े भाई स्वरूपचदजी तथा छोटे भाई जीतमलजी थे।

(ख्यात)

स० १८६३ मे आईदानजी की मृत्यु के पश्चात् उनके बड़े भाई स्वरूपचदजी अपनी माता तथा दोनों भाइयों को लेकर किशनगढ़ मे आकर रहने लगे। स० १८६६ मे वहा मुनिश्री हेमराजजी (३६) का चातुर्मास हुआ तब उनके सपर्क का लाभ मिला फिर उसी चातुर्मास में सभी ने जयपुर मे भारीमालजी स्वामी के दर्शन किये। सेवा भक्ति एव व्याख्यान श्रवण से वैराग्य जागृत हुआ। तात्त्विक ज्ञान सीखकर दीक्षा के लिए उद्यत हो गये। वहा चातुर्मास के बाद पोष सुदि ६ को आचार्य भारीमालजी ने मुनिश्री स्वरूपचदजी को दीक्षा दी। माघ वदि ७ को भारीमाल स्वामी के आदेश से मुनि रायचदजी ने मुनिश्री जीतमलजी को सयम दिया।

(जय सुजश ढा० ३, ४ के आधार से)

आचार्यश्री ने नवदीक्षित दोनों मुनियों को मुनिश्री हेमराजजी को सौंप दिया और उन्हें वहा से माधोपुर की तरफ विहार करवा दिया।[1]

दोनों भाइयों की दीक्षा के बाद भीमजी की सयम लेने की भावना हुई। फाल्गुन वदि ११ को उन्होने चौदह वर्ष की अविवाहित किशोर (नाबालिग) वय मे सगाई छोड़कर माता कल्लूजी सहित भारीमालजी स्वामी के हाथ से जयपुर मे दीक्षा ली।[2]

मुनिश्री भीमजी को दीक्षित कर भारीमालजी स्वामी माधोपुर पधारे। मुनिश्री हेमराजजी ने कोटा, बूदी की तरफ विहार कर वहाँ आचार्यश्री के दर्शन किये।[3]

मुनि भीमजी को बड़ा रखने के लिए उन्हें बड़ी दीक्षा चार महीनों से और

---

१. सरूप जीत नैं सयम देइ करी, ऋषि हेम भणी सूप्या सुविचार।
दिवस किते जयपुर थकी, माधोपुर नैं करायो विहार॥
(जय सुजश ढा० ४ गा० १७)

२. सरूप जीत सजम आदर्यां पछै, भाई भीम तणा तिण हुआ परिणाम।
फागण कृष्ण ग्यारस मा सहित ही, सजम दियो भारीमालजी स्वाम॥
(जय सुजश ढा० ४ गा० १८)

३. बूदी कोटै विचर करि, स्वरूप जीत तिण सग।
माधोपुर मे हेम मुनि, आया धरी उमग॥
(जय सुजश ढा० ५ दो० २)

जोड़ी 'भीम' 'भागचंद' की, भुजा दाहिनी वाम।
एक सरीखी प्रीति निभाई, फलित हुआ सब काम' ॥२६॥

दोहा

विघ्नहरण की ढाल में, 'पंचाक्षर विन्यास।'
'भी' सूचक है भीम का, करता दुरित विनाश ॥२७॥

लय—सम्भलाति मिले हमें मतिमान

पाप ताप हरने को जप लो, जाप सुखद सदा शाम।
ध्यान लगाओ तान मिलाओ, गाओ मुनि गुण ग्राम" ॥२८॥

दोहा

जयाचार्य विरचित विदित, सुललित भीम विलास।
भाव भरी ढालें विविध, भरती सरस सुवास" ॥२९॥

सं० १८८१ कटालिया में आचार्यश्री ऋषिराय ने मुनि भीमजी को अग्रणी बनाया। वे आचार्य प्रवर के आदेशानुसार ग्रामानुग्राम विहार करने लगे।[1] उनके चातुर्मास तथा धर्म-प्रचार आदि का प्राप्त विवरण निम्न प्रकार है।

उन्होंने ३ ठाणा से सं० १८८२ का प्रथम चातुर्मास 'माडा' में किया। साथ में मुनि कोदरजी (८६) और भवानजी थे।

(जय सुजश ढा० १० गा० ५ के आधार से)

सं० १८८३ का उन्होंने कांकडोली चातुर्मास किया। वहां उनके साथ मुनि पीथलजी (५६), माणकजी (७१), रतनजी (७४) और हुक्मचंदजी (६६) थे। मुनि पीथलजी ने १८६ दिन का तप किया। चातुर्मास के पश्चात् ऋषिराय ने पधार कर उन्हें पारणा करवाया और वापस मुनिश्री भीमजी को सौंपकर आचार्य प्रवर ने मालव प्रान्त की तरफ विहार कर दिया। पोष सुदि १० को मुनिश्री पीथलजी अकस्मात् पंडित-मरण प्राप्त कर गये। मुनिश्री भीमजी ने सागारी अनशन करवाकर उन्हें बड़ा सहयोग दिया।

(पीथल मुनि गुण वर्णन ढा० १ गा० ३०
से ३४ के आधार से)

मुनिश्री ने मारवाड़, मेवाड़, मालवा, हाड़ोती ढूंढाड़, हरियाणा तथा थली में विचरण कर अच्छा उपकार किया। थली में पहले लोग गण से बहिर्भूत तिलोकचन्दजी (१२), चन्द्रभाणजी (१५) के अनुयायी थे। उन्हें समझाकर तथा तात्त्विक ज्ञान सिखाकर तेरापथ की गुरु-धारणा करवाई।[2] अनेक व्यक्तियों को सुलभबोधि तथा श्रावक बनाये। कई व्यक्तियों को दीक्षा प्रदान की।

(भीम-विलास ढा० ४ गा० १ से ४,
ढा० ३ दो० १, २)

सं० १८८४ से १८८६ तक चातुर्मासों की सूची नहीं मिलती। सं० १८८७ में

---

१ समत अठारे इक्यासीये, ऋषिराय बधायो तोल।
टोलो सूप्यो भीम नैं, आप्या सत अमोल॥
आज्ञा ले ऋषिराय नी, भीम ऋषि तिणवार।
गामा नगरा विचरता, आप तरै पर तार॥
(भीम-विलास ढा० १ गा० १२, १३)

२. कियो थली देश में थाट, भीम ऋष आय नै जी।
मत पातमा नो दियो दाट, लोका नै समझाय नै जी॥
घणा आया भायां नें ताय, चरचा में पक्का किया जी।
सेर्‌या थोकड़ा सिखाय, घट में ज्ञान घालिया जी॥
(भीम-विलास ढा० ४ गा० ३, ४)

मुनिश्री जीतमलजी को छह महीनों से दी गई।'

२ आचार्यश्री भारीमालजी ने मुनि भीमजी को सं० १८७० के चातुर्मास में अपने साथ रखा। मुनि स्वरूपचन्दजी और जीतमलजी को मुनिश्री हेमराजजी के साथ सं० १८७० का स्वतन्त्र चातुर्मास करने के लिए भेजा।

सं० १८७१ के (दूसरे) चातुर्मास में मुनिश्री भीमजी और जीतमलजी ने तो मुनिश्री हेमराजजी के साथ चातुर्मास किया तथा मुनि स्वरूपचन्दजी बोरावड़ चातुर्मास में भारीमालजी स्वामी के साथ रहे।

(जय सुजश ढा० ५ दो० ५ तथा गा० ८ से १०)

३ मुनिश्री भीमजी बड़े सेवाभावी, प्रकृति से शांत व सरल, विनयी, उद्यमी, साहसिक और निर्जरार्थी हुए। आचार्यश्री भारीमालजी, रायचन्दजी तथा मुनिश्री हेमराजजी की उन्होंने बहुत वैयावृत्य की। साधु-साध्वियों को आहार-पानी आदि लाकर देते।

(ख्यात, भीम-विलास ढा० १ गा० २ से ६ के आधार से)

उन्होंने तीन सूत्र तथा अनेक व्याख्यान कंठस्थ किये। बत्तीस सूत्रों का अनेक बार वाचन किया। सूक्ष्म रहस्यों के वे अच्छे ज्ञाता एवं चर्चा मे निपुण बने।' अपनी मति से कई थोकड़े (गेरूया आदि) बनाये। लेखन (प्रतिलिपि) भी बहुत किया।

(ख्यात)

४ मुनिश्री भीमजी ने सं० १८७० का चातुर्मास आचार्यश्री भारीमालजी की सेवा मे किया। सं० १८७१ से ७६ तक मुनिश्री हेमराजजी के सान्निध्य मे रहे। सं० १८७२ से ७६ तक तीनो भाई मुनि हेमराजजी के साथ थे। सं० १८७६ मे मुनिश्री स्वरूपचन्दजी का सिंघाड़ा हो गया। संभवतः फिर सं० १८८१ तक मुनि भीमजी मुनि स्वरूपचन्दजी के साथ रहे।

इस प्रकार १२ वर्षों तक आचार्यश्री एवं बड़े साधुओं के साथ रह कर उन्होंने सभी तरह से योग्यता प्राप्त की।

जाझेरा वर्ष बारा लगै, गण०, रह्या बड़ां रै पास...।

(भीम विलास ढा० १ गा० ११)

---

१. भीम भणी चिहुं मास थी, बडी दीक्षा वर दीध।
षट मास थी जय भणी, दीर्घ भीम इम कीध॥

(जय सुजश ढा० ५ दो० ४)

२ तीन सूत्र मुखड़ै सीखिया, वले सीख्या घणां वखाण।
उपगारी गुण-आगलो, थयो घणां सूत्रां नो जाण॥

(भीम विलास ढा० १ गा० ८

इनमें कुछ तप आछ के आधार से और कुछ जल के आधार से हैं।[1]

उक्त १२ दिन का तप उन्होंने सं० १८७४ के गोगुंदा चातुर्मास में मुनिश्री हेमराजजी के साथ किया। ऐसा हेम नवरसा ढा० ५ गा० २५ में लिखा है—

'भीम द्वादस दिन सुविशाली।'

मुनिश्री ने शीतकाल में १२ वर्ष सिर्फ एक पछेवड़ी ओढ़कर (तीन में से दो पछेवड़ी छोड़कर) शीत सहन किया। ग्रीष्मकाल में आतापना बहुत बार ली।[2]

उन्होंने प्रतिदिन दो विगय के अतिरिक्त खाने का त्याग किया। स्वाध्याय, ध्यान, स्मरण, जाप व नियम-अभिग्रह आदि द्वारा कर्मों की निर्जरा करते हुए आत्मा को निर्मल बनाया।[3]

(ख्यात)

८. आचार्यश्री रायचन्दजी ने मुनिश्री भीमजी का १८६८ का चातुर्मास चूरू फरमाया। साथ में मुनि भागचन्दजी(४८) पूओजी(८८) तथा नदरामजी(१२१) दिये।[4] मुनिश्री पड़िहारा, रतनगढ़ होते हुए चातुर्मास के पूर्व चूरू पधारे और एक महीना ठहरे। चातुर्मास प्रारंभ होने में बहुत दिन बाकी थे इसलिए वहां से

---

१. मुनिवर रे! वाम बेला बहुला कीया रे, तेला चोला तन सार हो लाल।
पांच आठ तप आदर्‌यो रे, आणी हरष अपार हो लाल॥
भीम ऋषी भजियै सदा रे॥
मुनिवर रे! बारै पनरै तप भलो रे, मास खमण श्रीकार हो लाल।
कोई तप आछ आधार सू रे, कोई तप उदक आगार हो लाल॥
(भीम-विलास ढा० ३ गा० १, २)

२ मुनिवर रे! वर्स बारै रे आसरे रे, शीतकाल में सोय हो लाल।
पछेवड़ी दोय परहरी रे, शीत सह्यो अवलोय हो लाल॥
मुनिवर रे! उष्णकाल आतापना रे, लीधी बोहली वार हो लाल।
सम दम सत सुहामणो रे, भीम गुणां रो भंडार हो लाल॥
(भीम विलास ढा० ३ गा० ३, ४)

३. मुनिवर रे! रस नो त्याग कियो ऋषी रे, नित विगै दोय उपरत हो लाल।
उत्तम करणी आदरी रे, ध्यान सज्झाय रमत हो लाल॥
मुनिवर रे समरण जाप सदा धर्‌यो रे, पच पदा नो जाप हो लाल।
नेम अभिग्रह निरमला रे, भीम गुणा री खान हो लाल॥
(भीम-विलास ढा० ३ गा० ५, ६)

४. भागचद पूजलाल, वलि नदो आप्यो सुविसाल। आ०।
चूरू चौमासो भलावियो।
(भीम-विलास ढा० ५ गा० ८)

उनका अन्तिम चातुर्मास बाजोली था।[1]

४ सं० १८९७ के बाजोली चातुर्मास में सरदार सती ने दीक्षा लेने के लिए उदयपुर जाते समय मुनिश्री भीमजी के दर्शन किये। मुनिश्री ने पहले सरदार सती से कहा था कि अगर तू दीक्षा ले तो मैं तुझे पांच सौ पन्ने लिखकर दूंगा। उस कथन को याद दिलाते हुए सरदार सती ने निवेदन किया—'मुनिश्री! मैं अब दीक्षा लेने के लिए जा रही हूं, आप पांच सौ पत्र लिखकर तैयार रखना'।[2]

५ सं० १८९७ का चातुर्मास संपन्न कर मुनिश्री पादू (बड़ी) पधारे। वहां पादू के नदरामजी (१२१) को दीक्षा दी।[3]

(नदोजी की ख्यात)

बाद में मुनि भीमजी ने आचार्यश्री रायचन्दजी के दर्शन कर नवदीक्षित मुनि नदोजी को गुरु-चरणों में भेंट किया। आचार्यश्री ने वापस उन्हें ही सौंप दिया। गुरुदेव के इस अनुग्रह से मुनि भीमजी अत्यंत प्रसन्न हुए। फिर मुनिश्री बहुत दिनों तक आचार्य प्रवर की सेवा में रहे।

(भीम-विलास ढा० ४ गा० ९ तथा ढा० ५ दो० १ से ३ के आधार से)

सं० १८८७ चैत्र शुक्ला ३ को लाडनूं वासिनी साध्वीश्री गेनाजी (गानाजी १२४) को लाडनूं में दीक्षा प्रदान की। ऐसा गेनाजी की ख्यात में लिखा है। भीम विलास में इसका उल्लेख नहीं है।

७. मुनिश्री बड़े तपस्वी हुए। उन्होंने उपवास, बेले, तेले, चोले अनेक बार किये। पचोले आदि की तालिका ख्यात में इस प्रकार है—

$\frac{५}{२}$ $\frac{८}{२}$ $\frac{१२}{१}$ $\frac{१५}{१}$ $\frac{३०}{१}$ ।

१ पछै चरम चोमासो थीकार, बाजोली में कर्‌यो जी।
तठै कियो घणो उपगार, समता रस पी भर्‌यो जी॥

(भीम-विलास ढा० ४ गा० ७)

२ ग्राम बाजोली आय नै हो, दर्श भीम ना कीध।
पहिला भीम कह्यो हुतो हो, जो तू चारित्र लेह।
तो हूं पाना पांचसै हो, लिखिया तुझ नै देह।
चारित्र लेवा कारणे हो, हूं जावूं सुविचार।
लिखरा पत्र वर पांचसौ हो, आप करी राखजो त्यार॥

(सरदार सुजश ढा० ८ गा० १७ से १९)

३. चोमासो उतर्‌यां ताम, भीम पादू आय नै जी।
नदोजी नै दिख्या तिण ठाम, दीधी समझाय नै जी॥

(भीम-विलास ढा० ४ गा० ८)

१०. स० १९१३ माघ शुक्ला ५ को सिरियारी मे विरचित एव माघ शुक्ला १४ को कटालिया मे स्थापित 'विघ्नहरण' की ढाल मे जयाचार्य ने प्रमुख रूप मे पाँच मुनियो का स्मरण किया है।[1]

१. अ—मुनिश्री अमीचन्दजी (७५)
२. भी—मुनिश्री भीमजी (६३)
३. रा—मुनिश्री रामसुखजी (१०५)
४. शि—मुनिश्री शिवजी (७८)
५. को—मुनिश्री कोदरजी (८६)

इन पाचो मे मुनिश्री भीमजी दीक्षा पर्याय मे सबसे बडे हैं।

सत गुणमाला मे जयाचार्य ने उनका स्मरण करते हुए लिखा है—

भीमजी स्वामी भात भात री रे, चरचा मे घणा सावधान रे।
वले दान देवे साधा भणी रे, त्यारै लघु भाई जीनमल जाण रे॥
(सत गुणमाला ढा० १ गा० ३२)

भीम सरीखो भीम ऋषीश्वर सार के, पचम आरे परगटियो जी।
चरचावादी भय भ्रम भाजण हार के, जश कीर्ति जग मे घणी जी॥
(सत गुणमाला ढा० ४ गा० २६)

विघ्नहरण की ढाल गा० ७, ८ मे जयाचार्य ने उनकी स्मृति मे लिखा है—

वृद्ध सहोदर जीत नो, जशधारी जयकारी हो।
लघु सहोदरसरूप नो, भीमगुणा रो भडारी हो॥
सखर सुजश ससारी हो॥
समरण थी सुख सपजै, जाप जप्या जश भारी हो।
मन वाछित मनोरथ फलै, भजन करो नर नारी हो।
वारु बुद्धि विस्तारी हो॥

'मुणिद मोरा' ढाल की गा० ६ मे लिखा है—

---

१. उगणीसै तेरह समै, वस्त पचमी सोमवारी हो।
पच ऋषि नो परवडो, स्तवन रच्यो ततसारी हो॥
प्रसिद्ध शहर सिरियारी हो, गणपति जय जशकारी हो।
विघ्नहरण नी स्थापना, भिक्षु नगर मझारी हो॥
महा सुदि चवदस पुष्य दिने, कीधी हर्ष अपारी हो।
तास शीख बच धारी हो, हीरव चार मझारी हो॥
ठाणा एकाणूं तिवारी हो। भजो०॥
(गा० ३०, ३१)

विहार कर खिराऊ, मैणसर होते हुए रामगढ़ पधारे। रामगढ़ में एक महीने विराजे। श्रावण आषाढ़ वदि ६ को खिराऊ पधारे। उसी दिन वे अस्वस्थ हो गये। वमन व दस्त लगने लगे। हैजा का रूप हो गया।[1] तपस्वी को भी वही हालत रही तब मुनिश्री ने आत्मालोचन, क्षमा-याचना तथा महाव्रतों का उच्चारण कर मुनि पूजोजी से अनशन करवाने के लिए कहा। उन्होंने सागारी अनशन करवाया। एक प्रहर के पश्चात् समाधिपूर्वक मरण प्राप्त कर गये।

(भीम वि० ढा० ५ गा० ८, ६ तथा ढा० ६ दो० १, २ एवं गा० १ से १० के आधार से)

इस प्रकार १८६७ आषाढ़ वदि ७ को एक प्रहर के सागारी अनशन से मुनिश्री ने स्वर्ग प्रस्थान कर दिया।[2]

मुनिश्री के आकस्मिक स्वर्गवास से चतुर्विध संघ एवं आचार्यश्री रायचंदजी को भी आघात-सा लगा। उन्होंने चार 'लोगस्स' का ध्यान करते हुए मुनिश्री की गुण-गाथा का मुक्त कंठ से उल्लेख किया।

वे चौदह साल गृहस्थ वास में और २८ साल साधु पर्याय में रहे। उनका कुल आयुष्य ४२ वर्षों का था।

(भीम-विलास ढा० ६ गा० ११ से १५ के आधार से)

६. मुनि भागचंदजी (४८) अनेक वर्षों से मुनिश्री भीमजी के सिंघाड़े में थे। वे भी दूसरे दिन आषाढ़ कृष्णा ८ को दिवंगत हो गये। जिस प्रकार यहां वे उनके साथ रहे, उसी तरह परलोक गमन में भी साथ कर लिया।[3]

---

1. वमन थई तन वेदन बाधी, वली दस्ता लागी तिण वारो।
   बलण पिण शरीर में उपनो परगट, पिण सम प्रणामे सहै गुण धारो॥
   (भीम-विलास ढा० ६ गा० ५)

2. समत अठारै वर्ष सत्ताणुअे, आषाढ़ सातम दिन जोय।
   पाछलो महूरत दिवस आसरै, भीम ऋषी पोहता परलोय॥
   (भीम-विलास ढा० ६ गा० १०)

3. आठम दिन आउखो पूरो कीधो, भागचंद ऋष ओ पिण भारी।
   तपसी त्यागी वैरागी छै गुणणो, वर्स घणा विचर्या भीम लारो॥
   (भीम-विलास ढा० ६ गा० १६)

   विद आसाढ़ अष्टमी आई, ऋष भीम वस्यो मन मांहि।
   पाणं मेवा करूं सवाई ए, ओ तिण पटके चलतो रह्यो॥
   भीम भागचंद री जोरी, एहवी मिलणी जग में दोरी।
   प्यारी प्रीत न टूटै तोरी ए, रिख भागचंद नें भीम री॥
   (जीत मुनि विरचित भागचंद गुण वर्णन गा० १८, १६)

## ६४।२।१५ चतुर्थाचार्य जीतमलजी (रोयट)

(सयम-पर्याय १८६६-१६३८)

### जय-स्तुति

लय—चाद चढ्यो गिगनार…

जयाचार्य का नाम, अमर इस धरती पर जी धरती पर।
जयाचार्य का काम, अमर इस धरती पर जी धरती पर ।।ध्रु० ।।

घर के मगल चार, द्वार पर आये हैं जी आये हैं।
सत्संस्कार विचार, सार भर लाये हैं जी लाये हैं ।। जया…१।।

बोले भारीमाल, राय ! तुम दो दीक्षा जी दो दीक्षा।
होनहार यह बाल, उंडेलो रस शिक्षा जी रस शिक्षा ।।२।।

हेम पास दे ध्यान, ज्ञान तो गजब किया जी गजब किया।
विद्या गुरु उपमान, स्थान तो अजब दिया जी अजब दिया ।।३।।

अगुआ पद में आप, देहली पहुंचाये जी पहुचाये।
(वन) युवाचार्य आचार्य, कार्य बहु कर पाये जी कर पाये ।।४।।

पद चिन्हो को देख, ज्योतिषी व्यथित हुआ जी व्यथित हुआ।
सच सामुद्रिक लेख, देख मुख चकित हुआ जी चकित हुआ ।।५।।

आगम टीकाकर, भगवती नजरों पर जी नजरो पर।
भाष्य लिखा साधार, भिक्षु की कृतियो पर जी कृतियों पर ।।६।।

देते बहु बहुमान, बड़ों को हर कृति मे जी हर कृति मे।
गाते गुणि-गुणगान, भिक्षु तो हर स्मृति में जी हर स्मृति में ।।७।।

अनुशासन का मन्त्र, सिखाया मुनि जन को जी मुनिजन को।
मर्यादा का तन्त्र, दिखाया जन-जन को जी जन-जन को ।।८।।

मघवा को आदेश, मुख्यतः वे देते जी वे देते।
साधु-साध्वियां शेष, हृदय में लिख लेते जी लिख लेते ।।६।।

'मुणिंद मोरा, जीत सहोदर सार,
भीम जबर जयकारी रे स्वामी मोरा,
अति भला रे मोरा स्वाम ॥

प्राचीन अनुश्रुति के आधार से कहा जाता है कि मुनिश्री भीमजी तीसरे देवलोक मे गये। उन्होंने देव रूप मे एक बार मुनिश्री स्वरूपचन्दजी का साक्षात्कार किया और उन्हें बहुमान दिया। इस बात का स्वयं जयाचार्य ने निम्नोक्त पद्य में उल्लेख किया है—

सरूपचंद सहोदर भणी, ते दीधो दीसैं सनमान।
दिव्य रूप देख्या छता रे, हरष थयो असमान॥
(भीम० गु० व० ढा० १ गा० ४)

११. सं० १८६८ वैसाख वदि ७ शनिवार को चूरू मे जयाचार्य ने उनके जीवन-सदर्भ मे 'भीम विलास' की रचना की। जिसकी ७ ढालें हैं जिनमे २१ दोहे ८२ गाथाएं हैं। कुल पद्य १०३ और ग्रंथाग्र १२१ हैं।

निम्नोक्त स्थलों में भी उनके सबंध का विवरण मिलता है—

१. जय सुजश ढा० १ से ५ मे।

२. ख्यात।

३. शासन प्रभाकर—भारी सत वर्णन ढा० ४ गा० १०३ से ११४।

४. गुण वर्णन ढालें ४ 'सत गुण वर्णन' में।

## ६५।२—१६ श्री नंदोजी

*(दीक्षा सं० १८६६, थोड़े समय बाद गणबाहर)*

रामायण-छन्द

जाति महाजन स्वामी का था वेष प्रथम फिर कर मुनि संग।
भारीमाल हाथ से दीक्षित होकर पाया भैक्षव संघ।
लेकिन धक्का लगा कर्म का संयम का चक्का उलटा।
स्वल्प समय के बाद हुए च्युत भाग्य खा गया है पलटा॥१॥

सविभाग से स्वस्थ, व्यवस्था की गण की जी की गण की।
छवि अद्भुत आश्वस्त, समर्पण दर्पण की जी दर्पण की ॥१०॥
अधिक ध्यान स्वाध्याय, आखिरी वर्षों में जी वर्षों में।
जोड़ नया अध्याय, जुड़े युग-पुरुषों में जी पुरुषों में ॥११॥
जयपुर राजस्थान, परम जय-चरणोत्सव जी चरणोत्सव।
वहीं स्वर्ग-प्रस्थान, हुआ जय-चरमोत्सव जी चरमोत्सव ॥१२॥
आया जय निर्वाण-शताब्दी दिन मंगल जी दिन मंगल।
जय स्मृति से कल्याण, सफल शुभ है पल-पल जी है पल-पल ॥१३॥

आचार्यश्री भारीमालजी के शासनकाल में दीक्षित मुनियों में जयाचार्य का १२वां क्रमांक है। उनका जीवन-आख्यान विशालतम होने से इस शासन-समुद्र भाग-२ (क) में न रखकर शासन-समुद्र भाग २ (ख) में स्वतंत्र रूप से दिया गया है जिससे पाठकों को पढ़ने में अधिक सुविधा रह सके। जयाचार्य के बाद में दीक्षित २१ साधुओं का विवरण इसी शासन-समुद्र भाग २ (क) में संलग्न रूप से प्रस्तुत है।

## ६६।२।१७—मुनिश्री रामोजी

*(संयम पर्याय सं० १८७०-१९१९)*

### दोहा

वासी मालव प्रान्त के, राम नाम अभिराम।
सत्संगति से विरति के, चढ़े ऊर्ध्वगत धाम ॥१॥

### गीतक-छन्द

लिया वेणीराम मुनि से चरण सत्तर साल में।
नगर उज्जयिनी प्रमुख के पुण्य पावस काल में'।
साधुता में रम किया वह ज्ञान-ध्यान-प्रयास है।
प्रगति की व्याख्यान लेखन कलादिक में खास है॥२॥
विगय-त्यागी विरागी फिर तपस्वी मुनिवर महा।
हेम के सान्निध्य में दो वर्ष का तप मिल रहा'।
मिली सेवा उन्हें अन्तिम पूज्य भारीमाल की'।
अग्रणी हो किया विहरण साधना बहु साल की' ॥३॥

### सोरठा

विद नवमी वैसाख, शतोन्नीस उन्नीस की।
बीदासर में शाख, फलित हुई जय चरण में' ॥४॥

१. मुनिश्री रामोजी (रामजी) मालव प्रान्त के अनुमानतः उज्जैन या आस-पास के गांव के वासी थे। मुनिश्री वेणीरामजी (२८) ने सं० १८७० का चातुर्मास उज्जैन में किया। मालव देश में वह उनका सर्वप्रथम चातुर्मास था। उन्होंने वहां रामोजी को दीक्षा दी।'

२. ख्यात में मुनिश्री की विशेषता का इस प्रकार उल्लेख किया है—"भणवा गुणवा बड़ा दाना साधु चारित्र पर दृढ़ घणी नीवी, तिणगो घणो कीयो, तप [illegible] तिण विनयादिक ना ध्यान करतो रहता, वखाण वाणी री कला तिण घणी, घणा वर्ष साधुपणो पाल्यो।"

हेम नवरसा ढा० ६ गा० १०, ११ में उल्लेख है कि उन्होंने मुनिश्री हेमराज-जी (३६) के साथ सं० १८९४ के लाडनूं चातुर्मास में ३० दिन और सं० १८९५ के पाली चातुर्मास में ४१ दिन का तप किया—

चोराणुवे लाडणूं चोमासो, रामजी तीस उदारी।
अगम विनीत उदै गण सागर, [illegible] आगारी॥
पाली पचाणुवे राम कियो तप, एक चालीस उदारी।
तीस उदै किया उदक आगारे, हेम तणो आग्याकारी॥

उक्त गाथाओं में कथित मुनिश्री रामजी ये ही थे क्योंकि इनके बाद मुनिश्री उदयचन्दजी (६५) तपस्वी का नाम है। दूसरे मुनिश्री रामोजी गुड़ोच वालों की क्रम संख्या १०० है जो मुनि उदयचन्दजी से छोटे थे और ये बड़े। इसलिए इनका नाम हेम नवरसा में मुनि उदयचन्दजी से पहले है।

३. आचार्यश्री भारीमालजी ने अपना सं० १८७८ का अन्तिम चातुर्मास केलवा में किया। उस समय मुनि रामोजी साथ थे और उन्होंने आचार्यश्री की बहुत सेवा भक्ति की—

रामचंद रूडो विनैवंत, व्यावच करिया घणी जी।
(भारीमाल चरित्र ढा० ७ गा० ७)

जयाचार्य ने उनके लिए लिखा है—

रामोजी साध रूडा रंग सूं, आचार पालै रूडी रीत रे।
ते व्यावच करै विध विध घणी रे, सतगुरु ना सुवनीत रे॥
(सत गुणमाला ढा० ४ गा० ३३)

४. मुनिश्री सिंघाड़बंध होकर विचरे (ख्यात)। सं० १९१२ में उन्होंने २ ठाणों से 'थामला' चातुर्मास किया ऐसा श्रावकों द्वारा लिखित प्राचीन चातुर्मास

---

१. नगर उजेणी शहर में, आछो कियो उपगार।
रामोजी संजम लियो, पछै कियो तिहां थी विहार॥
(वेणीराम चौढा

हो⋯सिंह वृत्ति से दीक्षा लेकर सिंहवृत्ति से पाल रहे।
जागरूक होकर पल पल में अतिचारों को टाल रहे।
पंच महाव्रत प्राण है, समिति गुप्ति ही त्राण है।।७।।
हो⋯बड़े विरागी त्यागी तप में झोंक दिया है तन-मनको।
चोले पचोले आदि कर सफल बनाया जीवन को।
मासादिक बहुमान है, तयालीस दिनमान है।।८।।
हो⋯दिवस पचहत्तर किये किये फिर जल से सौ पर चार हैं।
एक साथ छह मासी पचखी भर साहस अनपार है।
बोले सीना तान हैं, करली ऊर्ध्व उडान है।।९।।

## दोहा

सेवा की रुचि थी बडी, करते काम तुरत।
दृष्टि निर्जरा की परम, साताकारी सत।।१०।।
भारी गुरु की आखिरी, सेवा सजी सजोर।
तन्मय होकर हृदय से, लाभ लिया कर गौर।।११।।
किये अग्रणी जीत को, दिये इन्हें तब साथ।
सहयोगी बनकर रहे, जैसे तन के हाथ।।१२।।

लय—घलना आखिरकार

हो⋯परिषह सहा शीत उष्मा का क्षमा शीतला में जमके।
सम दम उपशम स्वाद चखा है विषय विकारों को दम के।
किया आत्म उत्थान है, लिया सुयश अम्लान है।।१३।।

## दोहा

बाल मित्र जय के प्रवर, विनयी गुणी उदार।
अद्भुत थे उनके लिए, जय के हृदयोद्गार।।१४।।

## ६७।२—१८ मुनिश्री वर्धमानजी (छोटा) (केलवा)

(संयम पर्याय सं० १८७०—१८६४)

लय—चलना आखिरकार

अर्ध निशा अनुमान है, आया समय महान् है।
वर्धमान ने पाया अनुपम संयम का वरदान है॥ध्रु०॥
हो·· तारा ग्रह नक्षत्र छत्र की सुषमा से आभा खिलता।
बढती चन्द्र-चन्द्रिका से सम्मान सौगुना फिर मिलता।
सोते सब इन्सान हैं, होते वंद मकान हैं। वर्धमान···१।
हो···रजनी जो है सब जीवों की उसमें जागृत महाव्रती।
जाग रहे जिसमें सब प्राणी उसमें सोते सत-सती।
अन्तर भू-आसमान है, भौतिक-धार्मिक ध्यान' है॥२॥
हो···लिए धर्म के समय न निश्चित चाहे दिन या रात हो।
लिंग रंग या वर्ण जाति का भेद न लघु गुरु भ्रात हो।
निर्धन क्या धनवान है, निर्बल सबल समान है॥३॥
हो···अधिकारी सब आत्मोन्नति के बालक वृद्ध जवान है।
निःश्रेयस सुख का सर्वोपरि साधन भाव प्रधान है।
घर या धर्म स्थान है, उपवन और श्मसान है॥४॥

**दोहा**

वास केलवा ग्राम में, था चोरड़िया गोत्र।
भ्राता श्रावक शोभ के, भैरोजी के पौत्र॥५॥

लय—चलना···

हो···अर्ध रात्रि में भाग्योदय का उदित हुआ नव चाद है।
'भारी' गुरु की चरण शरण में पाय पुण्य प्रसाद है।
चढ़े ऊर्ध्व सोपान हैं, साधक बने सुजान हैं'॥६॥

बार करने का उल्लेख है—'मासखमण बहु बार ए' तथा अन्य प्रतिलिपि एवं शासन प्रभाकर ढा० ४ गा० १२० में छह बार करने का उल्लेख है।

'मासखमण छह बार ए' 'वलि षट् मासखमण करात।'

४३ दिन का तप उन्होंने आचार्यश्री रायचदजी के सान्निध्य में स० १८८० के जयपुर चातुर्मास (संभवत. आषाढ़ से) में किया।[1] ख्यात में इसका उल्लेख नहीं है।

१०४ दिन, अढ़ाईमासी और छहमासी तप का शासन प्रभाकर ढा० ४ गा० १२०, १२१ तथा वर्धमान गुण वर्णन ढा० १ गा० २, ३ में उल्लेख है।[2] ख्यात में अढ़ाईमासी के स्थान पर दो मासी लिखा है।

१०४ दिन का तप उन्होंने मुनिश्री हेमराजजी (३६) के पास स० १८७७ के उदयपुर चातुर्मास में किया।[3]

स० १८८२ के ज्येष्ठ महीने में ऋषिराय मोखणदा पधारे वहां उन्होंने तीन साधुओं को एक साथ आछ के आगार से छह महीनों तक अशन आदि का परित्याग करवाया उनमें एक वर्धमानजी थे। इनका चातुर्मास केलवा करवाया। दूसरे पीथलजी (५६) व तीसरे हीरजी (७६) थे। जिनका चातुर्मास कांकडोली और राजनगर कराया। ऋषिराय ने स्वय उदयपुर चातुर्मास सपन्न कर पहले कांकडोली में मुनि पीथलजी को और उसी दिन राजनगर में मुनि हीरजी को १८६ दिन का पारणा कराया। दूसरे दिन केलवा पधार कर वर्धमानजी को १८७

---

१. धर्म उद्योत हुवो घणो रे, उदक तणै आगार।
दिवस तयालीस दीपता रे, किया वर्धमान अणगार॥
(ऋषिराय सुजश ढा० ८ गा० ५)
वृद्धि करी वर्धमान ए, तप दिन तयालीस प्रधान ए।
उन्हालै पाणी रै आगार जाण ए, भजलं तपसी वर्धमान ए॥
(वर्धमान गु० व० ढा० गा० १)

२. वले मासखमण बहुवार (छहवार) ए, वले तप दिन एक सौ च्यार ए।
उदक आगारे पिछान ए॥
किया मास अढ़ाई उपरंत ए, वले षटमासी धर खत ए।
आछ आगार वखाण ए॥
(वर्धमान गु० व० ढा० गा० २, ३)

३. वर्धमान तपसी तप धारो रे, एकसौ चार धोवण आगारो रे।
हुवो धर्म उद्योत अपारो॥
(हेम नवरसो ढा० ५ गा० ४८)

८. जयाचार्य ने मुनि वर्धमानजी के गुणों की दो ढालें बनाई। वहां तपस्या-दिक के साथ अपने बालमित्र होने का भी उल्लेख किया है—

मुझ बाल मित्र वर्द्धमान ए, देहड़े दर्शण रो ध्यान ए।
तपसी गुण नी खान ए, भजलै तपसी वर्द्धमान ए॥
(वर्धमान गुण व० ढा० १ गा० ८)

एक प्राचीन पत्र में उनके प्रति आत्मीय-भाव प्रकट करते हुए बड़े मार्मिक शब्दों में लिखा है—

"चूरू मे एता वचन कह्या—हिवै ताहरो दु:ख मयो दीसै हू जीवू ज्यां लगै तो दु:ख हुतो दीसै नहीं, थां सू पाछलो सस्कार दीसै छै, सो दु:ख मयो वांछा छा, सतीदास ज्यू एक तू पिण छै, कनै रह्यां तथा और ठिकाणे रह्यां साहज देण रा भाव छै, हू हाथ सू गोचरी लाय देवू, हिवै सहल राखो नहीं।"

(प्राचीन पत्र से उद्धृत)

सत गुण माला मे भी उनका स्मरण किया है—

विरधीचदजी बखाणियै रे, ते तो चोखे पालै सजम भार रे।
विनो करै सुध साधां तणो रे लाल, त्यानै वादो वारम्वार रे॥
(सत गुणमाला ढा० १ गा० ३४)

जिन मार्ग मे तपसी लघु वर्धमान के, एक सौ च्यार पाणी तणा जी॥
आछ आगारे तप षट मासी प्रधान के, भारीमाल गुरु भेटियाजी॥
(सत गुण माला ढा० ४ गा० २७)

दिन का पारणा करता।[1]

विस्तृत वर्णन मुनि पीथलजी (२६) के प्रकरण में दे दिया गया है।

४ सं० १८७८ के केलवा चातुर्मास में वे आचार्यश्री भारीमालजी की सेवा में थे। उन्होंने आचार्य प्रवर की अन्तिम समय में बहुत परिचर्या की।[2]

५ सं० १८८१ में मुनिश्री जीतमलजी का सिंघाड़ा किया तब ऋषिराय ने उनके साथ मुनि वर्धमानजी, कर्मचन्दजी (८३) और जीवोजी (८६) को दिया।[3]

उन्होंने सं० १८८२ का मुनिश्री जीतमलजी के साथ उदयपुर चातुर्मास किया।

(जय सुजश ढा० १० गा० ६,७)

६ मुनिश्री शीतकाल में रात्रि के समय तथा एक प्रहर दिन चढ़ने तक पछेवड़ी नहीं रखते।[4]

ग्रीष्मकाल में उन्होंने बहुत वर्षों तक आतापना ली। गोचरी के लिए जाने में सदा तत्पर रहते।[5]

७ सं० १८६४ में उन्होंने पंडित-मरण प्राप्त किया।[6] (ख्यात)

---

१. रायचन्द पूज सुहाया रे, तीनू रा परणाम चढ़ाया रे।
तपसी तप करण उमाया॥
ज्येष्ठ कृष्ण पखे मुनिराया रे छमासी तीनू नें पचखाया रे।
पूज उदियापुर चल आया रे॥
केलवे वर्धमान छमासी रे, राजनगर हीर तप वासी रे।
कांकरोली पीथल पद पासी॥
(पीथल मुनि गुण वर्णन ढा० १ गा० १० से १२)

२. विरधोजी व्यावच में वजीर, साता दीधी साम नैं जी।
आहार औषध आणै हजूर, फिरै करै काम नैं जी॥
(भारीमाल चरित्र ढा० ७ गा० ८)

३. जीत अनें वर्द्धमानजी रे, कर्मचंद नैं इकतार।
जीवराज साध गुणी रे, यानें मेल्या देश मेवाड़॥
(ऋषिराय सुजश ढा० ८ गा० १२)

४. सीयाले सह्यो शीत ठार ए, रात पछेवड़ी परिहार ए।
पोहर दिन चढ़ियै उनमान ए, भजजे तपसी वर्धमान ए॥
(वर्धमान गुण वर्णन ढा० १ गा० ४)

५. ग्रीष्म काले आताप ए, बहु वर्ष लगै चित्त थाप ए।
गोचरी फिरवै आसान ए, भजजे तपसी वर्धमान ए॥
(वर्ध० गुण वर्णन ढा० १ गा० ५)

६. निशि दीक्षा वर्द्धमान सित्तरे, तप षट मास सुजोगो रे।
उदक आगार एक सो चिहुं दिन, चोराणुंवे परलोगो रे॥
(शासन-विलास ढा० ३ गा० २१)

१. भवानजी जाति से माहेश्वरी थे। वे पहले स्थानकवासी सम्प्रदाय में दीक्षित हुए थे फिर स० १८७० में तेरापथ मे दीक्षा स्वीकार की।

(ख्यात)

दीक्षा कहां और किसके द्वारा हुई इसका उल्लेख नही मिलता।

२. उन्होंने १३ साल साधुत्व का पालन किया। फिर नियन्त्रण में न रह सकने के कारण स० १८८३ में गण से पृथक् हो गए परन्तु शासन के सम्मुख रहे। साधुओं को देखकर वदना करते, गुणगान करते और उन्हें गोचरी के घर बतलाते। अनेक व्यक्तियों को समझा कर सुलभबोधि बनाया[१]।

(ख्यात)

ऋषिराय ने स० १८८१ में मुनिश्री भीमजी (६३) का सिंघाड़ा किया तब भवानजी को उनके साथ दिया एवं स० १८८२ का उनके साथ माडा मे चातुर्मास किया। ऐसा जय सुजश ढा० १० गा० ५ मे उल्लेख है।

शासन विलास की दूसरी प्रति मे इनके अलग होने का सवत् १८८६ है पर वह बाद में लिखी होने से पूर्व लिखित प्रति का सवत् १८८३ यथार्थ लगता है।

## ६८।२।१६ श्री भवानजी

(दीक्षा सं० १८७०, १८८३ में गणबाहर)

रामायण-छन्द

माहेश्वरी जाति थी स्थानवासी मुनिजन में दीक्षित।
तेरापथ संघ में दीक्षा ली है फिर हो आकर्षित'।
तेरह साल रहे संयम में फिर अपनी दुर्बलता से।
माल तयांसी में हो पाये बाहर शासन-चन्द्रिका से ॥१॥
पृथक् भूत होने पर भी वे रहे सदा गण के सम्मुख।
देख साधुओं को करते थे वदन गुण-कीर्त्तन सोत्सुक।
वता गोचरी के घर देते कर-कर भाव भरा अनुरोध।
सुलभबोधि बहु व्यक्ति बनाये दे देकर धार्मिक प्रतिबोध' ॥२॥

## ६८।२।२० श्री रूपचन्दजी

(दीक्षा सं० १८७१—१८७१ मे गणबाहर)

### रामायण-छन्द

शिष्य तिलोकचन्दजी के थे सुन उनकी अन्तिम शिक्षा।
भारीमाल शरण में आकर रूपचन्द ने ली दीक्षा'॥
कठिन नियंत्रण मे चलना है अपनी इच्छाओं को रोक।
कुछ मासान्तर छोड़ दिया है कर्म योग से शासन-ओक॥१॥
जाते-जाते कहा उन्होने गण में संयम-भाव रसाल।
साधु-साध्विया गुण रत्नों की माला, सद्गुरु भारीमाल॥
अक्षम मैं संयम पालन में नही दूसरा है कारण।
कह करके यों चले गये हैं गुरु चरणों में कर वदन'॥२॥

१ मुनिश्री माणकचन्दजी[1] केलवा (मेवाड़) के वासी और गोत्र से हींगड़ (ओसवाल) थे। उन्होंने सं० १८७१ में पूर्ण वैराग्य से दीक्षा ग्रहण की।

(ख्यात)

ख्यात आदि में दीक्षा तिथि का उल्लेख नहीं मिलता पर जयाचार्य द्वारा रचित 'सत गुणमाला' की प्रथम ढाल का रचना समय सं० १८७१ फाल्गुन कृष्णा ११ है और उसमें तब तक के विद्यमान साधुओं के नाम हैं। उसमें माणकचन्दजी का नाम न होने से लगता है कि उनकी दीक्षा फाल्गुन कृष्णा ११ के पश्चात् हुई।

२. मुनिश्री प्रकृति से भद्र थे। (ख्यात) साधना में रत होकर मधुरता संयम-यात्रा का निर्वहन करने लगे। उन्होंने सं० १८७५ में मुनि जोधोजी (४६) के साथ 'कोचला' (झारोल के पास) चातुर्मास किया। दूसरे संत मोजीरामजी (५४) थे, *ऐसा उल्लेख शासन विलास ढा० १ गा० ५० की वार्तिका (जोधोजी की) में है।* सं० १८८३ के कांकरोली चातुर्मास में मुनिश्री भीमजी (६१) के साथ थे, इसका उल्लेख दीपक गुण वर्णन ढा० १ गा० ३० में मिलता है।

प्रकीर्णक पत्र संग्रह प्रकरण ४ पत्र संख्या २७ में लिखा है कि मुनि अमीचन्दजी (८०) ने ऋषिराय से कहा—आप राजनगर पधार जाएं, वहां मुनि माणकचन्दजी आदि हैं। इससे लगता है कि वे उस समय (सं० १८८१) अग्रणी थे।

३. मुनिश्री ने शीतकाल में शीत सहन किया और उष्णकाल में आताप-ना ली। तपस्या भी बहुत की। ऊपर में आछ के आधार से चौमासी तप किया।

(ख्यात)

मुनिश्री ने चौमासी तप भारीमालजी स्वामी के शासनकाल में किया था, ऐसा निम्नोक्त गाथा से ज्ञात होता है—

'माणकचन्दजी भारीमाल गुणसाय कै, चौमासी करी चूप सू जी।
बहु वर्षां लग संजम पाली ताय कै, जन्म सुधार्यो आपरो जी॥'

(सत गुणमाला ढा० ४ गा० ४५)

सुना जाता है कि उक्त चौमासी तप उन्होंने सं० १८७७ में किया। उसी वर्ष मुनि हीरजी (७६) ने मुनि स्वरूपचन्दजी (६२) के पास पुर में चौमासी तप किया था। दोनों मुनियों का यह तप गण में (भारीमालजी स्वामी के युग में) सर्व-प्रथम था।

ख्यात तथा शासन विलास में मुनिश्री का स्वर्गवास लावा में हुआ लिखा है' पर वहां स्वर्ग संवत् नहीं है। सत गुणमाला ढा० ४ में उल्लिखित स्वर्गस्थ साधुओं के क्रम को देखते हुए स्वर्ग सं० १९०० के आस-पास का लगता है।

---

[1] माणक सैहर केलवे वासी, हींगर जाति पिछाणो रे।
चौमासी तप आछ आगारे, लाहवे परभव जाणो रे॥

(शासन विलास ढा० ३ गा० २५)

## ७०।२।२१ श्री रासिघजी (राहसिघजी)

(दीक्षा स० १८७१, गणबाहर)

रामायण-छन्द

थे कुशाल के शिष्य प्रथम फिर लिया चरण भैक्षव-गण में।
अलग हुए फिर ली नव-दीक्षा रायचद गुरु-शासन में॥
नही निभा सकने से वापस पृथक् हुए गण-आश्रय से।
विचलित साधक हो जाता है निविड़ अशुभ कर्मोदय से'॥१॥

१. मुनिश्री माणकचन्दजी केलवा (मेवाड़) के वासी और गोत्र से हींगड़ (ओसवाल) थे। उन्होंने सं० १८७१ में पूर्ण वैराग्य से दीक्षा ग्रहण की।

(ख्यात)

ख्यात आदि में दीक्षा तिथि का उल्लेख नहीं मिलता पर जयाचार्य द्वारा रचित 'सत गुणमाला' की प्रथम ढाल का रचना समय सं० १८७१ फाल्गुन कृष्णा १३ है और उसमें तब तक के विद्यमान साधुओं के नाम हैं। उनमें माणकचन्दजी का नाम न होने से लगता है कि उनकी दीक्षा फाल्गुन कृष्णा १३ के पश्चात् हुई।

२. मुनिश्री प्रकृति से भद्र थे। (ख्यात) साधना में रत होकर सकुशल संयम-यात्रा का निर्वहन करने लगे। उन्होंने सं० १८७५ में मुनि जोधोजी (४६) के साथ 'कोचला' (झारोल के पास) चातुर्मास किया। दूसरे संत मोजीरामजी (५४) थे, *ऐसा उल्लेख शासन विलास ढा० १ गा० ५० की वार्तिका (जोधोजी की) में है।* सं० १८८३ के काकड़ोली चातुर्मास में मुनिश्री भीमजी (६३) के साथ थे, इसका उल्लेख पीयल गुण वर्णन ढा० १ गा० ३० में मिलता है।

प्रकीर्णक पत्र संग्रह प्रकरण ४ पत्र संख्या २७ में लिखा है कि मुनि अमीचंदजी (८०) ने ऋषिराय से कहा—आप राजनगर पधार जाएं, वहां मुनि माणकचंदजी आदि हैं। इससे लगता है कि वे उस समय (सं० १८६३) अग्रणी थे।

३. मुनिश्री ने शीतकाल में शीत सहन किया और उष्णकाल में आतापना ली। तपस्या भी बहुत की। ऊपर में आछ के आधार से चौमासी तप किया।

(ख्यात)

मुनिश्री ने चौमासी तप भारीमालजी स्वामी के शासनकाल में किया था, ऐसा निम्नोक्त गाथा से ज्ञात होता है—

'माणकचन्दजी भारीमाल सुपसाय कै, चौमासी करी चूप सू जी।
बहु वर्सां लग संजम पाली साय कै, जन्म सुधार्‌यो आपरो जी।।'

(सत गुणमाला ढा० ४ गा० ४५)

सुना जाता है कि उक्त चौमासी तप उन्होंने सं० १८७७ में किया। उसी वर्ष मुनि हीरजी (७६) ने मुनि स्वरूपचन्दजी (६२) के पास पुर में चौमासी तप किया था। दोनों मुनियों का यह तप गण में (भारीमालजी स्वामी के युग में) सर्वप्रथम था।

ख्यात तथा शासन विलास में मुनिश्री का स्वर्गवास लावा में हुआ लिखा है[1] पर वहां स्वर्ग संवत् नहीं है। सत गुणमाला ढा० ४ में उल्लिखित स्वर्गस्थ साधुओं के क्रम को देखते हुए स्वर्ग सं० १९०० के आस-पास का लगता है।

---

१. माणक सैंहर केलवै वासी, हींगड़ जाति पिछाणो रे।
चौमासी तप आछ आगारे, लाहवै परभव जाणो रे।।

(शासन विलास ढा० ३ गा० २५)

## ७।१२।२२ मुनिश्री माणकचन्दजी (केलवा)

(संयम पर्याय सं० १८७१-१९०० के आसपास)

गीतक-छन्द

केलवा में वास हीगड़ गोत्र माणकचन्द का।
साधु-संगति से चखा रस विरति मय मकरन्द का।
इकत्तर की साल संयम का लिया सुखधाम है'।
प्रकृति-ऋजु मुनि साधना-रस खींचते हरयाम है'॥१॥

शीत आतप सहा धृति से तपस्या पथ पर बढ़े।
आछा के आगार ऊपर चारमासी तक चढ़े'।
प्रमुख श्रद्धा केन्द्र माना एक शासन-इन्दु को।
कर लिया कल्याण अपना तर लिया भव-सिंधु को'॥२॥

## ७२।२।२३ मुनिश्री पीथलजी छोटा (केलवा)

(संयम पर्याय सं० १८७१ या ७२, १८७८)

**गीतक-छन्द**

गोत्र था चडालिया पुर केलवा में वास था।
विरत होकर साधना-पथ पर किया विन्यास था¹।
सुविनयी त्यागी विरागी तपस्वी इन्द्रिय-दमी।
मास दो तक ऊर्ध्व तप के चढ़े बन कर विक्रमी²॥१॥

**दोहा**

दुहिता नवला ने लिया, चरण आपके बाद।
भारी गुरु के चरण में, पाया परमाह्लाद³॥२॥

**रामायण-छन्द**

नवापुरा में मुनि गुलाब ने वर्षावास किया सकुशल।
सात साधु उस समय वहां पर जिनमें एक संत पीथल।
एक दिवस उज्जैन शहर में गये गोचरी वे धृतिधीर।
भिक्षा लेकर वापस आते हुआ पथ में शिथिल शरीर॥३॥
पहुंचे मूल स्थान पर झोली रखकर बैठे जा एकांत।
ऋषि गुलाब ने पूछा उनसे आज हुए क्यों इतने क्लांत।
बोले पीथल—'सत्त्व देह से निकल गया लगता है आज।
अनशन मुझे कराओ अब ही सुन मेरी अन्तर आवाज'॥४॥
करने से विश्राम स्वस्थ क्षण मिट जाएगी ...
फिर भी वे अत्याग्रह करते
तब तो मुनि गुलाब ने अन

१. मुनिश्री टीकमजी माधोपुर (ढुंढाड) के निवासी थे। उन्होंने स० १८७२ मे आचार्यश्री भारीमलजी के हाथ से दीक्षा ली[1]।

(ख्यात)

सत विवरणिका मे उनकी जाति पोरवाल-ओछल्या लिखी है।

२. वे अग्रणी हुए। श्रावकों द्वारा लिखित प्राचीन चातुर्मास तालिका के अनुसार उनका ३ ठाणो से स० १९१२ का चातुर्मास रेलमगरा में था। मुनिश्री जीवराजजी (८६) द्वारा रचित चातुर्मास-विवरण की ढाल के उल्लेखानुसार उनका ३ ठाणो से स० १९१३ का चातुर्मास कानोड मे था।

३. मुनिश्री का स० १९१५ का चातुर्मास नाथद्वारा मे था। वहा उन्होंने अनशनपूर्वक समाधि-मरण प्राप्त किया—

परभव पनरै वर्ष टीकम ऋषि, माधोपुर वसवानो रे।

(शासन विलास ढा० ३ गा० २७)

चदेरा ना लाल रे, टीकम माधोपुर तणा।
सत बिहुं सुविशाल रे, अणसण श्रीजीदुवार मे॥

(आर्या दर्शन ढा० ८ सो० ३)

इस चातुर्मास मे उनके साथ मुनिश्री लालजी (१२२) थे। उन्होने सावन महीने मे सथारा करके पडित-मरण प्राप्त किया।

चरम चोममो श्रीजीद्वारे, टीकम ऋषि पै जाणो रे।
उगणीसैं पनरे सावण मे, परभव कियो पयाणो रे॥

(लाल मुनि गुण वर्णन ढा० १ गा० ४)

इन सब उद्धरणो से लगता है कि मुनि टीकमजी मुनि लालजी के बाद चातुर्मास मे स्वर्ग पधारे।

उन्होंने स० १८८७ बोरावड मे एक साथ १५ दिन चौविहार करने का प्रत्याख्यान किया जिसमे तीन दिन पानी पीने का आगार रखा। तीसरे दिन प्यास लगी, फिर भी पानी नहीं पीया और उसी दिन ऊर्ध्व भावो के साथ समाधिपूर्वक पडित-मरण प्राप्त कर गए।

---

[1] भारीमालजी दीक्षा दीधी, बोहित्तरे उनमानो रे।

(शासन विलास ढा० ३ गा० २७)

## ७३।२।२४ मुनिश्री टीकमजी (माधोपुर)

(संयम पर्याय सं० १८७२-१९१५)

गीतक-छन्द

शहर माधोपुर निवासी बने टीकम संयमी।
बहत्तर की साल भारीमाल गुरु से विक्रमी'।
ललित अक्षर-न्यास अर्जन कला कौशल का किया।
अग्रणी हो धर्म का उपदेश पुर-पुर में दिया'॥१॥

दोहा

वर्ष तीन चालीस तक, किया साधनाभ्यास।
नाथद्वारा से गये, कर अनशन सुरवास'॥२॥

रत्न-सहोदर युक्ति-पूर्व सुत को समझाता।
शांत हुआ वह चतुर तब सहमत सब परिवार।
भाग्य योग से 'रत्न' को रत्न मिले हैं चार॥४॥

हेम हाथ से स्त्री सहित बने सयमी रत्न।
नाम भाव निक्षेप में परिणत हुआ सयत्न।'
परिणत हुआ सयत्न साधना करते अच्छी।
नीति निपुण गुणवान ज्ञान निधि भरते सच्ची।
कर पाये बहु धारणा तपोधनी अणगार।
भाग्य योग से 'रत्न' को रत्न मिले हैं चार॥५॥

अविचल निष्ठा संघ में गुरु से हार्दिक प्रेम'।
रहे श्रमण-पर्याय मे बहु वत्सर सक्षेम।
बहु वत्सर सक्षेम किया आखिर सथारा।
अबापुर मे स्वच्छ सुयश का बजा नगारा।
भारी हुई प्रभावना मुख-मुख जय-जयकार।
भाग्य योग से 'रत्न' को रत्न मिले हैं चार॥६॥

पुर-पुर से नर आ रहे बढ़ता त्याग विराग।
एक बंधु ने कर दिया भोजन का भी त्याग।
भोजन का भी त्याग 'फौज' ने मुनि से पूछा।
बोले मुट्ठी भीच मनोबल मेरा ऊंचा।
फला दिवस उनचास से अनशन ऊर्ध्व उदार।
भाग्य योग से 'रत्न' को रत्न मिले हैं चार॥७॥

जय युग में मुनि 'रत्न' ने सफल किया अवतार।
कलियुग में दिखला दिया सतयुग का आकार।
सतयुग का आकार नया इतिहास बनाया।
अनशन क्रम में नाम अमर उनका हो पाया।
बने रहेंगे सघ के 'रत्न' हृदय के हार।
भाग्य योग से 'रत्न' को रत्न मिले हैं चार॥८॥

## दोहा

सेवा की मुनि चार ने, देकर गहरा ध्यान।
जय ने गाया 'रत्न' का, मुक्त-कंठ गुणगान'॥९॥

## ७४।७।७५ मुनिश्री रत्नजी (ताणा)

([illegible] १९७०-१९१०)

### छप्पय

भाग्य योग से 'रत्न' को रत्न मिले हैं चार।
मानो मनोरथ हो गये जिनसे सब साकार।
जिनसे सब साकार प्रथम मानव भव पाया।
जैन धर्म सा रत्न दूसरा कर में आया।
चरण रत्न का तीसरा चौथा अनशन सार।
भाग्य योग से 'रत्न' को रत्न मिले हैं चार।।१।।

मेवाड़ की भूमि पर 'ताणा' नामक ग्राम।
गोत्र बर्डिया जाति का बहु परिजन धन-धाम।
बहु परिजन धन-धाम धर्म में गहरी आस्था।
करके योग्य विराग चुना फिर अगला रास्ता।
स्त्री सह दीक्षा के लिए हुए 'रत्न' तैयार।
भाग्य योग से 'रत्न' को रत्न मिले हैं चार।।२।।

फतेचन्द ग्रामाग्रणी थे श्रावक आदर्श।
दीक्षा के उत्सव बड़े मना रहे धर हर्ष।
मना रहे धर हर्ष पत्रिका कुंकुम देकर।
आमंत्रित बहु व्यक्ति किये हैं उस अवसर पर।
हेम महामुनि आ गये कर अनुनय स्वीकार।
भाग्य योग से 'रत्न' को रत्न मिले हैं चार।।३।।

मृगसर [illegible] ट का दीक्षा दिन निर्णीत।
[illegible] नोरियां गाती बहिनें गीत।
[illegible] ीत भतीजा रुदन मचाता।

रत्न-सहोदर मुनि-सूर्य गुन को समझाना।
शांत हुआ वह चतुर सब सहमत सब परिवार।
भाग्य योग से 'रत्न' को रत्न मिले हैं चार ॥४॥

हेम हाथ से स्त्री सहित बने संयमी रत्न।
नाम भाव निक्षेप में परिणत हुआ सयत्न।
परिणत हुआ सयत्न साधना करते अच्छी।
नीति निपुण गुणवान ज्ञान निधि भरते सच्ची।
कर पाये बहु धारणा तपोधनी अणगार।
भाग्य योग से 'रत्न' को रत्न मिले हैं चार ॥५॥

अविचल निष्ठा संघ में गुरु से हार्दिक प्रेम।
रहे श्रमण-पर्याय में बहु वत्सर सक्षेम।
बहु वत्सर सक्षेम किया आखिर संथारा।
अंबापुर में स्वच्छ सुयश का बजा नगारा।
भारी हुई प्रभावना मुख-मुख जय-जयकार।
भाग्य योग से 'रत्न' को रत्न मिले हैं चार ॥६॥

पुर-पुर से नर आ रहे बढ़ता त्याग विराग।
एक वधू ने कर दिया भोजन का भी त्याग।
भोजन का भी त्याग 'फौज' ने मुनि से पूछा।
बोले मुट्ठी बीच मनोबल मेरा ऊंचा।
फला दिवस उनचास से अनशन ऊर्ध्व उदार।
भाग्य योग से 'रत्न' को रत्न मिले हैं चार ॥७॥

जय युग में मुनि 'रत्न' ने सफल किया अवतार।
कलियुग में दिखला दिया सतयुग का आकार।
सतयुग का आकार नया इतिहास बनाया।
अनशन क्रम से नाम अमर उनका हो पाया।
बने रहेंगे संघ के 'रत्न' हृदय के हार।
भाग्य योग से 'रत्न' को रत्न मिले हैं चार ॥८॥

दोहा

सेवा की मुनि चार ने, देकर गहरा ध्यान।

## ७४।२।२५ मुनिश्री रतनजी (लावा)

(संयम पर्याय सं० १८७३-१९१७)

छप्पय

भाग्य योग से 'रत्न' को रत्न मिले हैं चार।
मनो मनोरथ हो गये जिससे सब साकार।
जिसमें सब साकार प्रथम मानव भव पाया।
जैन धर्म मय रत्न दूसरा कर में आया।
चरण रत्न था तीसरा चौथा अनशन सार।
भाग्य योग से 'रत्न' को रत्न मिले हैं चार॥१॥

मेदपाट की भूमि पर 'लावा' नामक ग्राम।
गोत्र बबलिया ज्ञाति का बहु परिजन धन-धाम।
बहु परिजन धन-धाम धर्म में गहरी आस्था।
करके योग्य विकास चुना फिर अगला रास्ता।
स्त्री सह दीक्षा के लिए हुए 'रत्न' तैयार।
भाग्य योग से 'रत्न' को रत्न मिले हैं चार॥२॥

फतेचंद प्रातःस्मरणी ये श्रावक आदर्श।
दीक्षा के उत्सव बड़े मना रहे घर हर्ष।
मना रहे घर हर्ष पत्रिका कुंकुम देकर।
आमंत्रित बहु व्यक्ति किये हैं उस अवसर पर।
हेम महामुनि आ गये कर अनुनय स्वीकार।
भाग्य योग से 'रत्न' को रत्न मिले हैं चार॥३॥

मृगसर कृष्णा छठ का दीक्षा दिन निर्णीत।
निकल रही बन्नोरिया गाती महिलें गीत।
गाती महिलें गीत भतीजा रुदन मचाता।

शीघ्र विहार कर मृगसर वदि ५ को लावा पहुंचे।[1] उन्होंने वहां सं० १८७३ मृगसर कृष्णा ६ को मुनि रत्नजी को उनकी पत्नी पेमाजी (६१) सहित दीक्षित किया। उसके साथ मुनि अमीचन्दजी 'गलूंड' (७५) को भी दीक्षा प्रदान की।[2]

(रत्न गु० ढा० १ गा० १ से १० के आधार से)

भैक्षव-शासन में दम्पति दीक्षा का यह प्रथम अवसर था। आचार्य भिक्षु के समय सं० १८५७ में दीक्षित साध्वीश्री जोतोजी (४८) मुनि रत्नजी के भाई की पत्नी थी। साध्वी नदूजी (६२) उनकी भतीजी (फतहचंदजी की पुत्री) थी। ऐसी लावा के श्रावकों की धारणा है।

नदूजी ने इसी वर्ष रत्नजी की दीक्षा के कुछ दिन बाद दीक्षा ग्रहण की।

मुनिश्री ने साधनारत होकर ज्ञानाभ्यास किया। आगमों के पठन के साथ तत्त्व-चर्चा की अच्छी धारणा की। तपश्चर्या भी बहुत की। (ख्यात)

उनकी निर्मल नीति एवं संघ संघपति के प्रति अंतरंग निष्ठा का जयाचार्य ने स्वरचित गीतिका में इस प्रकार उल्लेख किया है—

नीति निपुण महिमा निलो रे, आण अखंड आराध।
परम प्रीत सतगुरु थकी रे, सखरो रीत समाध।
जबर शासण री आसता रे, सर्व गुणां में ए सार।
प्राण थकां पिण नवि छंडै रे, गण शिव सुख दातार।

(रत्न गुण वर्णन ढा० गा० १५, १६)

मुनिश्री ने सं० १८८३ का मुनिश्री भीमजी (६३) के साथ कांकडोली चातुर्मास किया। दूसरे संत मुनि पीथलजी (५६), माणकचन्दजी (७१) और हुकमचंदजी (८३) थे। ऐसा पीथल गुण वर्णन ढा० १ गा० ३० में उल्लेख है।

---

१. 'लाहवा' थी पदेचंदजी सोयो रे, हेम पैं विनती मेली जोयो रे।
रत्नजी दिख्या अवलोयो॥
घाटै चढ़ी नै लाहवा मझारो रे, मिगसर विद पंचम तिथ सारो रे।
छठ रत्न दिख्या अवधारो॥

(हेम नवरसो ढा० ५ गा० ७, ८)

२. संवत् अठारै तीहोतरे रे, मृगसर विद छठ सार।
रत्न चरण महोच्छव रच्या रे, आणी हरष अपार॥
रत्न सजोड़े विध करी रे, ओचलियो अमीचन्द।
त्रिया सुत छांडी तिण समैं रे, त्रिहु हेम हाथ चरण मंद॥

(रत्न गुण वर्णन ढा० १ गा० ४, १०)

हेम नवरसा ढा० ५ गा० १० एवं शासन विलास ढा० ३ गा० २८ में भी उक्त दीक्षा का वर्णन है।

मुनिश्री के ११८ वर्ष बाद साध्वीश्री लिछमाजी (७८६) 'सरदारशहर' को सं० २०३३ आसोज शुक्ला ६ लाडनूं में १७ दिन संलेखना एवं ४६ दिन का अनशन आया।

मुनिश्री के दिवंगत होने के १७ दिन बाद जयाचार्य ने उनके गुणोत्कीर्तन की एक गीतिका बनाई।[1] उसमे उनके यशस्वी जीवन का वास्तविक चित्रण किया है। उनके स्मरण की महत्ता बतलाते हुए लिखा है—

रत्न चिंतामणि सारखो रे, रत्न ऋषि सुखकार।
भजन करो भविषण सदा रे, समरण जय जयकार॥
(रत्न गुण वर्णन ढा० १ गा० २७)

शासन प्रभाकर ढा० ४ गा० १३१ में ४२ दिन के अनशन का उल्लेख है जो उक्त प्रमाणों से गलत है।

अन्य चातुर्मास किन-किन के साथ और कहां-कहां किये इसका उल्लेख नहीं मिलता।

३ मुनिश्री ने चौवालीस साल लगभग साधु-पर्याय का पालन किया। आखिर सं० १६१७ माघ कृष्णा १० को आमेट में शारीरिक शक्ति होते हुए उज्ज्वल भावों में आजीवन तिविहार अनशन स्वीकार किया। क्रमशः ज्यों-ज्यों दिन निकलते हैं त्यों-त्यों उनका मनोबल दृढ़ और भावना उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है। सूचना मिलने पर ग्राम ग्राम से अनेक लोग दर्शनार्थ आते और यथाशक्ति नियम ग्रहण करते। पुर निवासी मेघराजजी बोरदिया ने सथारे के समाचार सुनकर तीनों आहारों का प्रत्याख्यान कर दिया। प्रतिदिन भाई-बहनों के आवागमन से आमेट में एक मेला-सा लग गया। सभी मुनिश्री के अनशन की मुक्त कंठों से यशोगाथा गाने लगे एवं मुख-मुख पर जय-जय का घोष गूंजने लगा। उन्हीं दिनों नाथद्वारा के प्रमुख श्रावक फोजमलजी तलेसरा ने मुनिश्री के दर्शन किये और पूछा—'आपके भाव कैसे हैं ?' मुनिश्री ने कहा—'वज्र की दीवार के समान मेरा मन मजबूत है।'[1]

क्रमशः ४६ दिन का अनशन सम्पन्न कर सं० १६१७ फाल्गुन शुक्ला १३ को आमेट में मुनिश्री ने पंडित-मरण प्राप्त किया।[2] मेघराजजी बोरदिया के २० दिन का तप हो गया। मुनिश्री के अनशन से जैन शासन की बहुत प्रभावना हुई। कलियुग में सतयुग की-सी रचना देखकर जनता आश्चर्य-चकित हो गई।

मुनि जीवराजजी (८६) माणकचन्दजी (६६) खूमचन्दजी (१४५) और पोखरजी (१६५) ने मुनिश्री की तन मन से सेवा की और अनशन में अच्छा सहयोग दिया।

(रत्न गुण वर्णन ढा० १ गा० १४ तथा १७ से २६ के आधार से)

मुनिश्री ने ४६ दिनों का संथारा कर तेरापंथ धर्मसंघ के साधुओं में नया कीर्तिमान स्थापित किया। मुनिश्री से लगभग ५० वर्ष पूर्व साध्वीश्री गुमानाजी (३३) लावा वालों को ६० दिन का अनशन आया जो संघ में सर्वाधिक था

१. थोजीदुवारा थी दर्शण किया रे, फोजमल सुप्रसन्न।
रत्न कहै वज्र भीत जेहवो, दृढ है म्हारो मन्न॥
(रत्न गुण वर्णन ढा० १ गा० २१

२. संथारो दिन गुणपचास नो, रत्न भणी शुभ रीत।
जय-जय जन-जन उच्चरै रे, थया जमारो जीत॥
उगणीसै सतरे समें, फाल्गुन सुदि तेरस सार।
रत्न ऋषि परभव गयो रे, पाम्या जन चिमत्कार॥
(रत्न गुण वर्णन ढा० १ गा० २२, २

लय—धर्म पर डट जाना…

तपोधन ने तप किया मजोर, सहा शीतोष्ण परिषह घोर।
काय-उत्सर्ग अभिग्रह और, रमे रस अनुपम मे॥८॥

## दोहा

चौविहार दश दिवस तक, कर पाये क्रमवद्ध।
कर्म निर्जरा के लिए, हो पाये कटिवद्ध'॥९॥

शेष में पाक्षिक तप स्वीकार, दिखाया आत्मिक बल साकार।
तीसरे दिन पा गये उदार, मरण भावोत्तम मे॥१०॥

## दोहा

सत्यासी की साल में, बोरावड शुभ स्थान।
नाम अमर कर संघ मे, बने स्वर्ग-महमान'॥११॥

पद्याक्षर मे आपका, आया पहला नाम।
विघ्नहरण की ढाल के, देखो पद्य ललाम'॥१२॥

विविध स्थलों मे जीत ने, गाये मुनि गुण गान।
स्थान दिया है हृदय मे, किया बड़ा सम्मान'॥१३॥

स्वप्न और आभास से, ज्ञात हुए कुछ तथ्य।
माने हैं व्यवहार से, 'जय' ने उनको सत्य'॥१४॥

## ७५।२।२६ मुनिश्री अमीनन्दजी (कालूरामजी) गलूं

(संयम पर्याय सं० १८७३-१८८७)

लय—धर्म पर डट जाना…

रमे तप संयम में, अमीचंद अणगार।
जमे उपशम दम में, अमीचंद गणधार ।।ध्रु०।।

शांति का धाम गलूंड ललाम, पिता आनसिंह था अभिराम।
दूसरा कालू था उपनाम, रमे गृह-आश्रम में ।।अमीचंद।।१
जला भावों का दीप अमंद, तरुण वय में तरुणी तज नंद।
छोड़ के चरण लिया सानंद, जुड़े पद संयम में ।।२।।

दोहा

साल निहोत्तर मार्ग का, छट्ठा दिन श्रीकार।
हुआ हेम के हाथ से, दीक्षा का संस्कार ।।३।।

लय—धर्म पर डट जाना…

भरा आत्मा में अनुभव सार, बढ़ाया विनय-विवेक विचार।
बहाया ज्ञान सुधा हरबार, बढ़े सद्गुण क्रम में ।।४।।
उच्चतम मुनि का सदाचार, त्याग तप जप में किया निखार।
दमा पंचेन्द्रिय विषय विकार, अग्रणी उद्यम में ।।५।।
साधना में की प्रगति महान्, सहायक गण गणपति को मान।
ज्ञान गुन ध्याते निर्मल ध्यान, अधिक रुचि आगम में ।।६।।

दोहा

वस्तु सेलड़ी की सभी, दी मुनि श्री ने छोड़।
पाई रसना पर विजय, तार विरति से जोड़ ।।७।।

तरह चमकाया। जयाचार्य ने उनको भगवान् महावीर के अन्तेवासी एवं महान् तपस्वी संत धन्ना अणगार की उपमा देकर उनकी साधना के संदर्भ में उल्लेख किया है। पढ़िये निम्नोक्त पद्य—

वस्तु सेलड़ी नी सहु त्यागी, बहु शीत उष्ण शुभ ध्यानो रे।
चौविहार दश दिन लग कीधा, घोर तपस्वी जानो रे।।
चौविहार पनरै दिन पचख्या, त्रिण उदक आगारो रे।
सत्यासीये तीजै दिन परभव, अमीचंद अणगारो रे।।
(शासन विलास ढा० ३ गा० १०, ११)

शीत काल बहु शीत सह्यो, ऋष ऊभा काउसग्ग अभिग्रह रह्यो।
उष्णकाल आतप तपियो।।
दश दिवस ताईं चौविहार दीप, जश धारक इंद्रिय विषय जीप।
रस मिष्ट त्याग तप सूं रमियो।।
(अमी० गुण० वर्णन ढा० ४ गा० ३, ४)

अमीचंद त्रिहुं ऋतु मझै रे, जबर कियो तप घोर।
धन्ना ऋषि नी ओपमा रे, तपसी मे शिर मोर।
(रत्न गुण वर्णन ढा० १ गा० ११)

हुवो अमीचंद ऋष नीको रे, तपसी तप धारी सुतीखो रे।
मुनि लियो सुजश रो टीको।।
सर्व सेलड़ी वस्तु छंडी रे, बड वैरागी कर्म विहंडी रे।
ज्यारी प्रीत मुक्ति सूं मंडी।।
तप कीधो है विविध प्रकारो रे, दश दिवस ताई चोविहारो रे।
थयो जिण शासण सिणगारो।।
शीतकाल सी सह्यो अपारो रे, ऊभा काउसग अभिग्रह उदारो रे।
तिण में पछेवडी परिहारो।।
उष्णकाल आतापना लीधी रे, विकट तप खखर देह कीधी रे।
मुनि जग मांहि शोभा लीधी।।
चौथे आरे धनो ऋष मुणियो रे, पंचम अमीचंद सुगुणियो रे।
एक कर्म काटण तंत भणियो।।
(हेम नवरसो ढा० ५ गा० ११ से १६)।

बड़ा वैरागी, सेलड़ी की वस्तु का जावजीव त्याग, तपस्या विण कीधी, दस ताईं चौविहार किया। शीत परिषह बहुत खम्यो, आतापना पण बहुली लीधी।'
(ख्यात)

उन्होंने सं० १९८७ बोरावड में एक साथ १५ दिन चौविहार करने का प्रत्याख्यान किया जिसमे तीन दिन पानी पीने का आगार रखा। तीसरे दिन

१ मुनिश्री अमीचंदजी मेवाड़ में गलूंड के वासी थे। उनकी जाति ओसवाल और गोत्र आंचलिया था। यथा समय उनकी शादी हुई। पत्नी का नाम पेमांजी था। उनके एक पुत्र भी हुआ।

उनका मुख्य नाम अमीचंदजी एवं उपनाम कालूरामजी था जिसका जयाचार्य ने कई जगह प्रयोग किया है।[1]

समयान्तर से साधु-साध्वियों द्वारा उद्बोधन पाकर वे दीक्षा लेने के लिए कटिबद्ध हुए।

पत्नी और पुत्र को छोड़कर सं० १८७३ मृगसर वदि ६ को लावा (सरदारगढ़) में मुनिश्री हेमराजजी द्वारा संयम ग्रहण किया। उनके साथ मुनि रत्नजी (७४) और साध्वी पेमांजी (६१) की भी दीक्षा हुई।

पढ़िये निम्नोक्त पद्य—

तिहुतरे गृहवास तज्यो, भव तारक हेम ऋषि ने भज्यो।
छांड त्रिया सुत चरण लियो॥
(अमी० गुण० ढा० ४ गा० २)

रत्न सजोड़े विध करी रे, आंचलियो अमीचंद।
त्रिय सुत छांडी त्रिण समें रे, त्रिहुं हेम हाथ चर्ण संघ॥
(रत्न गुण० ढा० १ गा० १०)

अमीचद गलूंड नो वासी रे, पुत्र कलत्र छोड उदासी रे।
ते पिण चारित्र थी आतमवासी॥
त्रिया सहित रत्न दीख्या लीधी रे, अमीचद आंचलियो प्रमोधी रे।
हेम एक दिवस दिख्या दीधी॥
(हेम नवरसो ढा० ५ गा० ६, १०)

२. मुनिश्री एक उच्चकोटि के साधक हुए। उन्होंने आचार-विचार की कुशलता के साथ विनय, विवेक आदि गुणों में अधिकाधिक वृद्धि की। उनका त्याग-विराग जन-जन को आकृष्ट करने वाला था। उन्होंने उपवास से दस दिन का चौविहार लड़ीबद्ध तप किया। सेलड़ी की वस्तु (जिस पदार्थ में गुड़, शक्कर, चीनी आदि मिले हों) का आजीवन त्याग कर दिया। शीतकाल में बहुत शीत सहन किया और उष्णकाल में आतापना ली। विविध प्रकार के अभिग्रह, कायोत्सर्ग तथा ध्यान-स्वाध्याय आदि द्वारा अपने संयमी जीवन को तपे हुए सोने की

---

१. अमीचद गुण आगलो रे लाल, कालूराम कहंड।
(अमी० गु० ढा० ३ गा० १)

कालूराम कहयो घणो, परम आप सू प्रीत।
(अमी० गु० ढा० ५ गा० ४)

पूर्व धारी भावना, एक चटक चित्त मांय।
कै जाणे मन माहरोजी, कै जाणै जिनराय रे॥
त्यागी वैरागी बडोजी, जो अवसर नो जाण।
विनय विवेक विचार में जी, तपसी महा गुणखाण रे॥
(अमी० गुण वर्णन ढा० २ गा० ५, ६)

ऊंडी सुध आलोचना, वर शुद्ध बुद्धि विशाल।
पार कहूं किम पामियै, इहै परम नियो गुण माल॥
(अमी० गुण वर्णन ढा० ५ गा० ३)

विविध अभिग्रह आदरया रे, थां सूं प्रीत अपार हो।
याद आयां मन हुलसै, आप रह्या अणगार हो॥
(अमी० गुण वर्णन ढा० ६ गा० ४)

तप रूप सुधा वृष्टी वरसै रे, घोर तप सुणी कायर धड़कै रे।
याद आयां हीयो मुझ हरसै रे॥
सुखचंद समो सुविलासी रे, गुण निप्पन नाम विमासी रे।
कियो पचम आरे उजासो॥
तसु भजन करो नरनारी रे, सर्व दुख भय भजण हारी रे।
मुनि मुख सम्पति दातारी॥
तिण नै दीधो है संजम भारी रे, भाव भाय थकी काढ्यो बारी रे।
ओ तो हेम तणो उपगारी॥
(हेम नवरसो ढा० ५ गा० १७ से २०)

अमीचंद कालूराम विमास कै, विविध अभिग्रह आदर्योजी।
पंचम काल में कीधो भारी उजास कै, एहनो गुण किम वीसरैजी॥
(सत गुण माला ढा० ४ गा० ३०)

चिंतामणि सुरतरु समो रे लाल, भीम अमी दुख भंजन्न।
निश्चल तन मन सूं भज्यां रे लाल, सुख पामै सुप्रसन्न॥
(अमी० गुण वर्णन ढा० ३ गा० ६)

जयाचार्य विरचित उनके गुण वर्णन की ६ ढालें 'सत गुण वर्णन' में हैं।

६. प्राचीन अनुश्रुति के आधार से कहा जाता है कि मुनिश्री अमीचंदजी तीसरे देवलोक में गए। उनके द्वारा जयाचार्य को कई बार आभास हुए। उनको स्वयं जयाचार्य ने अपने हाथ से लिपिबद्ध कर लिया। वे पत्र पुस्तक भंडार में सुरक्षित हैं।

एक अनुश्रुति यह भी है कि वे गत जन्म में सरदारसती के पिता थे। सरदार-सती को जो महाविदेह क्षेत्र आदि की बातें ज्ञात हुईं, वे इनके द्वारा हुई थीं।

प्यास अधिक लगी, फिर भी पानी नहीं पीया और उसी दिन ऊर्ध्व भावों के साथ समाधिपूर्वक पंडित मरण प्राप्त कर गये।

दिन पनरै मुनि पचख दियो, ऋष दिवस तीन जल ना रखियो।
परलोक तीजे दिन पागरियो॥
तप कर तोडी कर्म रासो, पंचम काल प्रकाशो।
अठारै अठ्यासीये काल कियो॥
(भमी० गु० व० ढा० ४ गा० ६,७)

अठ्यासीये बोरावड महौ रे, पचख्या पनरै दिन।
चौविहार तीजे दिन रे, पंडित मरण प्रसन्न॥
(रत्न० गु० व० ढा० १ गा० १२)

'सं० १८८७, १५ दिन चौविहार पचख्या, तीजे दिन चल्या।' (ख्यात)

उपर्युक्त उद्धरणों में मुनिश्री का स्वर्ग संवत् १८८७ तथा १८८८ लिखा है जो जैन (श्रावणादि क्रम) एवं विक्रम संवत् (चैत्रादिक्रम) की दृष्टि से ही लिखा गया प्रतीत होता है।

शासन प्रभाकर—भारी संत विवरण ढा० ४ गा० १३३ में लिखा—'सौ दिवस नो कीधो थोकडो।' जो लिखने की भूल है।

संत विवरणिका में मुनिश्री के पिता का नाम रतनजी एवं माता का नाम पेमांजी लिखा है पर यह ठीक नहीं है। उनकी दीक्षा मुनि रतनजी (७४) तथा साध्वी पेमाजी (६१) के साथ हुई थी अतः इसी भ्रम से लिखा गया मालूम देता है।

४. विघ्न हरण की ढाल के इन पचाक्षर—'अ भी रा शि को' में मुनिश्री का प्रथम नाम है। वहां उनकी स्मृति में लिखा है—

सखर सुधारस सारसी, वाणी सरस विशालो हो।
शीतल चंद सुहावणो, निमल विमल गुण न्हालो हो, अमोचंद अघ टालो हो।
उष्ण शीत वर्षा ऋतु समै, वर करणी विस्तारी हो।
तप जप कर तन तावियो, ध्यान अभिग्रह धारी हो, गुणता इचरज कारी हो।
सन्त घणो आगे सुण्यो, ए प्रगट्यो इण आरी हो।
प्रत्यक्ष उद्योत कियो भलो, जाणे जन-जय कारी हो, ज्यारी हूं बलिहारी हो॥
धोरी जिन शासन धुरा, अहो निशि मे अधिकारी हो।
परम दृष्टि मे परखियो, जबर विचारण धारी हो, सुजश दिशा अनुसारी हो।
प्रगट्यो ऋषि तू भारी हो॥
(विघ्न हरण ढा० गा० ३ से ६)

५. जयाचार्य के हृदय में उनका विशेष स्थान था। जिसका अनेक जगह भाव-भरा उल्लेख मिलता है—

पूर्व धारी आगन्या, एक चटक चित्त मांय।
करे [आर्भ मन मांहरोजी, वर बाली जिनराय रे॥
त्यागी वैरागी बरोजी, ओ भवसागर नो जाण।
विनय विवेक विचार में जी, तपसी महा गुणखाण रे॥
(अमी० गुण वर्णन ढा० २ गा० ५, ६)
करी शुद्ध आलोचना, घर शुभ बुद्धि विशाल।
पार पहुंचे किम पामिये, कहूं परम निधा गुण माल॥
(अमी० गुण वर्णन ढा० ५ गा० ३)
विविध अभिग्रह आदर्या रे, था मू प्रीत अपार हो।
याद आयां मन हुलसे, जाण रह्या जगतार हो॥
(अमी० गुण वर्णन ढा० ६ गा० ४)
तप कर गुणा वृष्टी बरसे रे, घोर तप गुणी कायर धड़के रे।
याद आयां हीयो मुझ हरखे रे॥
गुणवद समो गुणियाणो रे, गुण निष्पन्न नाम दिमाणो रे।
कियो पंचम आरे उजाणो॥
तसु भजन करो नरनारो रे, सर्व दुख भय भजण हारो रे।
मुनि गुण सम्पत्ति दातारो॥
तिण नै दीधो है भजन भारो रे, भाव लाय वली काढ्यो वारो रे।
ओ तो हेम तणो उपगारो॥
(हेम नवरसो ढा० ५ गा० १७ से २०)
अमीचंद कालूराम विमान कैं, विविध अभिग्रह आदर्योजी।
पंचम काल में कीधो भारी उजास कैं, एहवो गुण किम वीसरैं जी॥
(सत गुण माला ढा० ४ गा० ३०)
चिन्तामणि सुरतरु समो रे लाल, भीम अमी दुख भजन्न।
निरखत तन मन सू भग्या रे लाल, सुख पामैं सुप्रसन्न॥
(अमी० गुण वर्णन ढा० ३ गा० ६)

जयाचार्य विरचित उनके गुण वर्णन की ६ ढालें 'सत गुण वर्णन' में हैं।

६. प्राचीन अनुश्रुति के आधार से कहा जाता है कि मुनिश्री अमीचंदजी तीसरे देवलोक में गए। उनके द्वारा जयाचार्य को कई बार आभास हुए। उनको स्वयं जयाचार्य ने अपने हाथ से लिपिबद्ध कर लिया। वे पत्र पुस्तक भंडार में सुरक्षित हैं।

एक अनुश्रुति यह भी है कि वे गत जन्म में सरदारसती के पिता थे। सरदारसती को जो महाविदेह क्षेत्र आदि की बातें ज्ञात हुईं, वे इनके द्वारा हुई थी।

(१४) सं० १८८८ बीदासर में ६२ दिन का तप किया।
(१५) सं० १८८९ आमेट में ५१ दिन का तप किया।
(१६) स० १८९० उदयपुर में ११ दिन तथा पचोले आदि बहुत तप किया।
(१७) स० १८९१ पुर में अढ़ाईमासी तथा ५, ८, १२ दिन का तप किया।
(१८) स० १८९२ जयपुर में १८ दिन तथा पचोले, चोले, तेले आदि बहुत किये।

इनमें कितनी तपस्या आछ के आगार से तथा कितनी पानी के आगार से की गई है। शेषकाल में भी उन्होंने बहुत तपस्या की।

उपर्युक्त तप का विवरण जयाचार्य रचित हीर मुनि गुण वर्णन ढा० १ गा०१ से १६, शासन विलास ढा० ३ गा० ३२ की वार्तिका तथा ख्यात में है। ख्यात में ५ तथा १२ दिन के थोकड़े का एवं शासन विलास में पचोले का उल्लेख नहीं है।

कुल तप के आंकड़े इस प्रकार है

उपवास के पचोले तक बहुत बार किए।

८/२ ११/२ १२/१ १६/१ १८/१ २८/१ ३१/२ ५१/१ ५८/१ ६१/१ ६२/१ ६७/१ ७५/१ ८२/१

१२०/१ १२६/१ १३५/१ १८६/२

उपर्युक्त चातुर्मासों के गांवों की तालिका मुनिश्री जीवराजजी (८६) रचित हीर मुनि गुण वर्णन ढाल १ में है।

मुनिश्री हीरजी ने उक्त चातुर्मासों में कई चातुर्मास मुनिश्री मोजीरामजी (५४) के साथ किये थे

केतला एक चउमासा मोजीरामजी कनै कीधा, त्यां पिण बहुत जस लीधा रे।
घणो बायां भाया नै ज्ञान सीखायो, च्यारु तीर्थ में जस पायो रे॥
(हेम मुनि रचित ढा० १ गा० ७)

मुनिश्री स० १८७६, १८८१ और १८८४ से १८९२ तक किसके साथ रहे, इसका उल्लेख नहीं मिलता परन्तु उक्त—'केतला एक चउमासा मोजीरामजी कनै कीधा' पद्यानुसार हो सकता है कि वे स० १८८४ से १८९२ तक मुनि मोजीराम जी के साथ रहे हों।

५. स० १८९३ में मुनिश्री का अन्तिम चातुर्मास ऋषिराय के साथ पाली में था।

पाली सहर चौमासो कियो पूज साथो, बडी सेवा करै दिन रातो रे।
संवत् अठारै तराणुओं वरसो, जाओ हीर रो जसो रे॥
(हेम मुनि रचित गुण वर्णन ढा० १ गा० १०)

इस वर्ष संभवतः खेरवा में साधुओं का चातुर्मास था। चातुर्मास में कारण

मुनिश्री मगनलालजी की भी आखिरी समय में बड़ी तन-मन से परिचर्या की।
सातजुगी से मेरा मदर पीसाह, तन मन करता गुरु प्यार रे ॥

(हेम मुनि रचित गुण वर्णन ढा० १ गा० १)

४ मुनिश्री ने १८ चातुर्मास एवं चातुर्मासों में की गई बड़ी तपस्या का विवरण इस प्रकार है—

(१) सं० १८७५ पादरोली में आचार्यश्री भारीमालजी के साथ ११ दिन का तप किया।

(२) सं० १८७६ आमेट में ५८ दिन का तप किया।

(३) सं० १८७७ श्रीजीद्वारा में आचार्यश्री भारीमालजी के साथ आषाढ़ महीने सहित ८, ३१ और ८२ दिन का तप किया।

(४) सं० १८७८ केलवा में आचार्यश्री भारीमालजी के साथ ३१ दिन का तप किया।

(५) सं० १८७९ पाली में आचार्यश्री ऋषिराय के साथ ६७ दिन का तप किया।

(६) सं० १८८० जयपुर में आचार्यश्री ऋषिराय के साथ २४ दिन का तप किया।

(७) सं० १८८१ चीलाड़े में ६१ दिन का तप किया।

(८) सं० १८८२ पादू में आषाढ़ महीने सहित १३५ दिन का तप किया। इसी वर्ष ज्येष्ठ वदि में आचार्यश्री ऋषिराय ने तीन साधुओं को एक साथ छहमासी पचखाई थी। उनमें मुनि पीथलजी (५६) वर्धमानजी (६७) तथा एक हीरजी थे। इसका विस्तृत वर्णन मुनि पीथलजी (५६) के प्रकरण में दे दिया गया है।

(९) सं० १८८३ राजनगर में छहमासी (१८६ दिन आछ आगार से) की। आचार्यश्री रायचंदजी ने उदयपुर चातुर्मास के पश्चात् राजनगर पधार कर उनको पारणा कराया—

छमासी तप राजनगर में ठायो, रायचंद ब्रह्मचारी पारणो करायो रे।

(हेम रचित गुण वर्णन ढा० १ गा० २)

(१०) सं० १८८४ कनोड में चौमासी तप किया। संभवतः आषाढ़ महीने सहित।

(११) सं० १८८५ गोगुंदा में १८६ दिन का तप किया।

(१२) सं० १८८६ उदयपुर में ११ दिन का तप किया।

(१३) सं० १८८७ कानोड़ में १२६ दिन का तप किया।

उनसे सबन्धित विवरण निम्न स्थलों मे है

१. जयाचार्य विरचित ढा० २ सत गुण वर्णन मे।

२ मुनिश्री हेमराजजी विरचित ढा० १ प्राचीन गीतिका सग्रह मे।

३. ,, जीवराजजी ,, ढा० १ ,, ,, ,, ।

४. शासन विलास ढा० ३ गा० ३२, वार्तिका।

५. ख्यात।

६. शासन प्रभाकर—भारी सत वर्णन गा० १३५ से १४१।

वश मुनिश्री हीरजी पाली से सेरवा गये। वहां शारीरिक वेदना होने से उन्होंने तेला किया और तेले में अकस्मात् दिवंगत हो गये :

कारण पड़ियां मेहर सेरवे आया, शरीर कारण जाणी तेलो ठायो रे।
तेला में लागी परभव पोहतो, देव हुओ होसी गहगहतो॥
(हेम मुनि रचित गुण वर्णन ढा० १ गा० ११)

उनकी स्वर्ग तिथि भादवा सुदि १५ वार शनिवार है।
संवत् अठारे बाणुए हो, भाद्रवी पूनम मास।
पोहतो मुनि परलोक में हो, हीर ऋषि गुणमाल के॥
(जयाचार्य विरचित ढा० १ गा० २६)

वर्ष बराणुओं में संवत् अठारो, भाद्रवा सुध पूनम शनेसर वारो रे।
(हेम मुनि रचित ढा० १ गा० १३)

सिघ मग दिसा वर्ष निहोत्तरे, षट्मासी बे म्हारो रे।
बाणुअे तेला में परभव, हीर ऋषी गुणमालो रे॥
(शासन विलास ढा० ३ गा० ३२)

मुनि जीवराजजी कृत ढा० १ गा० १५ में उनके स्वर्ग एवं स्थान के विषय में लिखा है

'अग असाता ऊपनी रे, भाद्रवी पूनम भाल।
तेला में चलना रह्या, छेरवे मेंहर सुगाल (सुकाल)॥'

६. *जयाचार्य ने मुनिश्री के संबंध में बड़े मार्मिक पद्य लिखे हैं :*

हीर अमोलक षटमासी दोय वार के, भारीमाल प्रमतियो जी।
च्यार मास वली तप कीधो विचित्र प्रकार के, जाप जपो भवियण सदा जी॥
(संत गुण माला ढा० ४ गा० ३१)

बे वार छ मासी तप करी, इक दोय तीन च्यार मास रे।
सुवनीता सिर सेहरो, दियो भारीमाल साबास रे॥
वलभ वाणी ताहरी, वारू वचन ना सूर रे।
ऊंडी तुज आलोचना, गुण भरियो भरपूर रे॥
मुनि-वछ.ल जन-वाल हो, धर्मोद्यम चित धार रे।
महेन्द्रपति कल्प साधियो[*], मुझ नै महा हितकार रे॥
(जयाचार्य रचित-हीरमुनि गुण वर्णन ढा० २ गा० २ से ४)

मुनि हीरजी को महा तपस्वी मुनि कोदरजी का मित्र कहा है :

बड़ तपसी कोदर तणो हो, मित्र हीर हद धार।
दोनूं ऋष गुण आगला, कहिता न लहै पार॥
(जय रचित-हीर मुनि गुण० ढा० १ गा० २४)

---

[*] इस पद्य से लगता है कि मुनिश्री चौथे देवलोक में उत्पन्न हुए।

मिला एक सज्जन वहां करता शिक्षा-दान।
मोती के पुरुषार्थ से फले सभी अरमान ॥१५॥

गेय-छन्द

राम स्नेही 'कृपाराम' मोती को कहता निष्काम।
मुनि बनने को तूं तैयार, फिर क्यों सजता है शृंगार ॥१६॥
बढ़िया पगड़ी मस्तक पर, तन पर भूषण पट मनहर।
पहन मूंगियों की माला, लगता वर सम छवि वाला ॥१७॥
कोमल वय यह कुसुमोपम, जैन साधना पथ दुर्गम।
कैसे दें अनुमति घर के, स्नेह भाव को तजकर के ॥१८॥
करो एक तुम पहले काम, जो पाना है संयम धाम।
दूर करो पगड़ी को अब, वस्त्राभरण उतारो सब ॥१९॥
साधु रूप कर खावो मांग, स्वीकृति देंगे देख विराग।
वरना मुश्किल सम्मति दान, ज्ञातिजनों का मोह महान् ॥२०॥
धारा मोती ने मुनि वेष, मांग-मांग खा रहा हमेश।
किंतु जनक का कठिन स्वभाव, जिससे दिन-दिन अधिक तनाव ॥२१॥
देख मांगते नंदन को, द्वेष हुआ पैत्रिक जन को।
जकड़ पकड़ लाये घर पर, डाला बेड़ी में द्रुततर ॥२२॥
एक मास बेड़ी मे बंद, पर मोती के भाव न मंद।
देख रहा वह तो अवसर, कब इससे निकलूं बाहर ॥२३॥

रामायण-छन्द

मंडा तमाशा वहां एक दिन घर के गये देखने सब।
अवसर पाकर मोती ने पत्थर से बेड़ी तोडी तब।
निकला बाहर मांग-मांग कर साधु वेष में खाता है।
पुनरपि जकड़ पकड कर लाये पर वह नहीं अघाता है ॥२४॥
पटक पछाड़ा चबूतरे मे पथ मे खूब घसीटा है।
मानों मलयज को सांपों ने कर फूंकारें वीटा है।
मोती ने सोचा तब मन मे ऐसे तो न फलेगा आम।
घर की रोटी खाऊं प्रतिदिन नही करूं कर से कुछ काम ॥२५॥
वही मार्ग अपनाया उसने रोटी खाता है भर पेट।
नही लगाता हाथ काम के बैठा रहता बन ज्यों सेठ।

## ७७।२।२८ मुनि श्री मोतीजी 'बड़ा' (सींवास)

(सयम पर्याय स० १८७४-१८२६)

लय—कैसी चंपापुर मांहि लागी रंगरली…

कैसी मोती की जगमगती ज्योति निखरी साकार।
निखरी साकार मूल्य बढा है अपार।कैसी…॥ध्रु व॥
गगन में बादलों का तना नव छत्र।
शरद् ऋतु साथ मिला स्वाति वर नक्षत्र।
गिरी शुक्ति मुख में बूंद मोती बना है उदार॥१॥
शासन है सिन्धु शासनेश - सीप रूप।
शिष्य जल बिन्दु योग मिला अनुरूप।
पाया मुक्ता छवि स्वच्छ लाया जागृत सस्कार॥२॥

छप्पय

मोती के पुरुषार्थ से फले सभी अरमान।
जले अमित उत्साह से मंगल दीप महान्।
मंगल दीप महान् ध्यान तो एक लगाया।
दृढ़ निष्ठा सकल्प लक्ष्य तो एक बनाया।
सिद्ध हुई विद्या सभी मिले बड़े वरदान।
मोती के पुरुषार्थ से फले सभी अरमान॥३॥
वासी थे सीवास के मरुधरणी के लाल।
जनक मेघ कुल-गोत्र से सालेचा सुविशाल।
सालेचा सुविशाल मूलत. स्थानकवासी।
नहीं धर्म का बोध पोध तो बिल्कुल प्यासी।
थी दक्षिण की तरफ मे चाचा की दूकान।
मोती के पुरुषार्थ से फले सभी अरमान॥४॥

मिला एक सज्जन वहां करता शिक्षा-दान।
मोती के पुरुषार्थ से फले सभी अरमान ॥१५॥

### गेय-छन्द

राम स्नेही 'कृपाराम' मोती को कहता निष्काम।
मुनि बनने को तूं तैयार, फिर क्यों सजता है शृगार ॥१६॥
बढ़िया पगड़ी मस्तक पर, तन पर भूषण पट मनहर।
पहन मुणियों की माला, लगता वर सम छवि वाला ॥१७॥
कोमल वय यह कुसुमोपम, जैन साधना पथ दुर्गम।
कैसे दें अनुमति घर के, स्नेह भाव को तजकर के ॥१८॥
करो एक शुभ पहले काम, जो पाना है संयम धाम।
दूर करो पगडी को अब, वस्त्राभरण उतारो सब ॥१९॥
साधु रूप कर खावो माग, स्वीकृति देंगे देख विराग।
वरना मुश्किल सम्मति दान, ज्ञातिजनों का मोह महान् ॥२०॥
धारा मोती ने मुनि वेष, माग-माग खा रहा हमेश।
किंतु जनक का कठिन स्वभाव, जिससे दिन-दिन अधिक तनाव ॥२१॥
देख मांगते नदन को, द्वेष हुआ पैत्रिक जन को।
जकड़ पकड लाये घर पर, डाला वेडी में द्रुततर ॥२२॥
एक मास बेडी में बद, पर मोती के भाव न मद।
देख रहा वह तो अवसर, कब इससे निकलू बाहर ॥२३॥

### रामायण-छन्द

मडा तमाशा वहा एक दिन घर के गये देखने सब।
अवसर पाकर मोती ने पत्थर से बेड़ी तोडी तब।
निकला बाहर माग-माग कर साधु वेष मे खाता है।
पुनरपि जकड पकड कर लाये पर वह नहीं अघाता है ॥२४॥
पटक पछाडा चबूतरे से पथ मे खूब घसीटा है।
मानो मलयज को सांपों ने कर फूकारें वीटा है।
मोती ने सोचा तब मन मे ऐसे तो न फलेगा आम।
घर की रोटी खाऊं प्रतिदिन नही करू कर मे कुछ काम ॥२५॥
वही मार्ग अपनाया उसने रोटी खाता है भर पेट।
नही लगाता हाथ काम के बैठा रहता बन ज्यों सेठ।

मुख से रहा निकाल निशा में खाना खाता।
नही पाप से भीत गीत समम के गाता।
गुन दोनों का कर दिया तत्क्षण त्याग महान्।
मोती के पुरुषार्थ से फले सभी अरमान ॥१०॥

दिन दिन बढ़ती भावना निश्चल एक विचार।
काके ने थककर विदा दी है आखिरकार।
दी है आखिरकार किया मुख पितृ-दिशा में।
चलता नंगे पैर अशन जल नही निशा में।
वय से सोलह साल का पर तन मन बलवान।
मोती के पुरुषार्थ से फले सभी अरमान ॥११॥

कोश तीन सौ की सफर कर मोती गुविशाल।
पहुंचा पाली शहर में भेंटे भारीमाल।
भेंटे भारीमाल प्रथम संतों के दर्शन।
चरण मुझे दें नाथ! किया है नम्र निवेदन।
सुनकर कथा विचित्र सब दिया सुगुरु ने ध्यान।
मोती के पुरुषार्थ से फले सभी अरमान ॥१२॥

एक रात्रि रहकर वहां पहुचा अपने ग्राम।
भेजा गुरु ने हेम को चिंतन कर अभिराम।
चिंतन कर अभिराम श्रमण चलकर के आये।
मोती के घर एक वेदिका पर ठहराये।
समभावों से हेम ने सहे कटुक वच-बाण।
मोती के पुरुषार्थ से फले सभी अरमान ॥१३॥

एक महीना तक रहे शांति-मूर्त्ति मुनि हेम।
तत्वज्ञान सिखला दिया मोती को सक्षेम।
मोती को सक्षेम किया मजबूत अधिकतर।
पर सब स्वजन खिलाफ बाप की प्रकृति विषमतर।
दीक्षा स्वीकृति के लिए मचा रहे तूफान।
मोती के पुरुषार्थ से फले सभी अरमान ॥१४॥

गांव खिवाड़ा आ गये मुनि श्री दे प्रतिबोध।
मोती आता प्रायशः सेवा में धर मोद।
सेवा मे धर मोद लाभ तो लेता अच्छा।
कब पाऊं चारित्र मित्र जो मेरा सच्चा।

वज्रोपम सीना किया, वय से चाहे बाल।
सार्थ हुआ पुरुषार्थ सब, मिली विजय-वरमाल'॥३४॥

छप्पय

विनयी सरल स्वभाव से पाप भीरु अणगार।
मुनिचर्या मे सजगता रखते थे हरवार।
रखते थे हरवार प्रकृति कुछ सशय वाली।
मिला 'जीत' का योग रोग की टूटी डाली।
सूत्र-रहस्यों का बडा करवाया है ज्ञान'।
मोती के पुरुषार्थ से फले सभी अरमान॥३५॥
चर्चाए धारी विविध कर-कर विनय विशेष।
बहुश्रुती मुनि बन गये रख गुरु को अग्रेश।
रख गुरु को अग्रेश विवेकी गुणी बनाये।
मिला 'शाति' सहवास योग्यता तरु लहराये'।
जयाचार्य ने अग्रणी पद तो दिया प्रधान।
मोती के पुरुषार्थ से फले सभी अरमान॥३६॥
काम बोझ बवशीश कर दिया उन्हे बहुमान।
'बेटी का सा खर्च है' कहते जय साह्वान'।
कहते जय साह्वान स्थान तो दिया हृदय मे।
विचरे मुनि बहु वर्ष लिया यश जन-समुदय मे।
मिल पाये कुछ खोज से चातुर्मासिक स्थान'।
मोती के पुरुषार्थ से फले सभी अरमान॥३७॥
उपवासादिक तप बहुत ऊपर सैतालीस।
इन्द्रिय-निग्रह विरति का तिलक लगाया शीश।
तिलक लगाया शीश शीत में सर्दी सहते।
गर्मी मे सह ताप पाप दल हरते रहते।
लिए आत्म-उत्थान के खोले बहु अभियान'।
मोती के पुरुषार्थ से फले सभी अरमान॥३८॥
पावस पचपदरा किया पच श्रमण सहकार।
शक्ति चरम वय मे घटी जिससे रुका विहार।
जिसमे रुका विहार त्रिवेणी मुनि की आई।
कर-कर सेवा भक्ति शान्ति उनको पहुचाई।

भरता नही सलिल का लोटा बच्चों का भी तनिक न ध्यान।
नही रोकता पशुओं को भी चाहे हो कितना नुकसान ॥२६॥
कहा तात ने कुछ भी कर तू बारह वर्ष न आज्ञा-दान।
खैर! पिताजी मैं पीछे ही कर लूंगा संयम रस पान।
पर न रहूंगा घर में हरगिज मेरा दृढ़तम है संकल्प।
बीता डेढ़ साल बातों में फिर भी फलित न निकला अल्प ॥२७॥
मोती ने फिर सोचा-अनुमति मां भी दे तो लूं सयम।
वरना इसी तरह ही रहना करना कार्य न अटल नियम।
समयान्तर से आशा टूटी तब कागद आज्ञा का लिख।
दिया बाप ने मोती कर में हर्ष हुआ उसको सात्त्विक ॥२८॥
सोते समय रात्रि मे मा ने गुपचुप उसे निकाला है।
प्रातः पत्र न देखा तब तो सुरक्षित मुक्ता माला है।
नही मांगने पर मां देती तब चिंतन कर हित कारक।
गोगुंदा जाकर की सेवा हेम श्रमण की कुछ दिन तक ॥२९॥

### दोहा

वापस घर पर आ गया, रखता भावोत्कर्ष।
रहता पहले की तरह, निकल गया फिर वर्ष ॥३०॥
एक दिवस आक्रोश में, लिखकर आज्ञा पत्र।
दिया तात ने नद को, मिटा द्वंद्व उभयत्र ॥३१॥

### छप्पय

मोती निकला गेह से ऋषि जवान के पास।
भिक्षुनगर जाकर त्वरित ली दीक्षा सोल्लास।
ली दीक्षा सोल्लास चहोत्तर सवत् गाया।
धृति बल से कैलाश शिखर पर वह चढ़ पाया।
वर्ष अढ़ाई से फला भाग्योदय-उद्यान।
मोती के पुरुषार्थ से फले सभी अरमान ॥३२॥

### दोहा

दीक्षा स्वीकृति के लिए, सहे अनेकों कष्ट।
है गण के इतिहास में, उदाहरण उत्कृष्ट ॥३३॥

१. मुनिश्री मोतीजी का निवास स्थान मारवाड़ प्रदेश मे सीवास (सीहवास) नामक ग्राम मे था। उनकी जाति ओसवाल (बडा साजन) गोत्र सालेचा बोहरा एव पिता का नाम मेघराजजी था। वे स्थानकवासी सम्प्रदाय के अनुयायी थे।[1]

दक्षिण प्रदेश मे मोतीजी के चाचा की दुकान थी। मोतीजी बाल्यावस्था मे वाणिज्य कार्य सीखने के लिए उनके पास रहने लगे। क्रमश कुछ समय व्यतीत हुआ। एक दिन मोतीजी बाजार से बैंगन लेकर आ रहे थे। रास्ते मे एक स्थानकवासी श्रावक अपनी दुकान पर बैठा था। उसने मोतीजी को पास मे बुलाकर कहा—'हरियाली मे बैंगन बहुत बीज वाले होने के कारण श्रावक के लिए वर्जनीय होते हैं अत तुम्हें छोड देना चाहिए।' मोतीजी ने सोच-समझकर आजीवन बैंगन खाने का तथा कुछ अन्य सब्जी का भी परित्याग कर दिया। घर आने पर उनके चाचा को पता चला तो उन्होने मोतीजी को डाट लगाते हुए कहा—'तुमने बैंगन खाने का त्याग क्यों किया, तुम्हारे से यह नियम कैसे निभ सकेगा?' मोतीजी ने सोचा—'जब ये इस प्रकार झगडा करते हैं तो मुझे दृढता का परिचय देना चाहिए।' उन्होंने तत्क्षण यावज्जीवन समग्र हरियाली खाने का प्रत्याख्यान कर दिया।[2]

शनै शनै. मोतीजी के मन मे धर्म भावना जागृत होने लगी। वे उक्त स्थानकवासी श्रावक के पास सामायिक करने लगे। मोतीजी को सामायिक लेने की विधि नही आती थी अत वह श्रावक ही सामायिक दिलाता था। इस प्रकार प्रतिदिन सामायिक के लिए जाते हुए देखकर चाचा का रोष उमड़ने लगा और एक दिन बोला—'अरे मोती! तू दुकान का काम तो नहीं करता है और वहां जाकर मुह बाधकर बैठ जाता है।' इस प्रकार चाचा बार-बार रोकथाम करता और मोतीजी के प्रति मन मे द्वेष भावना रखने लगा। तब मोतीजी ने गहराई से चिंतन किया कि जब ये निरतर धर्म-ध्यान मे बाधक बनते हैं तो अब मुझे सयम ही ग्रहण कर

---

१. वासी 'सीवा' ग्राम नो, मेघ सुतन सुविधान।
बड़ मोती महिमानिलो, उत्तम जीव सुजान॥
सालेचा बोहरा भली, जाति तास अवधार।
ओसवश मे अवतर्‌यो, बडै साजन सुविचार॥
धर्म माहि समझै नहीं, सत न सेव्या कोय।
भेषधार्‌या रा जोग सू, तमु गुरु कीधा सोय॥
(मोतीचद पचढालियो ढा० १ दो० १ से ३)

२. तब मोती मन माहि विचार्‌यो, झगडो कीधो काकै।
आवजीव नीलोती सहु ना, कीधा त्याग झडाकै रे॥
(मोती० पचढालियो ढा० १ गा० ६)

गया और रात पड़ गई। मोतीजी जन-समूह की पंक्ति में बैठकर भोजन करने लगे। अकस्मात् एक व्यक्ति की दृष्टि उन पर पड़ी और बोला—'मोती! इधर तो तू साधु बनने जा रहा है और इधर निशा में खाने का भी संकोच नहीं करता।' मोतीजी ने तपाक से परोसे हुए भोजन को छोड़ा और आजीवन रात्रि में चारों प्रकार का आहार करने का प्रत्याख्यान कर दिया।[1]

चाचा ने मोतीजी को विचलित करने के लिए अनेक उपाय किये पर वे सफल नहीं हुए। आखिर थक कर उन्होंने कहा—'तुम अपने देश माता-पिता एवं भाई के पास चले जाओ। मैं तो तुमसे पूरा परेशान हो गया हूं।'[2]

मोतीजी ने सानंद वहां से विदा ली और आगे की मंजिल तय करने लगे। सोलह वर्ष की बालक वय, पैदल नंगे पैर चलना, रात्रि में कुछ खाना-पीना नहीं, फिर भी उनके दिल में किसी भी प्रकार की दुर्बलता व खिन्नता नहीं थी। वे क्रमशः लगभग तीन सौ कोश चलकर पाली पहुंचे और वहां विराजित तेरापंथ के द्वितीयाचार्य श्री भारीमालजी आदि साधुओं के दर्शन किये। अपना पूर्व वृत्तान्त सुनाते हुए अपनी दीक्षा लेने की प्रबल इच्छा को अभिव्यक्त किया। घटना सुनकर आचार्यप्रवर आदि सभी संतों को आश्चर्य हुआ और उनके साहस की सराहना की। वे वहां एक रात्रि प्रवास कर सुबह रवाना हुए और अपने गांव में आकर माता-पिता भाई, बुआ आदि पारिवारिक जनों से मिले एवं सारी हकीकत कह सुनाई।[3]

---

1. जीमणवार में निश भोजन करतां, कोयक जन भाखं।
   चरण लेण नै त्यार थयो छ, वलि निश भोजन चाखं॥
   ए लोक मों वचन सुणी नै, मोती तुरत उमगं।
   निश में च्यार आहार भोगवण रा, त्याग किया चित चगं।
   (मोती० पच० ढा० १ गा० २२, २३)

2. काको थाको कहै मोती नै, थे निज देशे जावो।
   तुज मात पिता बंधव रै आगे, तिण मोनै क्यूं सतावो रे॥
   (मोती० पच० ढा० १ गा० २५)

3. तब मोती दक्षिण थकी चालियो, पग अलवाणें ताह्यो।
   चौविहार वलि रात्रि विषै पिण, मन में नहीं तमाह्यो रे॥
   (मोती० पचढालियो ढा० १ गा० २६)

   आसरै कोस तीन सौ रह विच, आयो पाली मांह्यो।
   तिहां भारीमालजी आदि संता रा, दर्शण मोती पायो रे॥
   सोलह वर्ष आसरै वय तसु, दिल में अति वैरागो।
   कहै हूं दिक्ष्या लेसूं स्वामी, घर रहिवा मन भागो रे॥
   (मोती पचढालियो ढा० १ गा० २७, २८)

   इम कही निशि रही तिहां थी चाल्यो, 'सोहा' गामे आवै।
   मात पिता बंधव भूआ नै, समाचार समझावै रे॥
   (मोती० पचढालियो ढा० १ गा० २९)

लेना चाहिए।' दृढ़ निर्णय कर मोतीजी ने अपने दीक्षा के विचार लोगों में प्रकट कर दिये। यह सुनकर अनेक व्यक्ति उन्हें डिगाने का प्रयास करने लगे पर वे किंचित् मात्र भी विचलित नहीं हुए। वहां कुछ मारवाड़ी तेरापंथी भाई भी रहते थे। उन्होंने मोतीजी से कहा—'यदि तुम दीक्षा लेना चाहते हो तो तेरापंथ में लो, क्योंकि जितना तेरापंथी साधु दृढ़ता से आचार-विचार का सम्यक् पालन करते हैं उतना अन्य सम्प्रदाय के नहीं करते।' मोतीजी के एक बार तो यह बात नहीं जची, लेकिन विविध प्रकार से उन्हें समझाया गया तो वे तेरापंथ में ही दीक्षित होने के लिए दृढ़ संकल्प हो गये। मोतीजी बड़े हलुकर्मी जीव थे जिससे उन्हें आगे से आगे अच्छा सुयोग प्राप्त होने लगा।

एक बार वहां किसी के यहां जीमनवार था। आमंत्रित करने पर मोतीजी भी घोड़े पर चढ़कर उसके घर जाने के लिए रवाना हुए। राह में किसी व्यक्ति ने व्यंग कसते हुए कहा—'देखो! यह दीक्षा लेने के लिए तो तैयार हुआ है और घोड़े पर चढ़ा हुआ घूमता है।' यह सुनकर मोतीजी को तीर-सा लग गया और तत्काल हय से नीचे उतर कर जीवन पर्यंत किसी भी सवारी पर चढ़ने का त्याग कर दिया।[2] मोतीजी पैदल चलते हुए कुछ आगे बढ़े तो फिर एक भाई बोला—'यह परदेशी साधुत्व लेने के लिए उत्सुक हुआ है और अभी तक पैरों में जूते पहनता है।' कानों में शब्द पड़ते ही मोतीजी ने जूते खोले और हमेशा के लिए जूते पहनने का परिहार कर दिया।[3] भोज-स्थान पर पहुचते-पहुचते सूर्यास्त हो

१. तब मोती चितै ए देवै, धर्म तणी अतरायो।
तो हिवै मुझ नैं संजम लेणो, नहिं रहिणो घर माह्यो रे॥
(मोती० पचढ़ालियो ढा० १ गा० १०)

२ अश्व जाति ऊपर बैसी नैं, मोती पिण तिण वारो।
जीमणवार विषै जीमण नैं, जावै छै जिहवारो॥
किण ही लोक कह्य तिण अवसर, ए जावै इहवारी।
दिख्या लेवा त्यार थयो छै, वलि हय नी असवारी॥
ए वचन मोती साभल नैं, हय थी तुरत उतरियो।
जावजीव सहू असवारी ना, त्याग किया गुणदरियो।
(मोती० पच० ढा० १ गा० १७ से १६)

३ किणहिक जन वलि इह विध आख्यू, ए चारित्र लियै विदेशी।
पिण पग माहि पानही पहिरै, ए स्यू चारित्र लेसी रे॥
इम सुण मोती जेह पानही, पग थी तुरत उतारी।
जावजीव पगरखी केरण, त्याग किया तिहवारी रे॥
(मोती० प० ढा० १ गा० २०, २१)

दीक्षा की आज्ञा नहीं दी। उनके पिता की प्रकृति अच्छी नहीं थी और वे समझाने से समझने वाले भी नहीं थे।

दीक्षा होने के कोई आसार नजर नहीं आये तब मुनिश्री हेमराजजी छाँवाड़ा से विहार कर गये। मोतीजी पीछे से मांग-मांगकर खाते रहे तथा अपने दृढ़-संकल्प पर डटकर दीक्षा-स्वीकृति के लिए प्रयत्न करने लगे।

मोतीजी को इस तरह मांगते हुए देखा तो घर वाले कुपित हो गये। एक दिन जबरन पकड़कर मोतीजी को घर ले आये और उनके पैरों में बेड़ी डाल दी। उनका चलना-फिरना बिल्कुल बन्द हो गया। एक महीने तक वे बेड़ी से बंधे रहे पर उनकी भावना ज्यों-की-त्यों बनी रही। वे धैर्यतापूर्वक समय की प्रतीक्षा करने लगे।[1]

एक दिन उस गाँव में बाजीगर आये और नाना प्रकार के खेल दिखाने लगे। अनेक लोग देखने के लिए एकत्रित हो गये। मोतीजी के घर वाले भी वहां पहुंच गये। पीछे से अवसर पाकर मोतीजी ने एक बड़े पत्थर से बेड़ी को तोड़ डाला। शीघ्रातिशीघ्र घर से बाहर निकलकर पहले की तरह साधु-वेष में मांग-मांगकर खाने लगे। वापस आने पर घर वालों को पता लगा तो वे पुनः मोतीजी को पकड़ने की चेष्टा करने लगे। बहुत दिनों के बाद पिता आदि उन्हें फिर पकड़-कर ले आये और विविध प्रकार की यातनाएं देने लगे। एक दिन ऊंचे चबूतरे से गिराया और जमीन पर घसीटा। फिर भी मोतीजी मेरु की तरह अडोल रहकर हंसते-हंसते कष्टों को झेलते रहे। उनके मन में किसी प्रकार का उच्चा-वच भाव नहीं आया। फिर उन्होंने गहराई से चिंतन किया कि इस प्रकार मांग-मांगकर खाने से परिवार वाले मुझे आज्ञा दे देंगे इसकी मुझे संभावना नहीं लगती। अब तो मुझे ऐसा करना चाहिए कि घर की रोटी खाना और घर का काम किंचित् मात्र भी नहीं करना, जिससे परेशान होकर पिताजी आदि आज्ञा प्रदान कर देंगे।

तत्पश्चात् मोतीजी ने ऐसा ही किया। वे खाना तो घर का खाते और घर का काम बिल्कुल नहीं करते। केवल घर में यम की तरह जमे हुए बैठे रहते। न पानी का लोटा भरना, न बालकों को खिलाना, न घर में घुसे हुए अन्य पशुओं

---

१. मोती खावै मांग नै, तब कोप्या घर का ताहि।
पकडी नैं आण्या तदा, घाल्यो बेड़ी मांहि॥
एक मास रै आसरै, रह्योज बेड़ी बंध।
पिण चढ़ता परिणाम अति, मोती तणां सुमंध॥
(मोती० पच० ढा० ३ दो० १, २)

भारीमालजी स्वामी ने समुचित अवसर देखकर मुनि हेमराजजी, जीतमलजी आदि साधुओं को मोतीजी को दीक्षित करने के लिए 'सीवाण' भेजा। मुनि श्री गुरु-आदेश को शिरोधार्य कर वहां पहुंचे और आज्ञा लेकर मोतीजी के घर पर ही एक चबूतरे पर ठहरे। साधुओं को देखकर मोतीजी की बुआ उत्तेजित होकर अनर्गल वचन बोलने लगी। मुनिश्री ने पूर्ण खामोशी रखी। कुछ दिन वहां ठहर कर मोतीजी को तात्त्विक ज्ञान सिखाया और साधुओं के आचार-विचार की गतिविधि बतलायी। मोतीजी पूर्ण रूप से परिपक्व हो गये। उन्होंने घर वालों से दीक्षा की अनुमति मांगी तब वे बिलकुल इन्कार हो गये। उस समय जब दीक्षा होने की संभावना नहीं रही तब मुनिश्री वहां से विहार कर एक कोश की दूरी पर खीवाड़ा ग्राम में आ गये।[1] मोतीजी के दिल में ऐसा मजीठी रंग चढ़ा था कि जो कभी उतरने वाला नहीं था। वे प्रतिदिन मुनिश्री के दर्शनार्थ खीवाड़ा जाते और सेवा, व्याख्यान-श्रवण, अध्ययन आदि का लाभ लेते।

खींवाड़ा में रामसनेही—मतानुयायी कृपारामजी नाम के राजमान्य व्यक्ति रहते थे। उन्होंने मोतीजी की दीक्षा विषयक बात को सुनकर एक दिन उनसे कहा—'मोती! इधर तो तू दीक्षा के लिए उद्यत हुआ है और इधर सिर पर बढ़िया पगड़ी, शरीर पर अच्छे कपड़े और गले में मणियों की माला पहनकर वर-राजा की तरह सजधज कर रहता है। तब घर वाले दीक्षा की स्वीकृति कैसे दे सकते हैं? यदि तुम्हें दीक्षा ही लेनी है तो कुछ दिन साधु का वेष पहनकर मांग-मांगकर खाओ जिससे वे सुगमतया अनुमति प्रदान कर देंगे।

मोतीजी को उनकी बात जच गयी और उन्होंने गहने-कपड़े उतारकर साधु का वेष पहना और मांग-मांगकर खाने लगे। ऐसा करने पर भी घर वालों ने

---

१. भारीमालजी तिण समय, चारु करी विचार।
दिख्या देवा म्हेलिया, हेम भणी तिणवार।
हेम जीत मुनि आदि दे, आया 'सीवा' ग्राम।
मोती रै घर चोतरो, तिहां उत्तरिया ताम॥

(मोती० पच० ढा० २ दो० १, २)

तब भूआ आवी करी, अगल डगल बहु वाय।
उतावली बोली घणी, पिण हेम तणै न तमाय॥

(मोती० पच० ढा० २ दो० ३)

मोती नैं सीखावियो, आपणपो बहु ताय।
पछै 'खीमारै' आविया, हेम महामुनिराय॥

(मोती० पच० ढा० २ दो० ४)

मुनिश्री हेमराजजी ने उस चातुर्मास में एक नियम बनाया कि गृहस्थ के सम्मुख किन्हीं साधुओं मे आवेशवश बोलचाल हो जाए तो उन दोनों को एक महीने छहों विगय का वर्जन करना होगा। एक दिन मोतीजी ने दो साधुओं को उत्तेजित होकर बोलते हुए देखकर मुनिश्री हेमराजजी से कहा तो मुनिश्री ने दोनों को एक महीने तक विगय वर्जन का आदेश दिया।

मोतीजी कुछ दिन मुनिश्री की उपासना कर वापस अपने गाव आ गए। पहले की तरह ही रहने लगे। फिर एक वर्ष लगभग और निकल गया। घर वाले सब हैरान हो गए पर मोतीजी अपने निर्णय पर डटे रहे। आखिर एक दिन पिता ने रोष मे आकर आज्ञा का कागद लिखकर मोतीजी को दे दिया[1]।

वे उसे लेकर तुरत रवाना हुए और १२ कोश चलकर कटालिया पहुचे। वहां मुनिश्री जवानजी (५०) के पास सं० १८७४ के ग्रीष्मकाल (सभवत जेठ, आषाढ) में चारित्र ग्रहण किया। लगभग अढाई वर्ष उन्हें आज्ञा लेने मे लगे पर अंत मे उनकी भावना फलवती हो गई[2]। कहा भी है—

'उद्योगिन पुरुषसिंहमुपैतिलक्ष्मी' अर्थात् जो व्यक्ति पुरुषार्थी होता है उसके गले मे स्वयं लक्ष्मी वरमाला पहनाती है।

तेरापथ मे अत्यधिक कष्टों को झेलकर दीक्षित होने वालों में साध्वी समाज में तो साध्वीप्रमुखा सरदारांजी और साधुओं में मुनिश्री मोतीजी का उत्कृष्ट उदाहरण है।

(मोती० पच० ढा० १ से ४ के गा० १३ तक के आधार से)

२. मुनिश्री मोतीजी बड़े विनयी, पापभीरु, आचार-विचार मे कुशल और

---

१. घर को काम करैं नहीं, पिण आज्ञा दें नाहि।
एक वर्ष रै आसरै, इम वलि निकल्यो ताहि॥
एक दिवस मोती रो तात, आयो रीस में अधिक विख्यात।
कहै मोती नै आम, तोनैं कागद लिख देउं ताम।
इम रीस वसै अवलोय, आज्ञा रो कागद सोय।
निज जनक लिखी नैं दीधो, मोती रो कार्य सीधो॥

(मोती० पच० ढा० ४ गा० ६ से ११)

२. तुरत मोती तिहां थी नीकल्यो, सेहर 'कटाल्या' माय।
जवान ऋषि ना दर्शण करी, चरण लियो सुखदाय॥
वर्ष अढ़ाई रै आसरैं, आज्ञा लेतां ताय।
चिमंतरे चारित्र लियो, पायो हरष अथाय॥

(मोती० पंच० ढा० ४ गा० १२, १३)

को बाहर निकालना और न किसी प्रकार का नुकसान हो तो कहना।'

घर वाले सारी स्थिति देखते रहे और मन-ही-मन आक्रोश करते रहे। एक दिन पिता ने मोतीजी से कहा—'मैं तुम्हे बारह वर्ष तक तो आज्ञा दूंगा नही।' मोतीजी बोले—'खैर! तेरहवें वर्ष मे ही आप मुझे आज्ञा देंगे तब ही चारित्र स्वीकार करूंगा पर घर मे तो हरगिज नही रहूंगा।' फिर लगभग ऐसी ही गतिविधि मे डेढ़ साल और बीत चुका पर मोतीजी के विचार तो लोह-शरीर समान सुदृढ रहे।

एक दिन फिर मोतीजी ने सोचा यदि माता भी आज्ञा दे तो मुझे संयम से लेना है और माता-पिता दोनो ही जीवन-पर्यंत आज्ञा न दें तो मुझे निरन्तर इसी प्रकार रहना (घर की रोटी खाना और काम न करना) है।

फिर कुछ दिन और व्यतीत हो गये। पिता ने जब मोतीजी की वही स्थिति देखी तब उनकी आशा टूट गयी और उन्होंने आज्ञा का कागद लिखकर मोतीजी के हाथ मे दे दिया। मोतीजी प्रसन्न हुए और दूसरे दिन दीक्षा लेने के लिए मुनियों के पास जाने का सोचा। पर 'श्रेयांसि बहु विघ्नानि' उक्ति के अनुसार जब वे रात्रि मे शयन कर रहे थे तब उनकी माता ने प्रच्छन्न रूप से उस पत्र को निकाल लिया। सुबह होते ही कागद नहीं देखा तो मोतीजी चिन्तातुर हुए। उन्होंने माता से कागद मांगा तो वह देने के लिए इन्कार हो गयी।

मोतीजी ने सोचा—लगता है कि अब तक मेरे चारित्र-मोहनीय कर्म का पूरा क्षयोपशम नही हो पाया है किन्तु मुझे हताश न होकर प्रयत्न करते रहना चाहिए। उन्होंने उस समय मुनिश्री हेमराजजी के दर्शन करने का निश्चय किया। उनका उस वर्ष चातुर्मास गोगुंदा (मेवाड) था। वे पैदल चलकर वहां पहुंचे और मुनिश्री आदि साधुओं के दर्शन कर अत्यधिक हर्ष-विभोर हुए। सारी घटना मुनिश्री के सम्मुख प्रस्तुत की और कुछ दिन सेवा मे रहे।

---

१. घर की रोटी खावूं सदा, न कछु काम लिगार।
इम जो मनरा धारो हुवे, तो आज्ञा देवै सार॥
तड़की करै विचारणा, रोटी घर की खाय।
किंचित काम करै नहीं, बैठो जम ज्यूं ताय॥
मांगे जम की मरै नहीं, घरका अर्थ ताम।
वनि बालक राखै नहीं, इत्यादिक बहु काम॥
घर मे झाड़ा बाकना, बाहिर काई नाहि।
उबार देवै घर तणा, ते दिन न कहे नाहि॥
(मोती० चव० ढा० ३ गा० १ से ६)

को बाहर निकालना और न किसी प्रकार का नुकसान हो तो कहना।'

घर वाले सारी स्थिति देखते रहे और मन-ही-मन आक्रोश करते रहे। एक दिन पिता ने मोतीजी से कहा—'मैं तुम्हें बारह वर्ष तक तो आज्ञा दूंगा नहीं।' मोतीजी बोले—'खैर! तेरहवें वर्ष में ही आप मुझे आज्ञा देंगे तब ही चारित्र स्वीकार करूंगा पर घर में तो हरगिज नहीं रहूंगा।' फिर लगभग ऐसी ही गतिविधि में डेढ़ साल और बीत चुका पर मोतीजी के विचार तो लोह-सरीर समान सुदृढ़ रहे।

एक दिन फिर मोतीजी ने सोचा यदि माता भी आज्ञा दे तो मुझे संयम ले लेना है और माता-पिता दोनों ही जीवन-पर्यंत आज्ञा न दें तो मुझे निरन्तर इसी प्रकार रहना (घर की रोटी खाना और काम न करना) है।

फिर कुछ दिन और व्यतीत हो गये। पिता ने जब मोतीजी की वही स्थिति देखी तब उनकी आशा टूट गयी और उन्होंने आज्ञा का कागद लिखकर मोतीजी के हाथ में दे दिया। मोतीजी प्रसन्न हुए और दूसरे दिन दीक्षा लेने के लिए मुनियों के पास जाने का सोचा। पर 'श्रेयांसि बहु विघ्नानि' उक्ति के अनुसार जब वे रात्रि में शयन कर रहे थे तब उनकी माता ने प्रच्छन्न रूप से उस पत्र को निकाल लिया। सुबह होते ही कागद नहीं देखा तो मोतीजी चिन्तातुर हुए। उन्होंने माता से कागद मांगा तो वह देने के लिए इन्कार हो गयी।

मोतीजी ने सोचा—लगता है कि अब तक मेरे चारित्र-मोहनीय कर्म का पूरा क्षयोपशम नहीं हो पाया है किन्तु मुझे हताश न होकर प्रयत्न करते रहना चाहिए। उन्होंने उस समय मुनिश्री हेमराजजी के दर्शन करने का निश्चय किया। उनका उस वर्ष चातुर्मास गोगुंदा (मेवाड़) था। वे पैदल चलकर वहां पहुंचे और मुनिश्री आदि साधुओं के दर्शन कर अत्यधिक हर्ष-विभोर हुए। सारी बातें मुनिश्री के सम्मुख प्रस्तुत की और कुछ दिन सेवा में रहे।

---

१. घर की रोटी खावू सदा, न करू काम लिगार।
इम ग्रा ग्रहण कर्या हुवै, मा आज्ञा देवै सार॥
तस्यो करै विचारणा, रोटी घर की खाय।
किंचित काम करै नहीं, बैठो जम ज्यूं ताय॥
अन्यो जन की करै नहीं, चरचा अर्थ ताम।
धंध व्यापक तांई नहीं, इत्यादिक बहु काम॥
घर न कुटुंब अपना, बाहिर कांई नाहि।
दवाई रखी घर नया, न लिख न कहै मांहि॥
(मो॰ ची॰, ढा॰ दु॰ ३ गा॰ १ से ६)

सं० १८८१ से १६०८ तक उन्होंने अधिकांश चातुर्मास मुनिश्री जीतमलजी के साथ किये। बीच के कुछ चातुर्मासों में मुनि सतीदासजी के साथ थे।

सं० १८६६ में युवाचार्यश्री जीतमलजी का चातुर्मास चूरू था। तब मुनि मोतीजी उनके साथ थे। वहां चातुर्मास के पूर्व मुनि कोदरजी ने अनशन किया था। कोदर मुनि ने अपने अनशन के अंतिम दिन संध्या के समय मुनि मोतीजी को पानी पीने के लिए कहा था[1]।

मुनि सतीदासजी के साथ उन्होंने चार चातुर्मास किये।

सं० १६०५ पीपाड़ (वहां उपवास किया)

सं० १६०६ पाली (वहां उपवास बहुत किये)

सं० १६०७ बालोतरा (वहां ११ दिन का तप किया)।

सं० १६०८ पचपदरा (अनुमानतः)।

(शांति विलास ढा० १० गा० ७, ६, १५, १८ के अनुसार)

४. सं० १६०८ में जयाचार्य ने पदासीन होकर मुनि मोतीजी का सिंघाड़ा बनाया[2]। कामकाज व बोझभार से उन्हें मुक्त किया[3]। इस प्रकार जयाचार्य की उन पर विशेष कृपा थी। सुना जाता है कि जयाचार्य ने मुनि मोतीजी और कर्मचंदजी को बाजोट पर बैठने की एवं साध्वियों को पढ़ाने की आज्ञा प्रदान की। जब ऐसा प्रसंग आता तब मुनि कर्मचंदजी (८३) तो अपने आप बाजोट बिछाकर बैठ जाते किन्तु मोतीजी स्वामी के लिए दूसरा साधु बाजोट तथा आसन आदि बिछाता तब उस पर बैठकर साध्वियों को पढ़ाते व व्याख्यान देते। इस संबंध में जयाचार्य कई बार विनोद भरे शब्दों में फरमाते—'हमारे कर्मचंद का तो बेटे का सा और मोतीजी का बेटी का सा खर्चा है।' जिस प्रकार बेटा तो अपने घर में सामान्य स्थिति में रहता है और बेटी कभी-कभी पीहर आती है तब अधिक मान-मनुहार करवाती है और ठाट-बाट से रहती है।

मुनिश्री ने ग्रामानुग्राम विचर कर बहुत अच्छा उपकार किया। श्रावकों द्वारा

---

१. इतले दिशा जई आविया हो, संत मोती सुखकार।
मोतीजी स्वामी उदक चुकायलो हो, तीखे स्वर बोलें अधिक विचार॥
(कोदर मुनि गु० व० ढा० ४ गा० ६७)

२. मोती नो घर प्रेम, सिंघाडो सुखकार।
आप्या संत अमोल, सेव में हुसियार॥
(मोती० पच० ढा० ५ गा० ४)

३. ख्यात तथा शासन प्रभाकर ढा० ४ गा० १४५ में ऐसा उल्लेख है—
पछै जय गणपति थया सिंघाडो करावियो।
पाती रो काम बोझादिक करयो बगशीस॥

प्रकृति मे भद्र थे'।

वे सं० १८७४ से ८२ तक मुनिश्री जयानजी के साथ में रहे। फिर मुनिश्री जीतमलजी के सान्निध्य में रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। पहले उनके मन में शका बहुत पड़ती थी पर मुनिश्री जीतमलजी ने उनको आगमों का रहस्य बतला-कर ऐसा असंदिग्ध बनाया कि वे दूसरों का संदेह दूर करने में सक्षम हो गए'।

३ मुनि मोतीजी ने मुनि जीतमलजी के पास विनय-भक्ति पूर्वक सिद्धान्तों का ज्ञान प्राप्त किया। क्रमशः वे बहुश्रुती मुनियों की गणना में आने लगे। गण एवं गणी के प्रति आस्था रखते हुए विविध गुणों का विकास कर योग्यतम श्रेणी में आ गए। चतुर्विध संघ में उनकी अच्छी ख्याति बढ़ गई'।

---

१ ईर्या भाषा एषणा, चउथी पचमी समित।
सावद्य मन वचन काय नें, गोपवै त्रिहुं गुप्ति।
दया सत्य दत शील मे, निश्चल मोती संत।
निर्ममत्व पायो घणो, समण मुद्रा सोभत।
वारू विनय गुण आगलो, सौम्य प्रकृति सुखदाय।
पाप तणो भय अति घणो, मोती रै दिल माय॥

(मोती० पच० ढा० ४ गा० १४, १५, १६)

२. आठ वर्ष रै आसरै, ऋषि जयान री सेव।
मोती ऋषि हृद साचवी, अलगो कर अहमेव॥
[illegible]

जान बने आया पछै, समय रहिस बहु जोय॥
सखर निपटा सजया, आदि समय ना बोल।
मोती ऋषि बहु धार नै, थयो सुअधिक अंडोल॥
मोती शका पर तणी, काढ़ै विध-विध रीत।
जाणक जन्म दूजो थयो, मोती तणो पुनीत॥
टाची लागा पथर री, प्रतिमा हुवै वदीत।
तिम कठिन वचन बहु शीख दे, प्रकृति सुधारी जीत॥
समभावै मोती सही, कठिण शीख मृदु जेम।
अग्नि करी प्रेर्‌यो थको, हुवैज कुन्दण हेम॥

(मोती० पच० ढा० ५ दो० १ से ७)

३. सातासारी मन, श्रवण नै सुखदाई, मधुर वचन सविनय अति ही नरमाई।
नरमाई वलि गुणग्राही, क्रोधादिक ताम प्रबल नाहीं।
यों तो धिन-धिन मोती संत, प्रवर शोभा पाई॥

(मोती० पच० ढा० ५ गा० २)

लिखित चातुर्मास तालिका के अनुसार ५ साधुओं से सं० १९१२ का चातुर्मास बालोतरा एवं मुनिश्री जीवोजी (८६) द्वारा रचित ढाल के अनुसार सं० १९१३ का चातुर्मास जसोल किया।

प्राचीन पचपदरा की चातुर्मास तालिका के अनुसार सं० १९२७, २८ और २९ के तीन चातुर्मास वृद्धावस्था के कारण पांच-पांच ठाणो से पचपदरा में किये।

शेष चातुर्मास प्राप्त नही हैं।

स० १९१० के नाथद्वारा चातुर्मास के पश्चात् जयाचार्य ने मालव की तरफ विहार किया। रास्ते मे जब कानोड पधार रहे थे तब डबोक ग्राम मे मुनिश्री मोतीजी के साथ के तीन साधु गण से पृथक् हो गए—१. जीवरामजी लघु (११३) २. धनजी (६२) ३. हमीरजी (१४०)। उनमे एक जीवरामजी को राजनगर के श्रावक लिखमीचदजी समझाकर वापस ले आए। उन्होंने स० १९११ का चातुर्मास मोतीजी स्वामी के साथ ही किया। चातुर्मास स्थान प्राप्त नही है।

(जय सुजश ढा० ४० दो० १ से ५ के आधार से)

५ मुनिश्री ने उपवास, बेले आदि विविध तपस्या की। ऊपर मे ४७ दिन का थोकडा किया। शीतकाल मे बहुत शीत सहा और उष्णकाल मे आतापना ली[1]। (ख्यात)

६ स० १९२९ के पचपदरा चातुर्मास मे मुनि मोतीजी की शारीरिक शक्ति बहुत घट गई। चातुर्मास के पश्चात् मुनिश्री तेजपालजी (१२७) आदि ३ संत वहा पधारे। उन सभी ने मुनि मोतीजी की अच्छी परिचर्या की। क्रमश. मुनिश्री के दुर्बलता बढती गई। आखिर मृगसर सुदि २ को उन्होंने पाच प्रहर के सथारे से समाधि-पूर्वक पडित मरण प्राप्त किया[2]।

---

१. चोथ छठादिक विचित्र, प्रकारे तप कीधो।
इम सैतालो लग सरस, तप रस पीधो॥
शीतकाल मे शीत, परिसह अति खमतो।
उष्णकाल मे उष्ण, सहै समता रमतो॥

(मोती० पच० ढा० ५ गा० ११, १२)

२. शक्ति घटी अधिकाय, चरम ही चउमास।
पच मुनि थी पेख, अधिक धर्म उजास॥

(मोती० पच० ढा० ५ गा० १३)

त्रिहु साधां थी ताम, तेजसी तिहू भार।
मृगसर मास मझार, किया दर्शण सार॥
दर्शन सारं कोई धर प्यारं, तसु सेव करै अति हुसीयारं।
तीर्थ तिहू सुखकारं॥

(मोती० पच० ढा० ५ गा० १४)

आर्या दर्शन ढा० ३ सो० ४ मे दो बार छहमासी करने का उल्लेख है—
'षट्मासी बे वार रे।'

पर सभी कृतियो मे एक का ही उल्लेख होने से एक छहमासी ही मान्य की गई है।

३. मुनिश्री ने बहुत वर्षों तक शीतकाल मे शीत सहन किया। रात्रि मे केवल एक चोलपट्टे के अतिरिक्त कुछ भी ओढ़ने, पहनने के काम मे नहीं लिया। पश्चिम रात्रि मे खड़े-खड़े कायोत्सर्ग व ध्यान करते। उष्णकाल मे तप्त शिला तथा रेत पर लेटकर आतापना लेते। विविध अभिग्रह व विगयादिक का वर्जन करते इस प्रकार वैराग्य रस मे ओत प्रोत हो गये।

(शिव मुनि गु० व० ढा० १ गा० २४ से ३० के आधार से)

४. मुनिश्री ने अग्रणी होकर मारवाड, मेवाड, ढूढाड, हाडोती, मालव तथा हरियाणा के क्षेत्रो मे विहरण किया।

(शिव० मु० गु० व० ढा० १ गा० ४६ से ४७ के आधार से)

५. मुनिश्री शिवजी का स० १९११ का अन्तिम चातुर्मास पेटलावद मे था। चातुर्मास के पश्चात् वे विहार कर झाबुआवद पधारे। वहा मुनिश्री अनोपचदजी (११४) ने छहमासी तप किया। मुनिश्री शिवजी ने भी ८ दिन की तपस्या की। पारणा साथ मे ही हुआ। जयाचार्य ने पधार कर मुनिश्री अनोपचदजी को पारणा कराया। अनेक साधु-साध्वी सम्मिलित हुए। आस-पास तथा मेवाड के बहुत भाई-बहन दर्शनार्थ आये। चार तीर्थ का मेला सा लग गया।

जयाचार्य ने 'सिरेपाव' की बख्शीश कर मुनि शिवजी का सम्मान बढाया अर्थात् उन्हे कार्य विभाग से मुक्त किया। मुनिश्री वहा से विहार कर राजगढ़ (मालवा) पधारे। वहा वे अत्यधिक अस्वस्थ हो गये। उनकी सेवा मे मुनि जयचदजी (१३२) और लालजी (१२२) थे। उनकी बीमारी के समाचार सुनकर जयाचार्य ने इदौर से मुनिश्री हिन्दूजी (९१) तथा वीरचदजी (१५८) को उनकी सेवा मे भेजा। मुनिश्री जयचन्दलालजी उनको वहा से उठाकर बखतगढ़ लाये। उन्होंने उस घोर वेदना को समभावों से सहन किया। वहा उन्होंने ५ दिन की तपस्या की। पारणे मे थोड़ा आहार लिया। उसी दिन स० १९११ चैत्र सुदि ७ को रात्रि के समय अचानक दिवगत हो गये। दूसरे दिन लोगो ने बडी उमग से उनका चरमोत्सव मनाया। जय जयकार की ध्वनियों से यशोगान गाया।

(शिव० मु० गु० व० ढा० १ गा० ४८ से ८० के आधार से)

जयाचार्य ने विघ्नहरण की ढाल मे मुनि शिवजी का स्मरण किया है 'अ-भी-रा-शि-को' इन सकेतात्मक पंच अक्षरों मे शि—'शिव' उनका नाम है। उनके विषय मे पद्य इस प्रकार है—

१ मुनिश्री शिवजी मेवाड़ प्रदेश में मावा (नाथद्वारा) के वासी, जाति से ओसवाल और गोत्र से बाफणा थे। उन्होंने सं० १८७५ में आचार्यश्री भारीमाल-जी के हाथ से चारित्र ग्रहण किया।[1]

ख्यात तथा शासन प्रभाकर ढा० ४ गा० १४७ में दीक्षा वर्ष १८७५ और आर्यादर्शन ढा० ३ सोरठा ४ में १८७६ है।

'शिव साहवा नो सार रे, विविध तणे तन तावियो।
पट्भागी के बार रे, छिहुंतरे व्रत आदर्या।।'

ख्यात में शिवजी के बाद की दीक्षा का भी संवत् १८७५ है अत: उनका दीक्ष संवत् १८७५ (जैन श्रावणादि क्रम से) ही यथार्थ लगता है। आर्या-दर्शन में सं १८७६ है वह विक्रम संवत् (चैत्रादि क्रम से) प्रतीत होता है।

२ मुनिश्री शिवजी बड़े, विरागी, प्रकृति से कोमल, विनयी उत्कट साध एवं उग्र तपस्वी हुए। उन्होंने संयम की आराधना के साथ साधना का अनु अभियान चालू किया। उनकी तपस्या के लम्बे आंकड़े आश्चर्य-जनक, जन-ज को विस्मित करने वाले और भगवान् महावीर के युग की याद दिलाने वाले हैं पढ़िये निम्नोक्त तालिका :

उपवास/४१४ २/२२ ३/३४ ४/८ ५/११ ६/७ ७/३ ८/६ ९/३ १०/३ ११/३ १२/३ १३/२ १४/३ १५/३ १६/२ १[illegible]

३२/१ ३६/२ ४०/१ ४५/६ ५०/२ ५५/१ ६०/५ ७५/२ ९०/१ (पानी के आगार से) १८६/१ (आछ आगार से)।

उन्होंने उपर्युक्त अधिकांश तपस्या पानी के आगार से की।

उनके तप का विवरण जयाचार्य विरचित 'शिव मुनि गुण वर्णन' ढा० गा० १ से २३, शासन-विलास ढा० ३ गा० ३४ की वार्तिका तथा शासन-प्रभाक 'भारी सत वर्णन' ढा० ४ गा० १४८ से १५४ के आधार से दिया गया है। ख्यात में कुछ भिन्नता है वहां १० व १५ के थोकड़े नहीं है एवं ९ के १० बार व १२ दो बार हैं।

सुना आता है कि उक्त १८६ दिन का तप उन्होंने सं० १८८६ में किया था।

---

१. संवत अठारै पचतरे, संजम लीधो सार।
वासी मावा सैंहर नो, जाति बाफणा जाण।
भारीमाल स्वहाथे दियो, चारू चरण विनाण।।
(शिव गुण वर्णन ढा० १ दो० ३, ४)

जाति बाफणा सैंहर मावा ना, चरण पचतरे धामी रे।
(शासन विलास ढा० ३ गा० ३४)

१. मुनि भैरजी देवगढ़ (मेवाड़) के वासी थे। उन्होंने सं० १८७५ में संयम ग्रहण किया।

(ख्यात)

उनकी जाति अप्राप्त है। दीक्षा कहां और किनके द्वारा हुई इसका उल्लेख भी नहीं मिलता।

वे भैरजी नाम से ही अधिक प्रसिद्ध थे। सं० १८७७ वैसाख कृष्णा ९ के दिन लिखे गए युवाचार्य नियुक्ति के लेखपत्र में उनके 'भैरदान' नाम से हस्ताक्षर हैं।

२. मुनिश्री आचार-क्रिया में कुशल प्रकृति से सरल, विनयी, विवेकी और बड़े सेवाभावी हुए। उनकी आकृति में सौंदर्य और वाणी में मिठास था। किसी को अप्रिय वचन नहीं कहते। अन्य मतावलम्बी भी उनके दर्शन कर बड़े प्रभावित होते। टालोकरों (गण से बहिर्भूत साधु) के श्रावक भी उन्हें सीमंधर स्वामी की उपमा देकर मुक्त स्वर स्तवना गाते[1]। (ख्यात)

३. मुनिश्री बड़े त्यागी एवं तपस्वी हुए। उन्होंने उपवास से लेकर बाईस तक लड़ीबद्ध तप किया। अनेक बार मासखमण तथा उदक व आछ के आगार से दो मासी, अढ़ाई मासी और तीन मासी तप किया। तेईस चातुर्मासों में एकान्तर किये। शीतकाल में शीत सहन किया और उष्णकाल में आतापना ली।[2]

विगयादिक के त्याग भी बार-बार करते रहते। (ख्यात)

४ उन्होंने मुनिश्री हेमराजजी के साथ सं० १८९९ का गोगुंदा तथा १९००

---

१. सरल भद्रीक सुहामणो, समण भैरजी सार।
बोली मीठी ते भणी, मीठो नाम उदार॥
धन-धन मुनि भैरजी॥
(भैरजी मुनि गु० व० ढा० १ गा० १)
ईर्या पूजण परठणो, रूड़ी जयणा रीत।
अन्य मति स्व मति देख नै, पामें अधिकी प्रीत॥
(भैरजी मुनि गु० व० ढा० १ गा० २)

२. सीयाले बहु सी खम्यो, उन्हाले आताप।
तेवीस चोमासा आसरै, एकतर चित थाप।
मासखमण तप बहु किया, दोय अढी तीन मास।
उदक आछ आगार सू, इम तोड़ी अघ-रास।
चौथभक्त सु आदि दे, बावीस दिन लग तास।
ए तप लड तीखी करी, अति चढ़ते परिणाम।
(भैरजी मुनि गुण वर्णन ढा० १ गा० ३ से ५)

## ८१।२।३२ मुनि श्री रत्नजी (देवगढ़)

(सयम पर्याय १८७६-१६००)

### गीतक-छन्द

थे निवासी देवगढ के 'रत्नजी' खीवेसरा।
मुकुल-तरु लहरा गया है धर्म-कुल पाया खरा।
मिला है सयोग सुदर हेम मुनिवर का स्वत ।
लगा हैं उपदेश स्थायी विरति पाई मूलत ॥१॥

### दोहा

दीक्षा लेने के लिए, हुए रत्न तैयार।
आज्ञा मागी तब सभी, अभिभावक इन्कार ॥२॥
पिता व भाई आदि ने, डाला बहुत दबाव।
पत्नी का व्यामोह तो, सीमातीत खराव ॥३॥

### रामायण-छन्द

मत्र विज्ञ से मिल औरत ने कहा बनाओ तुम तावीज।
जिससे पति वश में हो पाये जाए भौतिकता से भीज।
लालच उसको दिया किया कथनानुसार उसने सब कुछ।
कुछ दिन से तावीज बन गया कर प्रयोग देखा सचमुच ॥४॥

### दोहा

पर न रत्न पर तो हुआ, उसका तनिक प्रभाव।
भाग्यवान नर को नही, छूते विघ्न-विलाव ॥५॥
उन्हे रोकने के लिए, जो जो किये उपाय।
विफल हुए सब तब झुका, स्वतः स्वजन-समुदाय ॥६॥

सं० १८७५ में मुनिश्री हेमराजजी (३६) आदि नौ संत देवगढ़ पधारे। वहां मुनिश्री हेमराजजी के पैर में गाय के चोट लगा देने से उनको देवगढ़ में लगभग ६ महीने ठहरना पड़ा। सं० १८७६ का चातुर्मास भी वहां हुआ। चातुर्मास में बहुत उपकार हुआ। अनेक लोग दृढ़ श्रद्धालु बने। पांच व्यक्तियों ने आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत स्वीकार किया एवं एक वर्ष के बाद व्यापार तथा घर की रोटी खाने का परित्याग कर दिया। इस बात की गांव के लोगों में मुख-मुख चर्चा प्रारंभ हो गई। द्वेषी लोगों ने रावजी गोकुलदासजी के सम्मुख शिकायत भी की। रावजी ने कहा—मैं किसी को बिना गुनाह के मना नहीं कर सकता। साधुओं से भी रावजी ने कहला दिया कि आप सानंद यहां पर विराजें, किसी प्रकार का विचार न करें। मेरी तरफ से भगवान् के नाम को दो मासा का आप और अधिक करें। विरोधी व्यक्तियों ने मुनिश्री को भी अनेक कटुक वचन कहे, परन्तु उन्होंने समभाव से इस परिषह को सहन किया

पारिवारिक जनों के अधिक दबाव देने पर दो व्यक्ति तो प्रण से विचलित हो गये, तीन व्यक्ति दृढ़ रहे। उनमें एक रत्नजी दूसरे शिवजी (८२) और तीसरे कर्मचन्दजी (८३) थे।[1]

---

१. तिहां घणो उपगार सवायो रे, विविध उपदेश दे मुनि रायो रे।
पांचां रा परिणाम चढ़ायो ॥
जावजीव शील अदरायो रे, वर्स उपरन्त त्याग करायो रे।
घर की रोटी व्यापार छोडायो ॥
द्वेषी करवा लागा हाहाकारो रे, रावजी कनैं कीधी पुकारो रे।
त्या कह्यौं हूं तो न बरजूं लिगारो ॥
साधां नैं रावजी कहिवायो रे, खुशी थका रहजो शहर माह्यो रे।
पिण आप मन में म आणजो कायो ॥
रह्या तीन जणा दृढ़ सारो रे, त्यागीला हुवा काया जिवारो रे।
जब आग्या दीधी श्रीकारो ॥
(हेम नवरसो ढा० ५ गा० ३५ से ३६)

वर्ष छिहत्तरे हेमजी रे, नव श्रमण संग चौमास।
जय आदि त्रिहूं बंधव सदा रे, करे तप ग्यान प्रकाश ॥
सुण वैराग्य पाया घणा रे, एक साथे सुविचार।
त्याग किया घर में रहिवा तणा रे, पंच जणा धर प्यार ॥
ए बात शहर में विस्तरी रे, तब लागू हुआ बहु लोग।
कटुक वचन का मुनि तदा रे, परिसह सह्या शुभ योग ॥

सं० १८७६ मृगसर वदि १ को रत्नजी एवं शिवजी (८२) ने पत्नी को छोड़कर मुनिश्री हेमराजजी के हाथ से दीक्षा ग्रहण की। मुनि कर्मचंदजी (८३) ने अविवाहित वय में मुनिश्री से उसी दिन दीक्षा ली। पढ़िये निम्नोक्त संदर्भ—

> संवत अठार छिहुतरे, सुरगढ़ सैहर मझार।
> हेम जीत नव मन सू, चउमासो सुखकार।
> जाति 'खीवसरा' रत्नचंद, मातृ'चा 'शिव' नाम।
> जाति 'पोखरणा' कर्मचंद, ए तीनूं अभिराम।
> तात भ्रात प्रिय रत्न तजि, शिवजी त्यागी नार।
> बहु हठ करि लेई आगन्या, हेम हस्त व्रत धार।
> अति महोत्सव आडबरे, उभय तुरंग असवार।
> आगल गज वाजित्र ना, बाज रह्या सिणगार।
> मोखमदासजी रावजी, रत्नचंद शिव हाथ।
> दोय दोय रुपइया दिया, मगन अर्थ सुजाण॥
> कपा नाणा री बोवणी, म्हांरी तरफ सू नाथ।
> प्रवर पतासी बांटजो, वर महोत्सव अधिकाय॥
> जोग थोवे वित्त पासजो, इह विध शिक्षा दोय।
> मृगसिर में संजम लियो, जग मांहे जश सीध॥
> तिण हीज दिन दिक्षा ग्रही, कर्मचंद सुखकार।
> मात तात भगिनी तजी, दाखो काको धार॥
>
> (कर्मचंद गुण वर्णन ढा० १ दो० १ से ८)

> रावजी दिख्या महोच्छव करायो रे, दो-दो रुपया दिया कर मांडो रे।
> म्हांरी तरफ सू पतासा बटायो॥
> थोथो पासजो जोग धीकारो रे, मोखमदासजी रा वैण धारो रे।
> हेम दीक्षो है संजम भारो॥
> कर्मचंद छोड़्या मा तातो रे, काम पर्ण वैरागी विख्यातो रे।
> दिख्या दाखो स्पष्ट जिन मातो॥
> एक दिन लियो संजम भारो रे, [illegible] अपारो रे।
> [illegible] हेम [illegible]॥
>
> (हेम नवरसो ढा० ३ गा० ४० से ४३)

> दूदसर में दिख्या लिवी रे, शिवजी रत्न लिए साथ।
> महोच्छव करायो रावजी रे, दैने रुपया दिया हाथ॥
> बहु कृपा आपरी दीठी रे, [illegible] दै [illegible]।
> म्हांरी तरफ सू [illegible] रे, [illegible] महोच्छव [illegible]॥

कहा जीव ऋषि ने मुनि शिव रो रखें धैर्य धर अति उल्लास।
दूगा मैं सहयोग आपको करिये पहले तप अभ्यास।
क्रमशः तेला किया उसी दिन चतुर्दशी की पश्चिम रात।
साग्रह अनशन लगे मांगने करते वीर वृत्ति री बात ॥१६॥
कहा किसी ने करें पारणा तेले का तो ऋषिवर! आज।
होगा परभव में संभवतः निकली ओजभरी आवाज।
देख भावना चेतन मुनि ने अनशन करवाया तत्काल।
समाचार सुन जन वंदन हित आते गाते सुयश रसाल ॥२०॥

## दोहा

तीन पाव जल से अधिक, पीने का परित्याग।
दिन भर मे मुनि ने किया, बढ़ता परम विराग ॥२१॥
पढ़ते पत्र प्रयत्न से, देते बहु उपदेश।
वस्त्र सिलाई मांगते, प्रतिलेखन सुविशेष ॥२२॥
पंच दिवस कुछ जल लिया, फिर उसका परित्याग।
धन्य धन्य सब कह रहे, गाते गुण धर राग ॥२३॥
मेरे गुण क्यों गा रहे, गाओ गण-गणि-गान।
गीत स्वय के प्रिय नहीं, पर-गुण-श्रुति में ध्यान ॥२४॥
ऊऋण साधुओं हो रहे, तुम तो बन सहकार।
जाता मैं परलोक मे, ले उपकृति का भार ॥२५॥
कर दश विध आलोचना, क्षमायाचना संग।
होकर लीन समाधि में, भरते समता रंग ॥२६॥
कहा किसी ने मागने, पर-जल का आगार।
मैं मांगूगा किसलिए, बोलो वचन विचार ॥२७॥

लय—म्हारं रे हाथ में नवकरवाली...

पंच दिवस अनशन तिविहारी, सात दिवस बिन पानी।
बारह दिन से सिद्ध हुआ है, छोड़ चले सहनाणी ॥२८॥
शतोन्नीस तेरह भाद्रव सित, बारस निशा सुहाई।
राजनगर की पुण्य धरा पर, चरमोत्सव छवि छाई ॥२६॥
कीर्ति कहूं मैं क्या शब्दों मे देता भाव-बधाई।
जय ने चार गीतिकाएं, रच, मुक्त स्वर स्तुति गाई।

सुनकर शीघ्र बैठे होकर तपाक से बोले—'तुम ऐसी बेकार बात क्यों कर रहे हो, मैंने तो स्वेच्छा से चौविहार अनशन किया है अतः पानी कैसे मांगूगा ? मुनिश्री की दृढ़ता व जागरूकता से सभी गद्‌गद् हो गए'।

मुनिश्री ने समता-भाव मे रमण करते हुए सात दिनों के चौविहार अनशन से सं० १६१३ भाद्रव शुक्ला १२ को रात्रि के समय राजनगर में पंडित मरण प्राप्त किया। उन्हें तीन दिन की सलेखना, पाच दिन का तिविहार और सात दिन का चौविहार अनशन आया[1]।

आर्या दर्शन ढा० ५ सो० ३ में भी मुनिश्री के स्वर्गवास होने का उल्लेख है—

दोय पहुता परलोग रे, चरण अठारें छिहुलरे।
चौविहार शुभ जोग रे, सुरगढ़ वासी शिव ऋषि ॥

'दोय पहुता परलोग रे' का तात्पर्य है कि इस वर्ष मुनि शिवजी और मुनि पुजोजी (८८) दिवंगत हुए।

८. जयाचार्य ने मुनिश्री के गुणोत्कीर्तन का चोढालिया बनाया। उसकी तीन ढालो का रचनाकाल स० १६१३ चैत्र शुक्ला १० और चौथी ढाल का स० १६१४ द्वि० जेठ सुदी ४ है।

ढाल १ मुनिश्री जीवोजी (८६) कृत प्राचीन गीतिका सग्रह मे है।

जयाचार्य द्वारा उनकी विशेषताओं के सदर्भ मे रचे हुए कुछ पद्य—

शिवजी-शिवजी होय रह्यो रे, शिवजी सखर सयाण रे।
शिव गुण सागर, अधिक ओजागर ॥
प्रकृति सभावे पातली रे, मंद चोकडी माण रे।
विष संग विष जाणी तज्यो रे, काई परम धर्म पहिछाण रे ॥
सत सजम तप सूरमो रे, दान ब्रह्म दैदीप रे।
उत्तम ऋष गुण आदर्‌या रे, काइ जत सत इद्रयां जीप रे ॥
सता मे शोभा घणी रे, समणी ने सुखदाय रे।
श्रावक ने बहु श्रावका रे, शिव सगला ने सुहाय रे ॥

---

१. भाद्रवा सुदि बारस भली रे, निस सीझ्यो सथारो विशाली रे।
मुनि आतम ने उजवाली ॥
सवत् उगणीसै तेरे उदारी रे, भाद्रवा सुदि बारस भारी रे।
मुनि पोहता परलोक मझारी ॥
(शि० चो० ढा० ३ गा० ११, १२)

२. प्रथम तीन दिन अठम भक्त ना, पच दिवस तिविहारं।
चौविहार दिन सात पनरै दिन मे, मुनि पोहता पारं ॥
(शि० चो० ढा० ४ गा० ६)

निविहार सथारा कर लिया'।

अनशन की सूचना मिलने पर अनेक गांवों के लोग दर्शनार्थ आए। यथा
नियम ग्रहण किये। त्याग वैराग्य की विशेष वृद्धि हुई।

मुनि श्री ने वर्द्धमान भावों से अनशन में पानी पीने का भी परित्याग क
दिया। वे उस समय में भी अध्यात्म पद्यों का वाचन करते, आगुन्तक भाई बहन
को धर्मोपदेश देते तथा साधुओं से प्रतिलेखन व सिलाई आदि मागते'। इस प्रका
धर्म-जागरण करते हुए पाच दिनों के बाद चौविहार अनशन ग्रहण कर लिया।
सभी प्राणियों के साथ क्षमायाचना और आत्मालोचन किया। दर्शनार्थी लोगों के
आवागमन का तांता सा जुड गया'। कोई उनके गुणगान करता तो वे तुरत उसे
टोकते हुए कहते—'आप मेरे गुणानुवाद न करें, इन साधुओं के गुण गाए। ये
मुनि तो मुझे सहयोग देकर मेरे से ऋण-मुक्त हो गए हैं पर मैं तो इनके ऋ
मे मुक्त नहीं हुआ, अब मैं इन सबसे बिछुड़ने वाला हू किन्तु इनके उप
कभी नहीं भूल सकता'।'

किसी ने कहा—'मुनिश्री के मागने पर जल पीने का आगार है

---

१. पचदश पाट्टली निस पिछाण, अणसण मागै वारवार।
वह हठ कीधा चेतन सत, मझरो पचखायो सथार।
आवजीव नो अधिक उदार, तीनू आहार तणो परिहार॥
(शि० चो० ढा० २ गा०

२. सीवणो माग्यो सता कन्है, वलि पडिलेहण मागता रे।
उपदेश देता भव जीव नै, वाह पाना वाचता रे॥
(जी० मु० कृत ढा० १ गा० ११

३. चोरासी जीवा जोन खमावै रे, आलोवण कर नै शुद्ध थावै रे।
वर सवेग रस बरसावै रे॥
पच दिवस अल्प जल सीधो रे, पछै चोविहार अनशन कीधो रे।
अति उचरग प्रकट प्रसिधो॥
गाम-गाम ना लोक आवता रे, गुण शिव रूप ना गावता रे।
परम आणद हरष पावता॥
(शि० चो० ढा० ३ गा० ४ से ६)

४. गुण मत गावो कोई माहरा, गुण यां सता रा गावो रे।
म करो कच्ची बात मो कनै, चोखी बाता सुणावो रे॥
ए मासू उरण होय गया, हू तो उरण न हुवो रे।
ए उपगार किम वीसरू, हिव तो जातो दीसू जुओ रे॥
(जीव मु० ढा० १ गा० ११, १२)

## ८३।२।३४ मुनि श्री कर्मचंदजी (देवगढ़)

(संयम पर्याय सं० १८७६-१६२६)

लय—मुनि घर आये आये...।

कर्मचन्दजी स्वामी रे, कर्मों की व्याधि मिटाने,
वैद्य घर आये आये, वैद्य घर आये॥ध्रु॰॥
रोगों से होता तन शक्ति-विहीन ज्यों,
कर्मों से आच्छादित आत्मा दीन त्यों।
हो आधीन इतर के रे, भटकाती पाती बहुतर,
दुःख दुविधाए आये॥१॥
आत्मा चेतन कर्म अचेतनभूत है,
तेल तिलोपम दोनों एकीभूत है।
कर्मों की सब माया रे,
छाया धुंधियाली उनकी घोर घन छाये॥२॥
सौ रोगों की एक दवा ज्यों आबहवा,
सब दोषों की त्याग-तपोमय एक दवा।
सुगुरु चिकित्सक कर से रे,
ले ली आस्था से मुनि ने, पथ्य रख पाये॥३॥
मेदपाट में पुर सुरगढ अभिराम है,
पोकरणा कुल-गोत्र स्वजन जन-धाम है।
'कर्म' जन्म शुभ पाये रे,
लाये संस्कार उच्चतम, भाग्य लहराये॥४॥
हेम व्रती की हृदय-स्पर्शिनी सुन वाणी,
हुई विरति जो प्रगति पथ की सहनाणी।
दीक्षा स्वीकृति मागी रे,
सुनकर अभिभावक जन ने, उन्हें धमकाये॥५॥

स्वमति में प्रससा घणी रे, कांई देश प्रदेश दीपाय रे।
अन्यमति पिण आय नैं रे, कांई शिवजी ना गुण गाय रे॥
अखड आचार्य आगन्या रे, कांई आराधी उघरग रे।
विरचित शासण थापवा रे, रूप दिन-दिन चढ़ते रग रे॥
सार सिद्धत बहु वाचिया रे, वर मुख पाठ विनांण रे।
ग्रंथ हजारां महामुणी रे, शिवजी सखर सुजाण रे॥
दीयं मुनि हद देशना रे, वाह सखर बखांण रे।
स्वमति ने अन्यमति तणी रे, झीणी चरचा नो जाण रे॥
(शि० चो० ढा० १ गा० २, ३, ६ से १२, ३२, ३३,

सरल भद्र गुण अधिक सोभता, मृदु मार्दव मन जीतं।
एक दृष्टि वर आणां ऊपर, परम सद्गुरु सू प्रीत॥
शासण भार धुरा धोरी जिम, अखड आंण पद मई।
निहन मरण आगमैं मुनिवर, पिण ते गण नहि छई॥
(शि० चो० ढा० ४ गा० २, ३)

क्या तू मुझको रो रहा जी, क्या मैं तुमको, कर्म ?
राग सुनाता इस तरह जी, पर आया हो गर्म ॥१६॥

### दोहा

जनक हेम के चरण में, चल आया तत्काल।
वज्राहत सा हो व्यथित, बोला वचन निढाल ॥१७॥
जादू क्या इस पर किया, (क्या) पड़ी आपकी छांह।
भुरकी डाली क्या कहो, जिससे यह गुमराह ॥१८॥
समझाया मुनिवर्य ने, किन्तु न छूटा राग।
उथल-पुथल दिल में मची, स्वस्थ न रहा दिमाग ॥१९॥
की पुकार तब 'राव' से, है एकाकी नंद।
अतः लगाए गौर कर, दीक्षा पर प्रतिबंध ॥२०॥

लय—क्षमा ३ रे…

बोलो ३ रे कर्मचंद बोलो, सब भाव हृदय के खोलो जी ओ।
घोलो ३ रे वचन रस घोलो, तुम न्याय तराजू तोलो जी ओ ॥ध्रु व०॥
रावला में 'राव' कर्मचन्द को बुला के, खुद पूछ रहे मधुभाषी जीओ।
नाम उठता है ऐसे कहते घर वाले,
क्यों बनता फिर सन्यासी जीओ ॥२१॥
नाम उठता है जब नाम शेष होता, चल सका नाम किस किस का जीओ।
जीवित समय में भी है नाम सब स्वार्थ का,
आस्वाद यथा किसमिस का जीओ ॥२२॥
होना मैं तो लीन दिल से प्रभु के भजन में, धर सत्त्व सतीवत् भारी जीओ।
करके मनाह आप बनते क्यों दोषी,
कुछ सोचें पुर-अधिकारी ! जीओ ॥२३॥
बोले तब राव तुमको देखने के खातिर, हमने तो यहां बुलाया जीओ।
काम न हमारे कोई दूसरा है भाई !
जा अभी जहां से आया जीओ ॥२४॥

### रामायण-छन्द

बुला पुरुष आज्ञाकारी को दिया रावजी ने आदेश।
कर्मचन्द के स्वजन जनों को पहुंचावो मेरा संदेश।

लय—मूल

अष्टादश शत साल छिहंतर आ गया,
मृगशिर विद एकम दिन मगल छा गया।
दीक्षित कर मुनि श्री नें रे, रत्न व शिव-
कर्मचन्द को, रों रों विकसाये' ॥३३॥

गापुर में भेंटे भारीमाल है, तीन दीक्षा मुनि मेट किये सुविशाल है।
ो प्रसन्न गुरुवर ने रे, शिक्षार्जन करने वापस, उन्हें सभलाये ॥३४॥
ातुर्मास चार हेम के पास में, दो पावस ऋषिराय पूज्य पद-न्यास में।
करतो जय सेवा मे रे, वर्षों तक विनय भक्ति से, शिक्षा फल खाये ॥३५॥

## दोहा

चार किये ऋषि शान्ति सह, पावन चातुर्मास।
दिन प्रतिदिन करते गये, विद्या-विनय-विकास' ॥३६॥

लय—मूल

ालकवय में कुशाग्रीय कुशलाग्रणी धैर्य कला चातुर्य गुणाश्रित दृढप्रणी।
ढकर सभी जिनागम रे, समझे हैं कठिन स्थलो को, नहीं उकताये ॥३७॥
त्रों के वाचन की शैली स्पष्ट थी,
क्वातलिवत् हस्ताक्षर लिपि इप्ट थी।
ान ध्यान मे रमते रे, करते स्वाध्याय उद्यमी-श्रमण कहलाये' ॥३८॥

## दोहा

जयाचार्य ने एकदा, दी शिक्षा भर सार।
ग्रहण आपने की मुदा, जैसे मुक्ता-हार' ॥३९॥

लय—मूल

ाज्ञ विवेकी शात दात सवेग से, कभी वाहर आते क्रोधावेग से।
ाप भीरुता रखते रे, चखते रस स्वाद-
ाजय का, विरति चल लाये ॥४०॥
ासन में अनुरक्त भक्त आचार्य के,
ाोपज्ञ गण-नीति रीति विधि कार्य के।
विनीतो की सगति रे, करते रख गति मति वैसी, सदा सहलाये' ॥४१॥

मुनिश्री ने मुस्कराते हुए कहा—'जिस प्रकार आम का वृक्ष बारह वर्षों से फलता है ठीक उसी तरह आपका भजन फल गया है। आपका पौत्र दीक्षा के लिए तैयार हुआ है इसे आप सहर्ष अनुमति प्रदान करें।'[1]

यह सुनते ही दादा हताश होकर उठा और बाजार के रास्ते में 'हा! कर्मचन्द! हा! कर्मचन्द! क्या मैं तुम्हें रो रहा हू या तुम मुझे रो रहे हो' इस प्रकार रुदन करता हुआ अपने घर पहुचा। थोड़ी देर बाद ही कर्मचन्दजी का पिता मुनिश्री के निकट आया और बोला—'हेमा बाबा! आप मेरे पुत्र को दीक्षित न करें। इससे मुझे वज्राघात की तरह दुख हो रहा है।' मुनिश्री ने उसको शान्ति से समझाया पर उन पर कोई असर नहीं हुआ। वह वापस लौट गया।

फिर परिवार वालो ने रावजी से पुकार करते हुए कहा—'हमारे एक ही बेटा है, इसके साधु बनने से हमारा नाम उठ जायेगा और वंश परम्परा खत्म हो जायेगी अत. आप इसे समझाने का प्रयास करें।'

रावजी गोकुलदासजी ने कर्मचन्दजी को बुलाकर उक्त बात कही तो वे बोले—'मनुष्य जब परलोक मे जाता है तब उसका नाम शेष हो जाता है। आप ही बतलाइये कि अब तक इस धरती पर किस-किस का नाम चल सका है। जीवित व्यक्ति को भी जब तक स्वार्थपूर्ति होती है तब तक लोग याद करते हैं, अन्यथा सगे-सम्बन्धियों को भी ठुकरा देते हैं। मैं अपनी इच्छा से भगवान् की भक्ति के लिए साधुत्व स्वीकार करता हू, इसमें यदि बाधा देंगे तो आप भी दोषी बनेंगे।'

कर्मचन्दजी के यौक्तिक जवाब को सुनकर रावजी बोले—'हमने तो तुम्हे देखने के लिए बुलवाया था, दूसरा कोई काम नहीं है।' उन्होने तत्काल आरक्षक पुरुष को बुलाकर कहा—'इनके घर वाले व्यक्ति जो बाहर खड़े हैं उन्हें कह दो कि इसकी गर्दन पर तो भगवान् विराजमान हो गये हैं अत. यह आत्मप्रेरित होकर योग साधना के लिए उद्यत हो रहा है। मैं जब स्वय गगाजी जाने की तैयारी कर रहा हू तब इसे मना करके दोष का भागी कैसे बन सकता हू? इस सदर्भ मे तो तुम लोग ही चिन्तन करो। यह तुम्हारी सन्तान है अत जैसा उचित समझो वैसा करो। लेकिन साधुओं के प्रति किंचिद् मात्र भी तकरार मत करना क्योंकि वे तुम्हारी आज्ञा के बिना इसे साधु नहीं बनायेंगे।' रावजी ने इस प्रकार ज्ञातिजनों को कहलाकर कर्मचन्दजी को विदा किया।

रावसाहब ने मुनि वृ द को कहलवाया—'आप यहां सानद रहे, किसी प्रकार

१. जब हूंस बहै इम बापो रे, थारो भजन फल्यो सुखदायो रे।
बारे वर्ष आंबो फलै ताह्यो रे॥
(कर्म० ढा० १ गा० ६)

२. मुनिश्री हेमराजजी १३ ठाणों से देवगढ़ से विहार कर गंगापुर पधारे। वहां भारीमालजी स्वामी के दर्शन कर तीनों नवदीक्षित मुनियों को गुरु-चरणों में समर्पित किया। आचार्यश्री मुनिश्री द्वारा किये गये उपकार से बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने शिक्षार्जन के लिए तीनों मुनियों को वापस मुनिश्री को सौंप दिया।[1]

मुनि कर्मचन्दजी ने हेमराजजी के साथ चार चातुर्मास किये—सं० १८७७ में उदयपुर, सं० १८७८ में आमेट, सं० १८७९ में पीपाड़ और सं० १८८० में पाली। फिर आचार्यश्री रायचन्दजी की सेवा में दो चातुर्मास किये—सं० १८८१ का पीपाड़ और १८८२ का पाली।[2]

ऋषिराय सुयश ढा० ८ गा० १२ में उल्लेख है कि ऋषिराय ने सं० १८८१ पोष सुक्ला ३ को मुनिश्री जीतमलजी को अग्रणी बनाया तब मुनि कर्मचन्दजी, वर्धमानजी, जीवराजजी को उनके साथ दिया।[3] इससे यह प्रश्न होता है कि जब मुनि कर्मचन्दजी मुनि जीतमलजी के साथ थे तब आचार्यश्री रायचन्दजी के साथ सं० १८८२ का चातुर्मास कैसे किया ?

इसका समाधान इस प्रकार है कि मुनिश्री जीतमलजी उक्त तीनों मुनियों के साथ जिस समय मेवाड़ पधारे उस समय मुनिश्री स्वरूपचन्दजी (६२) भी सं० १८८१ का उज्जैन (मालवा) चातुर्मास कर एवं तीन मुनियों—पुजोजी (८८), हिन्दूजी (९१) धनजी (९२) को दीक्षित कर ८ ठाणों से नाथद्वारा (मेवाड़) पधारे। वहां दोनों बन्धुओं का मिलन हुआ। फिर मुनिश्री स्वरूपचन्दजी और

---

१. तीनूं ने दीक्षा देई विशालो रे, हेम आया गंगापुर चालो रे।
निहां भेट्या पूज भारीमालो रे॥
भारीमाल तीनूं नैं तिवारो रे, सूप्या हेम भणी सुविचारो रे।
हेम परम विनीत उदारो रे॥
(कर्मचन्द गु० व० ढा० १ गा० ३२, ३३)
दीक्ष्या दे पूज्य पासे लायो रे, भारीमाल हर्ष बहु पायो रे।
जाण्यो हेम उपकार सवायो॥
(हेम० ढा० ५ गा० ४४)

२. हेम पास चौमासा च्यारो रे, पंचमो छठो अवधारो रे।
ऋषिराय समीपे सारो रे॥
(कर्मचंद गुण व० ढा० १ गा० ३५)

३. "जीत अने वर्धमानजी रे, कर्मचंद नें इकतार।
जीवराज साधु गुणी रे, यां नैं मेल्या देश मेवाड़॥"
(ऋषिराय सुजश ढा० ८ गा० १२)

का विचार न करें। हमेशा जितनी माला का जाप करते हैं उसके अतिरिक्त मेरी ओर से दो माला का जाप और अधिक करें।"[1]

इस प्रकार रावजी ने समझदारी से काम किया जिससे पुर जन में उ अच्छी प्रतिष्ठा हुई।

अभिभावक जनों ने कर्मचन्दजी को घर में रखने के लिए नाना प्रकार उपाय किये पर उनकी दृढता देखकर आखिर उन्हें दीक्षा की स्वीकृति देनी पड़ी।[2] कर्मचन्दजी के साथ रत्नजी और शिवजी दो दीक्षार्थी भाई और थे। उन सबका राजकीय लवाजमा के साथ धूमधाम से दीक्षा महोत्सव किया गया। रावजी गोकुलदासजी ने वैरागी भाइयों को बुलाकर मांगलिक रूप में दो-दो रुपये देते हुए कहा—'इनके बताशे बांटना और साधु-क्रिया का सम्यक् पालन करना।'

तत्पश्चात् सं० १८७६ मृगसर वदि १ को देवगढ़ में मुनिश्री हेमराजजी ने मुनि रत्नजी(८१) शिवजी(८२) और कर्मचंदजी को दीक्षा दी। मुनिश्री कर्मचंद-जी ने अविवाहित वय में माता, पिता, दादा, चाचा तथा बहन को छोड़कर संयम ग्रहण किया। मुनिश्री रत्नजी तथा शिवजी को दीक्षा उसी दिन पहले और कर्मचंदजी को उसी दिन बाद में दीक्षा हुई।[3]

उक्त तीनों दीक्षाओं का विस्तृत वर्णन मुनिश्री रत्नजी (८१) के प्रकर कर दिया गया है।

---

१. साधां नैं रावजी कहिवायो रे, आप सुखी थका रहिज्यो ताह्यो रे।
पिण मन में म आणजो कायो रे।
सदा माला फेरो सुखदायो रे, तिणहिज रीत चित्त चाह्यो रे।
माला फेरजो हरष सवायो रे।
अधिकी दोय माला सुरीतो रे, रावजी री तरफ री वदीतो रे।
आप फेरजो धर अति प्रीतो रे।
(कर्म० गु० व० ढा० १ गा० २७ से २९)

२. कर्मचंद भणी घर मांह्यो रे, राखण न्यातीला किया उपायो रे।
ओ तो अडिग रह्यो अधिकायो रे।
राखण समर्थ नहीं घर मांह्यो रे, जब न्यातीला आज्ञा दीधी ताह्यो रे।
हेम हाथ चरण सुखदायो रे।
(कर्म० गु० व० ढा० १ गा० ३०, ३१)

३. तिणहिज दिन दीक्षा ग्रही, कर्मचन्द सुखकार।
मात तात भगिनी तजी, दादो काको धार।
बहु हट कर से आगन्या, लीधो संजम भार।
(कर्म० गु० ढा० १ दो० ८, ९)

उल्लेख है।[1]

सं० १९०३ में युवाचार्यश्री जीतमलजी ने मुनिश्री हेमराजजी के साथ नाथद्वारा में चातुर्मास किया तब मुनि कर्मचन्दजी भी साथ थे। वहां उन्होंने पानी के आगार से ३१ दिन का तप किया।[2]

सं० १९०५ से १९०८ तक उन्होंने मुनिश्री सतीदासजी (८३) के साथ निम्नोक्त क्षेत्रों में चातुर्मास किये—

| | |
|---|---|
| सं० १९०५ पीपाड़। | वहां १६ दिन का तप किया। |
| सं० १९०६ पाली। | वहां एक तेला किया। |
| सं० १९०७ बालोतरा। | वहां एक पचोला किया। |
| सं० १९०८ पचपदरा (अनुमानत)। | |

(शांति-विलास ढा० १० के आधार से)

३. मुनिश्री कर्मचन्दजी बाल्यावस्था में दीक्षित हुए। वे बड़े विनयी और श्रमशील थे। उनकी बुद्धि और ग्रहण-शक्ति भी प्रबल थी। उन्होंने मुनिश्री हेमराजजी, मुनिश्री जीतमलजी और सतीदासजी के सान्निध्य में जैनागमों का गहन ज्ञान किया। अनेक बार बत्तीस सूत्रों का वाचन किया। सिद्धान्तों के कठिन स्थलों की जयाचार्य से अच्छी धारणा की। उनकी वाचन-शैली, व्याख्यान-कला और लिपि बहुत सुन्दर थी।[3]

४. सं० १९२२ का पाली चातुर्मास कर रामपुरा पधारे तब जयाचार्य ने उनके लिए एक शिक्षात्मक सोरठा रचकर फरमाया—

> वारु समय विनोद, कीधो चित्त अति हितकरी।
> मन में परम प्रमोद, सखरो राखे कर्मसी।
>
> (जय सुजश ढा० ५० सो० २)

---

१. 'जवान ऋषि कर्मचंद ना हो, दर्शन आमेट सुहेज।'
(सरदार सुजश ढा० ८ गा० २६)

२. 'कर्मचन्द इकतीस पाणी रा, कीधा है हर्ष अपारी।'
(हेम नवरसा ढा० ६ गा० २४)

३. कर्मचंद बालक बुधवंतो रे, ओ तो भणियो सूत्र सिद्धंतो रे।
वारु वांचणी अक्षर सुनंतो रे॥
बहु वार वांच्या सुजगीसो रे, वर प्रवचन सूत्र बत्तीसो रे।
स्वाध्याय करत निशि दीसो रे॥
घन कठिन सिद्धांत ना भारी रे, जय गणपति पास उदारी रे।
थल प्रगट धाम्या सुधारी रे॥
(कर्म० गु० व० ढा० १ गा० ३४, ३७, ४३)

जीतमलजी ने १२ ठाणों से कंटालिया (मारवाड़) में ऋषिराय के दर्शन किये।

(स्वरूप नव० ढा० ६ गा० १३ से १५ के आधार से)

वहां ऋषिराय ने मुनिश्री जीतमलजी का चातुर्मास उदयपुर फरमाया। उनके साथ मुनि हिन्दूजी (६१) को दे दिया और मुनि कर्मचन्दजी को अपने साथ रख लिया।'

मुनि कर्मचन्दजी ने सं० १८८३ से सं० १९०४ तक के प्रायः चातुर्मास मुनिश्री जीतमलजी के साथ किये।' बीच-बीच में कई चातुर्मास अलग किये। जिनका उल्लेख इस प्रकार मिलता है।

सं० १८८८ में ऋषिराय ने मुनिश्री जीतमलजी के साथ कच्छ, गुजरात की यात्रा की तब मुनि कर्मचन्दजी साथ थे। आचार्यश्री ने सं० १८८९ का उनका तीन साधुओं से चातुर्मास 'बेला' करवाया।'

सं० १८९३ के बीकानेर चातुर्मास में वे मुनिश्री जीतमलजी के साथ थे। वहां उन्होंने कार्तिक वदी ३ के दिन भगवती सूत्र की प्रतिलिपि की थी।

सं० १८९६ के शेषकाल में युवाचार्यश्री जीतमलजी ने अपने पास से मुनि कर्मचन्दजी और रामजी (१०८) को आमेट चातुर्मास के लिए भेजा।' मुनिश्री कर्मचन्दजी ने सं० १८९७ का चातुर्मास आमेट किया। तीसरे संत मुनि जवानजी थे।

सरदार सती ने दीक्षा लेने के लिए उदयपुर जाते समय आमेट में मुनि जवानजी (५०) तथा मुनि कर्मचन्दजी के दर्शन किये थे, ऐसा सरदार सुजश में

---

१ चिहुं ठाणें ऋषि जीत नो, करायो उदयपुर चोमास।
सग वर्धमान (६७) तपसी भलो, वृद्ध जीव (८६) हिन्दु (६१) गुण रास।
(जय सुजश ढा० १० गा० ६)

२. पछै जीत पास सुविचारो रे, घणां चोमासा किया उदारो रे।
तिण रै जीत सूं प्रीत अपारो रे।
(कर्मचंद गु० व० ढा० १ गा० ३६)

३. जद कर्मचंद नें संत मोती (७७), वलि कृष्णचंदजी (१०४) नें तदा।
ए तीनूं नें चोमास बेले, ठहराय नै गणपति मुदा॥
(जय सुजश ढा० १६ गा० १२)

ऋषि कर्मचंद राम नैं कांई, आंबावती चोमास।
मोलाय मुनि चिहुं संग ले आया, बडेरे सुविमास॥
(जय सुजश ढा० २१ गा० १३)

सं० १९१२ जयपुर[1] ठाणा ४ (चातुर्मास तालिका)।

सं० १९१३ कुवायल ठाणा ३

मुनि जीवोजी कृत स० १९१३ के चातुर्मासों की ढाल गा० ६ मे उल्लेख है कि मुनि कर्मचन्दजी ने कुंवायल चातुर्मास किया और वहा परिषद् मे सम्पूर्ण भगवती सूत्र का वाचन किया[2]।

स० १९१६ जयपुर[3]।

स० १९०८, १९०९, १९१४, १९१५ और १९१७ से १९२५ तक के चातुर्मास प्राप्त नही हैं। स० १९२६ मे उनका चातुर्मास जयाचार्य के साथ था[4]।

७. जोबनेर निवासी बरडिया परिवार के लोग पहले पायचन्द सूरि गच्छ के अनुयायी थे। उन्होंने मुनिश्री कर्मचन्दजी के साथ चार निक्षेपों मे विशेषत: स्थापना निक्षेप पर खूब चर्चा की। उनकी काफी शकाओ का मुनिश्री ने निराकरण किया। फिर वे लोग भाद्रव महीने मे जयपुर गए। वहा भी काफी वार्त्तालाप हुआ लेकिन उन्होंने तेरापथ की श्रद्धा स्वीकार नहीं की। चातुर्मास के पश्चात् मुनिश्री पुनः जोबनेर पधारे और वहा पाच रात्रि प्रवास किया। उस समय भी विविध प्रश्नोत्तर चले। सारी बातें समझने के पश्चात् जोबनेर के प्रायः सभी परिवार वालो ने गुरुधारणा स्वीकार कर ली। उन व्यक्तियो मे मुख्य—१. शिवलालजी २. हरलालजी ३. महाचदजी, ४. मगलचदजी ५ हरचदजी ६ रामलालजी ७. चदालालजी ८. सुलतानमलजी ९. विशालचदजी आदि थे। उनके पुत्र पौत्रादिक इस समय जयपुर नगर मे निवास करते हैं।

(जोबनेर निवासी श्रावकों के कथनानुसार)

उक्त घटना स० १९०४ के आसपास की हो सकती है। स० १९०४ में युवाचार्यश्री जीतमलजी ने जयपुर चातुर्मास किया। उस समय मुनि कर्मचन्दजी

---

१. हाजो कांइ सवत् उगणीसे दुवादस बरस चौमास जो।
जयपुर में गुण गाया पूज प्रसाद थी रे लो।
(मु० कर्मचन्द रचित जयाचार्य गु० ढा० २ गा० ७ 'प्राचीन-गीतिका संग्रह' मे)

२. 'कर्मचद कुवायल मे, ज्ञान गुण राचियो।
पचमो अग अखड, परषद् माहो वाचियो॥'

३. सवत् उगणीसे ने वर्ष सोले, जयपुर सैहर सवाई।
कर्मचन्द आसोज मे रे, मुनि बारु उजल कीर्ति गाई॥
(कर्म० रचित जयाचार्य गु० ढा० ५ गा० ७ 'प्राचीन-गीतिका सग्रह में')

४. छेहडे शक्ति घट्यो गुणरासो रे, सैहर बीदासर सुखे बासो रे।
जय गणपति पास चउमासो रे॥
(कर्म० गु० व० ढा० १ गा० ४८)

५ मुनिश्री की साधना बड़ी पवित्र थी। वे प्राय. स्वाध्याय-ध्यान में तल्लीन रहते थे। उनकी प्रत्येक क्रिया में विवेक, धैर्यता, पापभीरुता और वैराग्य वृत्ति झलकती थी।[1]

मुनिश्री की शासन एवं शासनपति के प्रति अखंड श्रद्धा व हार्दिक अनुरक्ति थी। व अविनीतों की संगति तथा पारस्परिक दलबंदी से सदैव दूर रहते थे।[2]

६ सं० १९०८ माघ शुक्ला १५ को पदासीन होने के पश्चात् जयाचार्य ने मुनि कर्मचन्दजी को अग्रणी बनाया। उन्होंने अनेक क्षेत्रों में विचरकर अच्छा प्रचार किया।[3]

उनके चातुर्मासों की प्राप्त सूची इस प्रकार है—सं० १९११ उज्जैन।[4]

यह चातुर्मास उन्होंने 'उज्जैन के उपनगर—नयापुरा में किया था। वहां नयापुरा की ही गोचरी करते पर दूसरे उपनगर—उरदीपुरा की गोचरी नहीं करते जिससे चातुर्मास के पश्चात् उरदीपुरा में वे एक महीने तक रहे।

(परम्परा के बोल संख्या १५)

---

१ नित्य सझाय निर्मल ध्यानो रे, धारं संवेग रस गलतानो रे।
पाप नो भय तसु असमानो रे॥
(कर्म० गु० व० ढा० १ गा० ४२)

दशवैकालिक तथा उत्तराध्ययन सूत्र का सैकड़ों बार स्वाध्याय (पुनरावर्तन) किया।
(शासन विलास ढा० ३ गा० ४० की वार्तिका)

२. शासण आसता निर्मल नीतो रे, आचार्य सूं अधिक प्रीतो रे।
हुओ देश विदेश वदीतो रे॥
अवनीतां री संगत टालै रे, जिलो भूषण सरीसो भालै रे।
मुनि जिन मार्ग उजवालै रे॥
(कर्म० गु० व० ढा० १ गा० ४४, ४६)

३ संवत् उगणीसै आठै वासो रे, कर्मचंद तणो सुविमासो रे।
जय कियो सिंघाड़ो सुजासो रे॥
मरुधर देश मालव नें मेवाड़ो रे, वली हरियाणो कच्छ दूढाड़ो रे।
विचर्या गुजरात मझारो रे॥
(कर्म० गु० व० ढा० १ गा० ३८, ४७)

४. परनिष नगर उजिण नीको, सत कियो चौमास।
उगणीसै एकादश वरसे, कोधी जोड हुलास॥
(मु० कर्मचंद रचित जयाचार्य गु० व० ढा० १ गा० १३
'प्राचीन गीतिका संग्रह में')

(ख) जयाचार्य को 'युगप्रधान' विशेषण से अलकृत—

हांजी माहरै पूज परम गुरु सोभै सासण माह जो।
जीतमल रिषराज थे सूरज सारखा रे लो।।
हाजी कांई समण संघ नी गुण भवित ना जाण जो।
गुरु तारे गुण वृध करै करि पारखा रे लो।।
हाजी कांई स्वमत-परमत ज्ञाता गण आधार जो।
जुग परधान पद दीपै महिमा भांण ज्यू रे लो।।

*कर्म० गु० व० ढा० १ गा० १, २*
'प्राचीन गीतिका सग्रह मे)

१०. मुनि कर्मचन्दजी को तथा मुनिश्री मोतीजी बडा (७७) को जयाचार्य ने बाजोट पर बैठने की तथा साध्वियों को पढ़ाने की विशेष आज्ञा प्रदान की। मुनि कर्मचन्दजी अपने हाथ से बाजोट बिछाकर बैठ जाते थे पर मुनिश्री मोतीजी के लिए दूसरे बाजोट व आसन आदि बिछाते तब उस पर बैठकर साध्वियों को पढ़ाते और व्याख्यान देते। इस सबध मे जयाचार्य विनोद भरे शब्दों में फरमाते—'हमारे कर्मचन्दजी का तो बेटे का और मोतीजी का बेटी का खर्च है। जिस प्रकार बेटा तो अपने घर मे *सामान्य स्थिति* मे रहता है और बेटी कभी-कभी पीहर आती है तब अधिक मान मनुहार करवाती है और ठाटबाट से रहती है।'

(श्रुतिगत)

११. मुनिश्री ने उपवास, बेला, तेला, चोला, पचोला, आदि की तपस्या अनेक बार की। ऊपर मे एक महीने तक का तप किया।

वे बहुत वर्षों तक शीतकाल मे एक पछेवडी ओढ़ते एव शीत परिषह को सहन करते।

(कर्म० गु० व० ढा० १ गा० ३६ से
४१ के आधार से)

१२ शारीरिक शक्ति क्षीण होने से मुनिश्री ने अपना अतिम चातुर्मास जयाचार्य की सेवा मे बीदासर किया। चातुर्मास के पश्चात् जयाचार्य विहार कर गए परन्तु मुनिश्री अस्वस्थ होने से वही ठहरे। जयाचार्य वापस बीदासर पधारे तब मुनिश्री ने आचार्यश्री के सम्मुख आत्मालोचन करते हुए सभी के साथ सरल भाव से क्षमायाचना की। जयाचार्य ने विविध प्रकार के अध्यात्म पद्य एव महापुरुषों के गरिमामय उदाहरणो द्वारा उनकी भावना को ऊर्ध्वगामिनी बनाया। मुनिश्री बड़े भाग्यशाली थे जिससे उन्हें आखिरी समय मे गुरु का सुखद सान्निध्य प्राप्त हुआ।

वे अत्यत समाधिपूर्वक स० १९२६ ज्येष्ठ कृष्णा सप्तमी को बीदासर मे

उनके साथ थे। संभवत युवाचार्यश्री ने उनको जीवनेर भेजा हो और उन्होंने जीवनेर निवासी बरड़िया परिवार को प्रतिबोध दिया हो।

८. जयाचार्य ने अध्यात्म-भावना से ओतप्रोत होकर दो ध्यान बनाए एक छोटा और दूसरा बड़ा।

मुनिश्री कर्मचन्दजी ने 'बड़ा ध्यान' के आधार से संक्षिप्त रूप में एक ध्यान तैयार किया जो 'कर्मचंदजी स्वामी का ध्यान' नाम से प्रसिद्ध है।

९ मुनिश्री अच्छे कवि थे। उन्होंने जयाचार्य की स्तुति रूप में 'जयत्थुई' नामक लघु कृति प्राकृत भाषा में बनाई। जिसकी १६ गाथाएं अर्थ सहित हैं। इसके अतिरिक्त मुनिश्री सतीदासजी के गुणों की ढाल १, मुनिश्री हेमराजजी के गुणों की ढाल १ तथा जयाचार्य के गुण वर्णन की ५ ढालें बनाईं जो 'प्राचीन गीतिका संग्रह' में हैं। वे उपमा अलंकार एवं भाव-भाषा की दृष्टि से अत्यन्त आकर्षक हैं। उनके कुछ पद्य निम्नोक्त हैं—

(क) जयाचार्य के शासन की जयपुर नगर से तुलना—

सासण जय नगरी तणो रे, खिम्या कोट रह्यो शोभ।
च्यार तीरथ बसे रैयत ज्यों रे, करेयन पामें खोभ।
सासण पुर सोभ रह्यो। जिहां पूज जीत महाराज,
शासन जश छाय रह्यो॥१॥

च्यार बुध निरमल भली रे, च्यार पोल उदार।
ग्यानादिक मारग चिहूं रे, सोभत चोपड़ बाजार॥२॥
गुण सहस्र बहु भवन सूं रे, च्यार रही समरिद्ध।
साधु बड़ व्यहारिया रे, लहै सकल कारज नी सिद्ध॥३॥
दान सीयल तप भावना रे, चिहुं दिश च्यार उद्यान।
आनंद जल सींच्या थका रे, अति रितु सुख नो निधान॥४॥
उपशम वर परसाद में रे, नीत सिंघासण सोय।
पूज नरपत जिम शोभता रे, आग्या छत्र सिर होय॥
स्वमत परमत जस पुणे रे, चामर दोय बे पास।
सजम राजलिछमी तणो रे, करता अधो प्रकाश॥
वैराग सभा मंडप विषै रे, समण सघ उमराव।
पूज निजामक जाणज्यो रे, सासण तारणी नाव॥
धरा विभूषण शोभतो रे, जयपुर जगमग होत।
पूज तणा प्रताप थी रे, जिण धर्म बोध उद्योत॥
उगणीसें ने दुबारसे रे, काती पूनम जोय।
जिण शासण जयवन्तो रे, नगर उपम जग होय॥

(जयाचार्य गु० व० ढा० ४ गा० १ से ९—'प्राचीन गीतिका संग्रह' से)

## ;४।२।३५ मुनिश्री सतीदासजी 'शान्ति' (गोगुंदा)

(संयम पर्याय सं० १८७७-१९०६)

लय—मुश्किल जैन मुनि···

देखो तेरापंथ संघ का अभिनव गौरवमय इतिहास।
गौरवमय इतिहास पाओ अनुपम शांति विलास।
अनुपम शांति विलास सुनलो रुचिकर 'शांति विलास' ।।ध्रु०।।
गोत्र वोहरा जनक बाघजी, गोगुंदा में वास।
नवला जननी तीन बंधु मे, सतीदास सुत खास ।।देखो···१।।
कोमल शान्त प्रकृति दिल उज्ज्वल, मुख मे भरा मिठास।
संस्कारांकुर लगे पनपने, बढ़ता पुण्य प्रकाश ।।२।।

### दोहा

भाग्यवान् संतान से, सुख संपद् विस्तार।
ग्रहमणि को पाकर हुआ, प्रमुदित सब परिवार ।।३।।
सतीदास का कर दिया, शिशु वय मे सबंध।
था उनके प्रति स्वजन का, अधिक स्नेह अनुबंध ।।४।।
भिक्षु आदि मुनि साध्वियां, आते वहा विशेष।
जिससे धार्मिक भावना, बढती रही हमेश ।।५।।
श्रमणोपासक-श्राविका, तत्त्वविज्ञ सुविनीत।
करते मुनि-सम्पर्क कर, तप जप आदि पुनीत ।।६।।
समझा परिजन शांति का, पाया धर्म निरोग।
मणि काचनवत् मिल गया, मुनि श्रमणी का योग ।।७।।
साल तिहोत्तर में वहां, आये भारीम
चहल पहल भारी लगी, घर घर मंगलम

हेम जीत ने कहा शान्ति से, देख श्रेष्ठ अवकाश।
प्रकट करो दोनों नियमों को, भर साहस सायास ॥१८॥
रात्रि समय व्याख्यान बीच में, उठ बोले मुनि पास।
है कुशील-वाणिज्य-प्रतिज्ञा, जब तक तन में श्वास ॥१९॥
ऊंचे स्वर से कहकर बैठे, करते समताभ्यास।
किया हेम ने जोर शोर से, चालू शील समास ॥२०॥
सुनकर बोले वचन श्रातिजन, होकर बड़े उदास।
निद्रा-घूर्णित शिशक उठा यह, क्या इसका विश्वास ॥२१॥
कुछ दिन बाद एक नर आया, लगी राज्य चपरास।
बोला हुक्म रावजी का है, न करें यहां निवास ॥२२॥
पश्चिम रजनी में मुनिश्री को, बोले श्रावक खास।
नहीं रहेंगे हम भी पुर में, गुरु अनुपद पद-न्यास ॥२३॥
राज्य कार्यकर्त्ताओं को जब, हुआ उक्त आभास।
बोले आकर करें यहां पर, संतो ! सुख से वास ॥२४॥

## दोहा

एक मास मुनिवर रहे, फिर रावलियां स्पर्श।
शहर उदयपुर में किया, चतुर्मास उस वर्ष ॥२५॥
शान्ति साधनालीन हो, करते धर्म-ध्यान।
सहते हैं समभाव से, आते जो व्यवधान ॥२६॥

## रामायण-छन्द

त्याग बिना ही कहा शान्ति ने है सचित्त पानी का त्याग।
माता प्रासुक जल न पिलाती गाती जाती अपनी राग।
भोजन किया हुआ था पहले जिससे अधिक सताती प्यास।
सवा प्रहर तक घोर वेदना सही शांति ने पर न उदास ॥२७॥
उदक अचित्त पिलाया मां ने आखिर सुत की देख व्यथा।
लोगों ने सुन कहा शान्ति की धृति क्षमता की अजब कथा।
वचन मात्र में इतनी दृढता तो क्या कहना नियमों का।
सुन जन मुख से हर्षित तन मन हुआ हेम जय मुनियों का ॥२८॥

## दोहा

एक 'बनोला' तो लिया, भोजन किया गरीष्ठ।
ली सामायिक शाम को, सयम-भाव वरीष्ठ॥३७॥
श्रावक बातें कर रहे, देख वरोत्सव रग।
नरकादिक की यातना, करने से व्रत भग॥३८॥
सुनकर दिल में शांति के, कपन हुआ अथाह।
नियम निभाना अटलतम, नही छोडना राह॥३९॥

## रामायण-छन्द

दिवस दूसरे तीन घरों का आमंत्रण आया सादर।
कहा शान्ति ने शिर में पीडा अतः न जा सकता पर घर।
साफ घोषणा कर दी फिर तो शादी करने का न विचार।
मैं पक्का निर्णय कर पाया लेना मुझको सयम भार॥४०॥

लय—म्हारी रस सेलडियां…

लेते रे लेते, दीक्षा लेते हैं शान्ति उमग से।
देते रे देते, शिक्षा देते हैं जीत प्रसग से॥ध्रु०॥
आये तदा हेम जय चलके, मिला सबल सहयोग।
पाग-वध के त्याग दिलाकर, मेट दिया सब रोग रे।लेते…॥४१॥
हेम जीत ने एक मास तक, रहकर किया विहार।
निकट बडी रावलियां आकर, ठहरे हैं अणगार रे॥४२॥
पीछे से तज पाग सुरगी, चले सदन से शान्ति।
जा बाजार बीच मेडी मे, बैठे तजकर भ्रान्ति रे॥४३॥
सामायिक स्थिर चित्त वृत्ति से, करते मह स्वाध्याय।
यत्न कर रहे चरण रत्न हित, सोच रहे सदुपाय रे॥४४॥
उनका श्वसुर वहां पर आया, बोले तब कुछ भ्रात।
श्री जबूवत् शान्ति करेगा, जग में नूतन बात रे॥४५॥
किया मिथुन का त्याग प्रथम ही, जिसका यह अनुमान।
कर विवाह वनिता को तजकर, होगा साधु महान रे॥४६॥
श्वसुर कह रहा—कहे शान्ति जो मुख से वचन अमोघ।
घर में मैं आजन्म रहूंगा, कभी न लूंगा योग रे॥४७॥

एक दिवस जननी बोली है कर शादी करना स्वीकार।
वरना मक कूप में गिर कर मरने लगी उगर अतिचार।
इस प्रकार भय दिखलाने से मान लिया सुत ने बिन चाह।
मिलजुल ज्ञातिजनों ने उनका झटपट स्थापित किया विवाह॥२९॥

लय—सारो रा सुणा है बारणा···

शादी की हुई तैयारियां, मिला है बहु परिवार।
शादी की हुई तैयारियां, मिला है रंग अपार॥ध्रु०॥

सगे सबंधी बहु आये ग्राम ग्राम से,
उत्सुक हो भाई बहन बेटियां आराम से।
पाहुणों का होता सत्कार॥शादी···३०॥

बाजों की जोरदार उठती धुकारें,
गाती हैं गीत बहिनें मंगलमय प्यारे।
लगी है नई बहार॥३१॥

भरी है चावल मूंग गेहूं से कोठियां,
शक्कर घी आदिक की चढ़ी है चोटियां।
लाये हैं नाना वेपवार॥३२॥

मेवा मिष्टान मुखवासादि लाये,
मनमाने नेकचार सबही मनाये।
पाये हैं हर्ष अपार॥३३॥

सोने के गहने व कपड़े भी भारी,
करली एकत्र शीघ्र सामग्री सारी।
नौली में भरे कलदार॥३४॥

चलती आडम्बरों की जैसी परम्परा,
करते हैं लोग नहीं चिंतन की उर्वरा।
सादगी में कितना है सार॥३५॥

बिना मन हुआ देखो भौतिक रंग राग है,
सतीदास दिल में तो सच्चा वैराग है।
होता अब स्वप्न साकार॥३६॥

छोड़ सगाई परिणीता को, लेते बहु धन-राह।
मंडा विवाह यनोले गापे, सत बने ये याह ॥६२॥
हुआ बड़ा उद्योत धर्म का, पाये अचरज लोग।
चौथे आरे का पंचम में, सम्मुख देख प्रयोग ॥६३॥
विदा हुए मुनि हेम वहां से, ले नव-दीक्षित साग।
भारी गुरु के दर्शन करके, भेंट किया गामग ॥६४॥
दीक्षा बड़ी पूज्य ने दी है, सात दिनों के बाद।
वापस शांति हेम को सौंपा, शिक्षा हित साह्लाद ॥६५॥
मिला शांति को भव्य भिक्षु गण, गण को शांति प्रशांत।
मणिकांचन का योग उच्चतम, समझें इसको नितांत ॥६६॥
पंच महाव्रत समिति गुप्ति में, सावधान हर श्वास।
विनय भक्ति से हेम पास मे, करते विद्याभ्यास ॥६७॥
गणपति वा गणपति के विनयी, मुनियों से इकतारी।
जय से तो पय जल सम निर्मल, एकीपन था भारी ॥६८॥
किये चार कंठाग्र जिनागम, पढ़े सभी दे ध्यान।
सूक्ष्म रहस्यों के बन वेत्ता, सीखे बहु व्याख्यान ॥६९॥
प्रतिनिधि बने हेम के जब मुनि जीत हुए अग्रेश।
व्याख्यानादि कार्य कर रहे, यथा हेम निर्देश ॥७०॥
सप्तवीस संवत्सर साधिक, रहे हेम के पास।
सेवा की है अन्त समय तक, उपजाया उल्लास' ॥७१॥
देख योग्यता हृदय खोलकर, दिया हेम ने ज्ञान।
विविध गुणों से स्थान बढ़ा है, और बढ़ा सम्मान' ॥७२॥
किये अग्रणी छह मुनियों से, स्वर्ग गये जब हेम।
तारण तरणीवत् धरणी पर, विचर रहे सह क्षेम ॥७३॥
कठ मधुर मृदु भाषी कोमल, क्षमामूर्ति मुनिराज।
दर्शन सेवा कर सुन प्रवचन, खिलता सकल समाज ॥७४॥

### गीतक-छन्द

प्रथम पुर पीपाड़ मे पाली इतर सुखवास है।
तीसरा बालोतरा में किया चातुर्मास है॥
लाभ पचपदरा धरा को दिया चौथी बार है।
मरुधरा की गोद में ये हुए पावस चार हैं' ॥७५॥

शीतकाल मे शीत सहा कर शीत स्थान मे वास।
सत्ताईस साल तक लगभग, लाख लाख शावाश' ॥८८॥
साधिक चार साल मुनि विचरे, भरते धर्म-सुवास।
स्वोपकार सह परोपकार हित, करते अधिक प्रयास ॥८९॥

## रामायण-छन्द

अन्तिम पावस बीदासर मे धर्म-ध्यान की चली नहर।
उपदेशामृत रस मिलने से तप की लम्बी चली लहर।
हुआ बहुत उपकार वहा पर अचरज पाये स्व-पर मती।
धन्य-धन्य मुनि शांति शुभकर यशोनाद की ध्वनि उठती' ॥९०॥
बीकानेर शहर से चलकर आया एक वहा कासीद।
मुनि के शुभागमन की सुंदर लाया अनुनय भरी रसीद।
बोले शांति स्वरूप कहेंगे उसी दिशा मे गमन विशेष।
*क्रमशः मृगसर एकम आई लाई विहरण का संदेश ॥९१॥*
वस्त्र श्रावकों के घर से मुनि लाये उस दिन विधि अनुसार।
देख पुरानी पटी शान्ति के करते भावभरी मनुहार।
नव पछेवड़ी आप लीजिए आया सर्दी का मौसम।
देंगे श्रमण 'स्वरूप' हाथ से तब ही लूंगा किया नियम ॥९२॥

## दोहा

किया अधिक हठ हरख ने, तब तो दृढ प्रतिज्ञ।
त्याग कर दिया शान्ति ने, नीति रीति के विज्ञ ॥९३॥

## रामायण-छन्द

चंदेरी पावस कर आये जय-वाधव पुर बीदासर।
रहे साथ मे मुनि श्री उनके कल्प-ज्येष्ठ मुनि के सहचर।
ऋषि स्वरूप ने कहा शान्ति से जाओ अब तुम बीकानेर।
स्वीकृत किया वचन व्रतिवर ने किन्तु विषम है विधि की टेर ॥९४॥
पुर बाहर शौचार्थ गये मुनि हुई वेदना आकस्मिक।
उठा स्थान पर लाये मुनिवर मूर्छित ऋषि को तात्कालिक।
औषधादि उपचार किये पर गये सभी बेकार इलाज।
बंद जबान घोरतम पीड़ा बीता पांच प्रहर अन्दाज ॥९५॥

दोहा

चतुर्मास पूरा हुआ, आया मृगसर मास।
पुर जसोल बालोतरा, आये वापावास ॥७६॥
किया दिवस पच्चीस का, 'मुनि ने वहा प्रवास।
सुना वहा ऋषिराय ने किया स्वर्ग में वास ॥७७॥
थली देश में आ रहे, शान्ति जहां गण-नाथ।
मिले साधु बहु मार्ग मे, हुए आपके साथ ॥७८॥
जय ने भेजे सामने, सानुग्रह दो संत।
पहुचे वे पुर ईडवा, तीस कोस पर्यन्त ॥७९॥

लय—म्हारे घरे पधार...

अनुपम दृश्य दिखायाजी २। चार तीर्थ के रोम रोम में हर्ष बढ़ाया जी।
॥ध्रु० ॥

आये जिस दिन शान्ति लाडनू, दिया अधिक सम्मान।
अगवानी के लिए जीत ने, भेजे सन्त सुजान ॥अनुपम...८०॥
नर-नारी सम्मुख जा देते, मुनि चरणों मे धोक।
अद्भुत मेला लगा शहर मे, फैला नव आलोक ॥८१॥
बहु ऋषियो सह वन्दन करते, जय पद मे मुनि शान्ति।
क्षरा अमित रस गुरु दर्शन से, चमक रही मुख कांति ॥८२॥
साग्रह बाह पकड़ कर जय ने, बिठलाये सम स्थान।
नीचे उतर धरा पर ही वे, बैठे चतुर सुजान ॥८३॥
छटा देखकर संघ चतुष्टय, पाया परमानद।
जय जय की ध्वनियो से गूजा, शासन सुयश अमद ॥८४॥
मुक्त किया भोजन विभाग से, मुनि को दे बहुमान।
भर परिषद् मे मुक्त स्वरो से, गुण का किया बयान ॥८५॥
त्रायस्त्रिंश दोगुन्दक सुर ज्यो, सुरपुर मे हरि पास।
वैसे करते शान्ति हमारे, सन्निधि मे सुखवास' ॥८६॥

लय—मुश्किल जैन मुनि...

विगय त्याग उपवास आदि बहु, ऊपर में दृढ़ भाग।
तप सह जप स्वाध्याय ध्यान का, मिला दिया अनुराग ॥८७॥

१. मुनिश्री सतीदासजी मेवाड़ प्रदेशान्तर्गत गोगुंदा (मोटागाम) के निवासी, जाति से ओसवाल और गोत्र से बरल्या बोहरा 'कोठारी' थे। उनके पिता का नाम बाघजी और माता का नवलांजी था। सतीदासजी का जन्म सं० १८६१ में हुआ। वे तीन भाई थे—१. धूलजी २. सतीदासजी ३. फौजमलजी। उनके दो बहिनें थी—नदूजी, गुमानांजी[1]।

सतीदासजी प्रकृति से शान्त और कोमल थे। उनकी आकृति भी सुंदर और आकर्षक थी जिससे सभी परिवार को वे अत्यंत वल्लभ लगते थे। माता-पिता ने छोटी उम्र में ही निकटस्थ रावलियां ग्राम में उनकी सगाई कर दी।

तेरापंथ के तृतीय आचार्यश्री रायचन्दजी की जन्मभूमि रावलियां होने से साधु-साध्वियों का गोगुंदा, रावलियां आदि क्षेत्रों में अधिक आवागमन रहता था। वहां के श्रावक जीवादिक तत्त्वों के अच्छे जानकार थे। संत-सतियों की सेवा बड़ी दिलचस्पी से करते थे। तप-जप आदि धार्मिक अनुष्ठान में भी पूर्ण जागरूक थे। सतीदासजी के ज्ञातिजन भी साधु-संपर्क करके धर्म के मर्म को समझे और सच्चे श्रद्धालु बने[2]।

सं० १८७३ में द्वितीयाचार्य श्री भारीमालजी श्रमण परिवार से गोगुंदा पधारे। स्थानीय लोगों ने उनके दर्शन एवं प्रवचन आदि का लाभ लेकर अपूर्व आनन्द प्राप्त किया। सतीदासजी की उस समय बाल्यावस्था थी परन्तु वे बड़े विवेकी, विनम्र और बुद्धिमान् थे। गुरुदेव के मुखारविन्द को देखकर वे अत्यंत प्रभावित हुए और मुनि श्री पीथलजी (२६) के पास तत्त्वबोध करने लगे। जो व्यक्ति हलुकर्मी व संस्कारी होते हैं उनके सहजतया धर्म के प्रति अनुराग उत्पन्न

---

१ सैंहर गोघूदों सोभतो रे, अधिक धर्म उपगार रे।
सत हुआ बहु सोभता रे लाल, श्रावक बहु सुखकार रे।
बाघजी कोठारी तिहां वसै रे, जाति बरल्या बोहरा सार रे।
तै पालै व्रत श्रावक तणां रे लाल, नवला तेहनैं नार रे।
उदरे तेहनैं ऊपनो रे, सतीदास सुखदाय रे।
सुख धन वृद्धि होवै सही रे लाल, पुनवन्त सुतन पसाय रे।
(शान्ति विलास ढा० १ गा० २ से ४)

नवलां मात सरल भली, बहिन वे नदू गुमान कै।
ज्येष्ठ सहोदर धूलजी, लघु फोजमल जाण कै॥
(शान्ति विलास ढा० ७ गा० १६)

२. न्यातीला सतीदासजी तणा रे, वलि अवर नगर ना लोग रे।
धर्म माहे समझ्या घणां रे, लाल, सुभ तणो मजोग रे।
(शान्ति विलास ढा० १ गा० १३)

यह बात सुनी तो सतीदासजी की दृढ़ता की सराहना करते हुए कहा—'सतीदास जब अपने वचन की भी इतनी पाबन्दी रखता है तो उसके नियमों का तो कहना ही क्या ?' मुनि हेमराजजी, जीतमलजी को भी भाइयों द्वारा इस घटना की जानकारी हुई तो वे भी बहुत प्रसन्न हुए।

एक दिन मोहवश मां ने कहा—'पुत्र ! तू शादी करना मंजूर कर ले, वरना मैं कुए में गिरकर मरती हूं।' यह कहती हुई माता ने उस ओर कदम भी उठा लिया। इस प्रकार भय दिखलाने पर सतीदासजी को मन न होते हुए भी विवाह की स्वीकृति देनी पड़ी। ज्ञातिजन यही चाहते थे और सोचते थे कि विवाह होने के पश्चात् उसका वैराग्य उतर जाएगा। उन्होंने शीघ्रातिशीघ्र विवाह की तैयारियां कर ली और उसकी स्थापना के सारे नेकचार शुरू कर दिए[1]।

सतीदासजी ने प्रारम्भिक बनोले में परिवार वालों के घर जाकर खाना खाया परन्तु उनके मन में हिचकिचाहट रही। जिसमें वे सध्या के समय श्रावकों के साथ सामायिक करने लगे। श्रावकों ने परस्पर वार्त्तालाप करते हुए कहा—'जो व्यक्ति नियम लेकर तोड़ देता है वह महापाप का भागी बनता है और उसे नरक निगोदादिक का दुःख सहन करना पड़ता है।' सतीदासजी ने सुना तो उनका दिल कांपने लगा। उन्होंने दृढ़ता-पूर्वक नियम निभाने का निश्चय कर लिया। दूसरे दिन भोजन के लिए तीन घरों से आमन्त्रण आया किन्तु उन्होंने मेरे शिर में दर्द है, ऐसा कहकर उसे टाल दिया। विशेष आग्रह करने पर स्पष्ट रूप से उत्तर दे दिया

---

पछै मात अचित जल पावियो, अडिग दृढ़ इम जाचो अति साचो वचन प्रमाणें हो लाल ॥
(शान्ति विलास ढा० ४ गा० ६, ७)

शुद्ध वचन में पिण दृढ़ एहवो, तो त्याग तणो स्यू कहिवो दिढ रहिवो अधिक उदारू हो ला० ।

सेठापणो देखी करी लोक, अचभो पाया हुलमाया महा सुखकारू हो लाल ।
(शान्ति विलास ढा० ४ गा० ८)

१. एक दिवस मां मोह वस, बोली वचन विरूप।
कै मानेलै परणवो, नही तो पडसू कूप॥
इण विध करी डरावणी, चाली पग भर जाण।
सतीदास डरतै छतै, मान्यो वचन माडाण॥
न्यातीला हरपत हुआ, गाया सूहव गीत।
मूग ढोलिया सुभ दिनै, थाप्यो व्याह पुनीत॥
(शान्ति विलास ढा० ५ दो० ३ से ५)

थे जो पचों में प्रमुख, धर्म दलाली में अग्रणी और चिंतनशील व्यक्ति थे। वे सब चिंतन कर सतीदासजी के घर पहुंचे। सतीदासजी को भी वहां बुला लिया। अन्य लोग भी एकत्रित हो गए।

पंचों ने सतीदासजी से पूछा—'तुम्हारा क्या विचार है?' सतीदासजी ने सकोचवश कुछ जवाब नहीं दिया। दूसरी बार पूछने पर भी मौन रहे। तब एकलिंगदासजी ने उनकी पीठ पर हाथ रख कर पूछा तो स्पष्ट उत्तर देते हुए कहा—'मेरी विवाह करने की बिल्कुल इच्छा नहीं है, सयम लेने की ही प्रबल भावना है।' उनका दृढ़तम निर्णय सुनकर एक बार एकलिंगदासजी का दिल भी द्रवित हो गया। फिर धैर्य पूर्वक उन्होंने सतीदासजी के बड़े भाई धूलजी आदि को समझाया और मन को मजबूत कर आज्ञापत्र लिख देने के लिए कहा, तब अभिभावक जन ने आज्ञा का कागद लिखा[1]। घर वालों ने मोहवश सतीदासजी को घर मे रखने के अनेक उपाय किये पर सवेग रस मे लहलीन सतीदासजी अपने लक्ष्य से विचलित नहीं हुए। लगभग तीन वर्षों की दीर्घ अवधि के पश्चात् विवश होकर ज्ञातिजनों को सहमत होना पड़ा।

एकलिंगदासजी आज्ञापत्र लेकर रावलिया गए और मुनिश्री को समग्र वृतात सुनाते हुए निवेदन किया कि अब जल्दी गोगुदा पधार कर सतीदासजी को दीक्षा प्रदान करें। ये समाचार सुनकर मुनिश्री हेमराजजी और जीतमलजी आदि सभी साधु अत्यत प्रसन्न हुए और शुभ दिन देखकर गोगुदा की धरती को पावन किया। पुर-जन मे नया रंग व नई उमंग छा गई। सतीदासजी के मन मे तो आनद

---

सतीदासजी तिण समें रे लाल, मेडी सू ऊतर आय।
अति शर्म पिण साहस धरी रे लाल, बोल्या एहवी वाय॥
आप्या दरावो मो भणी रे लाल, सजम लेणो सार।
झट इम कहि चढिया सही रे लाल, पाछा मेडी मझार॥
(शान्ति विलास ढा० ५ गा० १५ से १७)

१. ज्येष्ठ सहोदर सतीदासजी नो धूलजी,
कहै 'एकलिंगजी' तास वचन अनुकूल जी।
नहीं राखें घर माहि आज्ञा थानें दीजियें,
कठिन छाती कर आज्ञा नो कागद कीजियें।
एक कहि नै आज्ञा नो कागद लिखावियो,
सतीदासजी नो सोच जजाल मिटावियो।
भगनी मात वे भ्रात नो घणो,
पिण मूल न ॥

मुनिश्री ने इसी दिन वहां से विहार किया और सीधा राजनगर में आचार्यश्री भारमलजी के दर्शन कर, नव दीक्षित मुनि को गुरु चरणों में समर्पित किया। उन्होंने इतने से सुकुमार शिशु को देखकर मुनि सतीदासजी के रोम-रोम प्रफुल्लित हो गए। भारमलजी स्वामी ने हार्दिक प्रसन्नता प्रकट करते हुए मुनि हेमराजजी के प्रयत्न प्रयास की भूरि-भूरि प्रशंसा की। उनके मन में हर्ष की लहर दौड़ गई। सात दिनों के पश्चात् स्वयं आचार्यश्री ने सतीदासजी को बड़ी दीक्षा दी और वापस मुनि हेमराजजी को सौंप दिया। सतीदासजी मुनिश्री के सान्निध्य में विद्याभ्यास करने लगे[१]।

(शान्ति विलास ढा० १ से ढा० ४ दो० ७ तक के आधार से)

मुनिश्री जीवोजी (८६) की दीक्षा पोष महीने में हुई और बड़ी दीक्षा छह महीनों के बाद हुई तथा सतीदासजी की दीक्षा माघ महीने में और बड़ी दीक्षा सात दिन बाद में हो गई, इससे सतीदासजी जीवोजी से बड़े हो गए। (ख्यात)

दीक्षित होने के पश्चात् सतीदासजी 'शान्ति' नाम से भी पुकारे जाने लगे। शांति मुनि को जिन शासन जैसा शांति निकेतन एवं जिन शासन को शांति मुनि जैसे शान्ति प्रधान सदस्य मिले। इसे एक मणिकांचन योग व विधि का विधान संयोग ही समझना चाहिए।

२. मुनि सतीदासजी हेमराजजी स्वामी के पास विनय नम्रता पूर्वक रहते हुए अपना जीवन निर्माण करने लगे। आचार्यश्री भारमालजी, मुनिश्री खेतसीजी और रायचन्दजी के प्रति अगाढ़ श्रद्धा व भक्ति भरी भावना रखते। मुनिश्री हेमराजजी के प्रति तो उनका दूध पानी की तरह एकीभाव हो गया था[२]। फिर

---

१. समय दे सतीदास नैं, हेम चौथ मुनि आदि।
भारीमाल नैं आविया, पाम्या परम समाधि॥
परम पूज नैं पेखनैं, पाम्या अधिको प्रेम।
सुण सुण नैं मटका करै, हरष सवाया हेम॥
सतीदासजी नैं सही, दीधा घणा लगाय।
भारीमाल हरख्या घणा, फाबो मठा लग जाय॥
पूज तणी आज्ञा थकी, हेम सग सतीदास।
सखर समय रस सीखतो, चारु ज्ञान अभ्यास॥
सात दिवस बीतां पछै, वारोवार सुन्हाल।
बड़ी दीक्षा सतीदास नैं, दीधी भारीमाल॥
(शान्ति विलास ढा० ८ दो० ४ से ८)

२ हेम संग रहै सतीदासो रे, ज्ञान ध्यान नो करत अभ्यासो रे।
चारु विनय गुणे सुविमासो॥

कि मेरा परिणय करने का कतई विचार नहीं है'।

इस प्रकार आपस में तनातनी चलने लगी। उन्हीं दिनों मुनिश्री हेमराजजी, जीतमलजी आदि सं० १८७७ का उदयपुर चातुर्मास सम्पन्न कर मृगसर महीने में गोगुंदा पधारे। जय मुनि ने चिंतन कर सतीदासजी को जब तक दीक्षा की आज्ञा न मिले तब तक सिर पर पाग बांधने का त्याग दिला दिया[1]। मुनिश्री एक महीना वहां विराज कर बड़ी रावलियां पधार गए। पीछे से सतीदासजी खुले सिर बाजार के बीच 'मेड़ी' में जाकर सामायिक करने लग गए[2]। उस समय सतीदासजी का ससुर रावलियां से आया और उसने जन-जन के मुंह से सुना कि सतीदासजी ने ब्रह्मचर्य व्रत ग्रहण कर लिया है और विवाह का त्याग नहीं किया है इससे लगता है कि जम्बूकुमार की तरह शादी करते ही दीक्षा ले लेंगे। ससुर ने जनसमूह से कहा—'सतीदासजी अपने मुख से यह कह दें कि मैं घर में रहूंगा और साधु नहीं बनूंगा तो मैं अपनी पुत्री का परिणय करूंगा किन्तु जब घर वाले बलात् विवाह कर रहे हैं तब मैं उन्हें कन्यादान कैसे कर सकता हूं।'

उसी समय गांव के पंच किसी कार्यवश उस रास्ते से निकले। उन्हें देखकर सतीदासजी 'मेड़ी' से नीचे आये। लज्जाशील अधिक होने पर भी साहस पूर्वक बोले—'पंचो! आप मुझे संयम लेने की अनुमति दिलाएं।' इतना कहकर तुरंत ऊपर चले गए[3]। पंचों में एक सतीदासजी के बहनोई एकलिंगदासजी मादरेचा भी

1. जब गणनाथ भी आवता रे लाल, लोक करै निज ख्याल।
सैंतन सांभली पुन्य गहे रे लाल, नरक निगोदे जाय॥
सतीदास सांभली रे लाल, डर पाम्यो दिल मांहि।
निश्चय नम निज निरमलो रे लाल, पागनो आण ओढाहि॥
बीज दिन बागायता रे लाल, तीन घरी सा ताम।
आया मन आनन्द सूं रे लाल, अति उमंग अभिराम॥
सतीदासजी इम कहै रे लाल, गुरु भाखो पुजी नाथ।
पछे घणा उमर दिया रे लाल, नहिं परणवा रा परिणाम॥
(शान्ति विलास ढा० ४ गा० २ से ५)
2. [illegible] रे लाल, [illegible]।
[illegible] रे लाल, [illegible]॥
(शान्ति विलास ढा० ४ गा० [illegible])
3. [illegible] सतीदासजी रे लाल, रही बाजार मांहि।
[illegible] रे लाल, [illegible] दिन मांहि॥
(शान्ति विलास ढा० ४ गा० १०)
4. [illegible]।
[illegible]॥

मुनिश्री ने उसी दिन वहां से विहार किया और शीघ्र राजनगर में आचार्यश्री भारीमालजी के दर्शन कर नव दीक्षित मुनि को गुरु-चरणों में समर्पित किया। आचार्य प्रवर के मुखारविन्द को देखकर मुनि सतीदासजी के रोम-रोम प्रफुल्लित हो गए। भारीमालजी स्वामी ने हार्दिक प्रसन्नता प्रकट करते हुए मुनि हेमराजजी के सफल प्रयास की भूरि-भूरि सराहना की। सम्पूर्ण संघ में हर्ष की लहर दौड़ गई। सात दिनों के पश्चात् स्वयं आचार्यश्री ने सतीदासजी को बड़ी दीक्षा दी और वापस मुनि हेमराजजी को सौंप दिया। सतीदासजी मुनिश्री के सान्निध्य में विद्याभ्यास करने लगे[1]।

(शान्ति विलास ढा० १ से ढा० ८ दो० ७ तक के आधार से)

मुनिश्री जीवोजी (८६) की दीक्षा पोष महीने में हुई और बड़ी दीक्षा छह महीनों के बाद हुई तथा सतीदासजी की दीक्षा माघ महीने में और बड़ी दीक्षा सात दिन बाद ही हो गई, इससे सतीदासजी जीवोजी से बड़े हो गए। (ख्यात)

दीक्षित होने के पश्चात् सतीदासजी 'शान्ति' नाम से भी पुकारे जाने लगे। शांति मुनि को भिक्षु-शासन जैसा शांति निकेतन एवं भिक्षु शासन को शांति मुनि जैसे शान्ति प्रधान सदस्य मिले। इसे एक मणिकांचन योग व विधि का विचित्र संयोग ही समझना चाहिए।

२. मुनि सतीदासजी हेमराजजी स्वामी के पास विनय नम्रता पूर्वक रहते हुए अपना जीवन निर्माण करने लगे। आचार्यश्री भारीमालजी, मुनिश्री खेतसीजी और रायचंदजी के प्रति अखंड श्रद्धा व भक्ति भरी भावना रखते। मुनिश्री जीतमलजी के प्रति तो उनका दूध पानी की तरह एकीभाव हो गया था[2]। फिर

---

१. संजम दे सतीदास नैं, हेम जीत मुनि आदि।
भारीमाल पैं आविया, पाम्या परम समाधि॥
परम पूज नैं पेखता, पाम्या अधिको पेम।
लुल लुल नै लटका करै, हरष सवायो हेम॥
सतीदासजी नैं सही, दीधो पगा लगाय।
भारीमाल हरख्या घणा, कह्यो कठा लग जाय॥
पूज्य तणी आज्ञा थकी, हेम संग सतीदास।
मखर समय रस सीखनो, वारू ज्ञान अभ्यास॥
सात दिवस बीतां पछै, वारोवार गुन्हास।
बडी दीख्या सतीदास नैं, दीधी भारीमाल॥

(शान्ति विलास ढा० ८ दो० १ से ८)

२. हेम संग रहै सतीदासो रे, ज्ञान ध्यान मों [illegible]।
[illegible]॥

की उल्लास तरंगें उल्लसित होने लगी। पारिवारिक जन ने बड़ी धूमधाम से उनका दीक्षोत्सव मनाना प्रारंभ किया। विवाह की बनोरियां दीक्षा रूप में परिणत हो गईं। शान्तिजती ने पूरे दिल से कई दिनों तक संयम महोत्सव मनाकर अपनी उमंग को पूरा किया।[1]

सतीदासजी ने १६ वर्ष की अविवाहित वय में माता, भाई, बहन आदि विपुल परिवार तथा बहुत ऋद्धि को छोड़कर सं० १८७७ माघ शुक्ला ५ बुधवार को गोगुंदा में आम्रवृक्ष के नीचे मुनिश्री हेमराजजी के कर-कमलों से संयम ग्रहण किया[2]। उस अवसर पर अनेक गांवों के हजारों भाई-बहन दर्शक रूप में उपस्थित हुए। मुख-मुख पर सतीदासजी के उत्कट वैराग्य की चर्चा होने लगी। लोग कहने लगे—'कई व्यक्ति सगाई छोड़कर और कई परिणीता स्त्री को छोड़कर दीक्षित होते हैं पर इन्होंने तो मंडे हुए विवाह को ठुकरा कर यौवन के नव वसंत की खिलती हुई वय में चारित्र ग्रहण कर भौतिक युग को नई चुनौती देने वाला उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत कर सतयुग का दृश्य कलियुग में साक्षात्कार कर दिया। मुनिश्री हेमराजजी के शुभागमन से एवं सतीदासजी की प्रभावशाली दीक्षा के कारण गोगुंदा में धर्म का अच्छा उद्योत हुआ[3]।

---

१. आपके दीक्षा महोत्सव का वर्णन शान्ति विलास ढा० ७ गा० १ से १२ तक में विस्तृत रूप से है।

२. हेम ऋषि निज हाथ सूं आ०, वसंत पंचम बुधवार के आ०।
अंब वृक्ष तल आमने आ०, संजम दीधो सार के आ०॥
सोले वर्ष रे आसरे आ०, सतीदास सुखकार के आ०।
भ्रात मात भगनी तजी आ०, लीधो संजम भार के आ०॥
(शान्ति विलास ढा० ७ गा० १४, १५)
सोले वर्ष नी वय अति सुन्दर, बहु ऋद्ध जान कोठारी।
वसंत पंचमी वर्ष हगामे, चरण लियो सुखकारी॥
(जय सुजश ढा० ७ गा० ७)

३. केइ सगाई छांडी करी, लीधो संजम भार के।
केइक परण परहरी, तिण पा लीधो अधिकार के॥
मंडियो ब्याह वगेरियो, जिम्या वनोला जेह के।
चढ़ती वय चारित्र लियो, उत्तम पुरुष गुणगेह के॥
चौथा आरा मांयली, पंचम आरे पेख के।
इचरज वात करी इसी, सुणता हरष विशेष के॥
धर्म उद्योत हुवो घणो, पाम्या जन बहु प्रेम के।
सत्तरो वर्ष सततरो, वरत्या कुशल ने खेम के॥
(शान्ति विलास ढा० ७ गा० १८ से २१)

जयाचार्य ने हेमनवरसा मे लिखा है—

सौम्य प्रकृति अति पुन्य सरोवर, सुविनीतां सिरदारी।
एहवा सतीदास मिलिया हेम नैं, पूरव पुन्य प्रकारी॥
वाचण बोनण कार्य मे, अन्न पान वस्त्रादि विशाली।
विविध साता उपजाई सतीदास, प्रीत भली पर पाली॥
(हेमनवरसो ढा० ६ गा० २९, ३०)

मुनि सतीदासजी ने अनेक आगम तथा ग्रंथो की प्रतिलिपि की। जिनमे भगवती सूत्र (जिसका एक मुनि जीतमलजी ने और दो भाग मुनि सतीदासजी ने लिखे) तथा अन्य कई ग्रंथ तो उन्होने मुनिश्री हेमराजजी के पढने के लिए विशेष रूप से लिखे थे। उन प्रतियों के अन्त मे लिखा हुआ मिलता है कि यह प्रति मुनि हेमराजजी के पठनार्थ लिखी गई है।

३ सं० १६०४ ज्येष्ठ शुक्ला २ को सिरियारी मे मुनिश्री हेमराजजी के स्वर्गस्थ होने के बाद आचार्यश्री रायचंदजी ने छह साधुओं से शान्ति मुनि का सिंघाडा किया[1]। मुनिश्री ने अनेक गावों नगरो मे विचरण कर अच्छा उपकार किया और जैन शासन की महिमा बढ़ाई। मुनिश्री के आकर्षक व्यक्तित्व, सरस व्याख्यान शैली तथा मधुर व्यवहार से अन्य मतावलम्बी भी बहुत प्रभावित हुए[2]।

संवत् १८७८ से १६०४ तक के चातुर्मास मुनिश्री हेमराजजी के साथ

---

(वर्ष) सप्तवीस जाझो सखर, हेम तणो ऋष शांति।
सेव करी साचे मनै, भाजी मन री भ्रांति॥
अतमीम दीघो अधिक, सखरो सजम साझ।
शांति ऋषीसर सूरमो, सुवनीतां सिरताज॥
(शा० वि० ढा० १० दो० २, ३)

सखर पढाया थानें सोभता, हेम ऋषी हद रीत हो।
भाजन जाणी भणाविया, वले जाण्या घणा सुविनीत हो॥
परम भाजन थाने परखिया, सखर प्रकृत सुखकार हो।
अधिक विनय गुण आगला, तिण सू हेम भणाया थानै सार हो॥
(शा० वि० ढा० ६ गा० १०, १३)

१. शांति ऋषि नें सूपिया, सुगुणा सत उदार।
ऋषिराय चौमासो भलावियो, परगट सैहर पीपाड॥
(शा० वि० ढा० १० दो० ६)

२. अन्य मति पिण ऋष शांति नी, मुद्रा देखत पाण हो।
तन मन हिवड़ो हुलसै, वले हरषे सांभल वाण हो॥
(शा० वि० ढा० १६

कई वर्ष साथ रहने से वह और अधिक घनिष्ठ बनता चला गया। मुनिश्री हेमराजजी की वात्सल्यमय प्रेरणा एवं मुनिश्री जीतमलजी की सौहार्द-भरी सहानुभूति से शान्ति मुनि श्रमपूर्वक ज्ञानार्जन करने लगे। उन्होंने क्रमशः आवश्यक, दशवैकालिक, उत्तराध्ययन, बृहत्कल्प—इन चार आगमों को कण्ठस्थ किया। सूत्रों की हुंडियां, आचार्य भिक्षु कृत-३०६ बोलों की हुंडी तथा अनेक व्याख्यान आदि सीखे। ३२ सूत्रों का वाचन कर सूक्ष्म-सूक्ष्म चर्चाओं के विशेषज्ञ बने[1]।

सं० १८८१ पोष शुक्ला ३ पाली में मुनिश्री जीतमलजी का सिंघाड़ा होने के पश्चात् शान्ति मुनि को हेमराजजी स्वामी के सम्मुख प्रतिनिधि रूप में नियुक्त किया गया। व्याख्यान देना, गोचरी की देखरेख रखना तथा अन्यान्य कार्यों की संभाल वे ही रखने लगे। उनका कंठ सुरीला और वाणी में माधुर्य था जिससे उनका व्याख्यान अधिक सरस बन जाता और श्रोताओं को प्रिय लगता। उन्होंने लगभग २७ वर्षों तक मुनिश्री हेमराजजी की तन्मयता से सेवा-भक्ति कर उनके मन में विविध प्रकार से समाधि उत्पन्न की। हेम मुनि ने भी शान्ति मुनि को परम विनीत व सुयोग्य समझकर पढ़ाया और खुले दिल से ज्ञान दिया[2]। शान्ति मुनि को मुनिश्री हेमराजजी का योग मणिकांचन की तरह मिला तो मुनिश्री हेमराजजी को भी शान्ति मुनि का योग मिलना कम सौभाग्य-सूचक नहीं था।

---

हरष सतीदासजी ऋष वदो रे, मुनि निर्मल नयणा नदो॥
(शा० वि० ढा० ८ गा० १)

१. भारीमाल सतजुगी नैं हेमो रे, ऋषराय तणो अति पेमो रे।
सीख्यो निमल निभावण नेमो।
जीत सूं रूड़ी रीत सुजाणी रे, पीत दै (पय) जल जेम पिछाणी रे।
सुन्दर प्रकृति सरस सुहाणी॥
(शा० वि० ढा० ८ गा० १२, १३)

२. समत अठारै इक्यासीयै, पोस सुकल तिथि तीज।
कियो सिंघाड़ो जीत नो, आप्या सत सुधीज॥
सतीदासजी नैं सखर, आप्या अधिक सुजाण।
हेम तणी सुश्रु आगनै, थाप्या आगेवाण॥
हेम भणी हद रीत सूं, सन्तरी चित्त समाध।
उपजाई विध विध करी, आणी अति अहलाद॥
सरस कंठ वाणी सरस, सरस कला सुविज्ञाण।
हेम सखीतै शांति ऋष, वारै सरस वखाण॥
(शा० वि० ढा० ९ दो० १ से ६)

जयाचार्य ने हेमनवरसा मे लिखा है—

सौम्य प्रकृति अति पुन्य सरोवर, सुविनीता सिरदारी।
एहवा सतीदास मिलिया हेम नैं, पूरव पुन्य प्रकारी॥
पालण पोषण कार्य में, अन्न पान वस्त्रादि विशाली।
विविध साता उपजाई सतीदास, प्रीत भली पर पाली॥

(हेमनवरसो ढा० ६ गा० २६, ३०)

मुनि सतीदासजी ने अनेक आगम तथा ग्रंथो की प्रतिलिपि की। जिनमें भगवती सूत्र (जिसका एक मुनि जीतमलजी ने और दो भाग मुनि सतीदासजी ने लिखे) तथा अन्य कई ग्रंथ तो उन्होंने मुनिश्री हेमराजजी के पढ़ने के लिए विशेष रूप मे लिखे थे। उन प्रतियों के अन्त मे लिखा हुआ मिलता है कि यह प्रति मुनि हेमराजजी के पठनार्थ लिखी गई है।

वि० सं० १६०४ ज्येष्ठ शुक्ला २ को सिरियारी मे मुनिश्री हेमराजजी के स्वर्गस्थ होने के बाद आचार्यश्री रायचदजी ने छह साधुओ से शान्ति मुनि का सिंघाड़ा किया[1]। मुनिश्री ने अनेक गावो नगरो मे विचरण कर अच्छा उपकार किया और जैन शासन की महिमा बढ़ाई। मुनिश्री के आकर्षक व्यक्तित्व, सरस व्याख्यान शैली तथा मधुर व्यवहार से अन्य मतावलम्बी भी बहुत प्रभावित हुए[2]।

संवत् १८७८ से १६०४ तक के चातुर्मास मुनिश्री हेमराजजी के साथ

---

(वर्ष) सत्तवीस जाझो सखर, हेम तणी ऋष शाति।
सेव करी साचैं मनैं, भाजी मन री भ्राति॥
अनसीम सीखो अधिक, सखरो सजम साज।
शाति ऋषीसर सूरमो, सुवनीतो सिरताज॥

(शा० वि० ढा० १० दो० २, ३)

सखर पढ़ाया थानैं सोभता, हेम ऋषी हद रीत हो०।
भाजन जाणी भणाविया, वले जाण्यां घणा सुविनीत हो॥
परम भाजन थाने परखिया, सखर प्रकृत सुखकार हो।
अधिक विनय गुण आगला, तिण सू हेम भणाया थानैं सार हो॥

(शा० वि० ढा० ६ गा० १०, १३)

१. शांति ऋषि नें सूपिया, सुगुणा सत उदार।
ऋषिराय चौमासो मलावियो, परगट मेंहर पीसाद॥

(शा० वि० ढा० १० दो० ६)

२. अन्य मति तिण ऋष शांति नी, मुद्रा देखत चोंप हो।
तन मन हिवड़ो हुलसै, वले हरषं हांसल थाप हो॥

(शा० वि० ढा० १०

कई वर्ष साथ रहने से वह और अधिक घनिष्ठ बनता चला गया। मुनिश्री हेमराजजी की वात्सल्यमय प्रेरणा एवं मुनिश्री जीतमलजी की सौहार्द-भरी सहानुभूति से शान्ति मुनि समधुर ज्ञानार्जन करने लगे। उन्होंने क्रमशः आवश्यक, दशवैकालिक, उत्तराध्ययन, बृहत्कल्प—इन चार आगमों को कण्ठस्थ किया। सूत्रों की हुंडियां, आचार्य भिक्षु कृत-३०६ बोलों की हुंडी तथा अनेक व्याख्यान आदि सीखे। ३२ सूत्रों का वाचन कर सूक्ष्म-सूक्ष्म चर्चाओं के विशेषज्ञ बने[1]।

सं० १८८१ पोष शुक्ला ३ पाली में मुनिश्री जीतमलजी का सिंघाड़ा होने के पश्चात् शान्ति मुनि को हेमराजजी स्वामी के सम्मुख प्रतिनिधि रूप में नियुक्त किया गया। व्याख्यान देना, गोचरी की देखरेख रखना तथा अन्यान्य कार्यों को सम्भाल वे ही रखने लगे। उनका कंठ सुरीला और वाणी में माधुर्य था जिससे उनका व्याख्यान अधिक सरस बन जाता और श्रोताओं को प्रिय लगता। उन्होंने लगभग २७ वर्षों तक मुनिश्री हेमराजजी की तन्मयता से सेवा-भक्ति कर उनके मन में विविध प्रकार से समाधि उत्पन्न की। हेम मुनि ने भी शान्ति मुनि को परम विनीत व सुयोग्य समझकर पढ़ाया और खुले दिल से ज्ञान दिया[2]। शान्ति मुनि को मुनिश्री हेमराजजी का योग मणिकांचन की तरह मिला तो मुनिश्री हेमराजजी को भी शान्ति मुनि का योग मिलना कम सौभाग्य-सूचक नहीं था।

---

हरष सतीदासजी रूप वधो रे, मुनि निर्मल नयणा नंदो ॥
(शा० वि० ढा० ८ गा० १)

१. भारीमाल सतजुगी नैं हेमो रे, ऋषराय तणो अति पेमो रे।
नीको निर्मल निभावण नेमो।
जीत सूं रूड़ी रीत सुजाणी रे, प्रीत ज्यूं (पय) जल जेम पिछाणी रे।
सुन्दर प्रकृति सधर सुहाणी ॥
(शा० वि० ढा० ८ गा० १२, १३)

२. संमत अठारै इक्यासीये, पोष सुकल तिथि तीज।
कियो सिंघाड़ो जीत नो, आप्या सत सुचीज ॥
सतीदासजी नैं सखर, जाण्या अधिक सुजाण।
हेम तणै मुख आगलै, थाप्या आगेवाण ॥
हेम भणी हद रीत सूं, सखरी चित्त समाध।
उपजाई विध विध करी, आणी अति अहलाद ॥
सरस कंठ वाणी सरस, सरस कला सुविहाण।
हेम सखीयै शांति गुण, थापै सरस बखाण ॥
(शा० वि० ढा० ६ दो० ३ से ६)

जयाचार्य ने हेमनवरसा में लिखा है—

सौम्य प्रकृति अति पुन्य सरोवर, सुविनीता सिरदारी।
एहवा सतीदास मिलिया हेम नैं, पूरव पुन्य प्रकारी॥
चालण बोलण कार्य मे, अन्न पान वस्त्रादि विशाली।
विविध साता उपजाई सतीदास, प्रीत भली पर पाली॥

(हेमनवरसो ढा० ६ गा० २६, ३०)

मुनि सतीदासजी ने अनेक आगम तथा ग्रथो की प्रतिलिपि की। जिनमें भगवती सूत्र (जिसका एक भाग मुनि जीतमलजी ने और दो भाग मुनि सतीदासजी ने लिखे) तथा अन्य कई ग्रंथ तो उन्होने मुनिश्री हेमराजजी के पढने के लिए विशेष रूप से लिखे थे। उन प्रतियो के अन्त मे लिखा हुआ मिलता है कि यह प्रति मुनि हेमराजजी के पठनार्थ लिखी गई है।

३. स० १६०४ ज्येष्ठ शुक्ला २ को सिरियारी में मुनिश्री हेमराजजी के स्वर्गस्थ होने के बाद आचार्यश्री रायचदजी ने छह साधुओ से शान्ति मुनि का सिंघाड़ा किया[1]। मुनिश्री ने अनेक गावो नगरो मे विचरण कर अच्छा उपकार किया और जैन शासन की महिमा बढाई। मुनिश्री के आकर्षक व्यक्तित्व, सरस व्याख्यान शैली तथा मधुर व्यवहार से अन्य मतावलम्बी भी बहुत प्रभावित हुए[2]।

सवत् १८७८ से १६०४ तक के चातुर्मास मुनिश्री हेमराजजी के साथ

---

(वर्ष) सत्तवीस जाझो सखर, हेम तणी ऋष शाति।
सेव करी साचै मनैं, भाजी मन री भ्राति॥
अतसीम दीधो अधिक, सखरो सजम साझ।
शाति ऋषीसर सूरमो, सुवनीता सिरताज॥

(शा० वि० ढा० १० दो० २, ३)

सखर पढाया थानैं सोभता, हेम ऋषी हद रीत हो०।
भाजन जाणी भणावियां, वले जाण्या घणा सुविनीत हो॥
परम भाजन थाने परखिया, सखर प्रकृत सुखकार हो।
अधिक विनय गुण आगला, तिण सू हेम भणाया थानैं सार हो॥

(शा० वि० ढा० ६ गा० १०, १३)

१. शांति ऋषि नें सूपिया, सुगुणा सत उदार।
ऋषिराय चौमासो भलावियो, परगट सैहर पीपाड़॥

(शा० वि० ढा० १० दो० ६)

२. अन्य मति पिण ऋष शाति नी, मुद्रा देखत पाण हो।
तन मन हिवड़ो हूलसै, वले हरखै सांभल वाण हो॥

(शा० वि० ढा० १० गा० ८)

कई वर्ष साथ रहने से वह और अधिक घनिष्ठ बनता चला गया। मुनिश्री हेमराजजी की वात्सल्यमय प्रेरणा एवं मुनिश्री जीतमलजी की सौहार्द-भरी सहानुभूति से शान्ति मुनि श्रमपूर्वक ज्ञानार्जन करने लगे। उन्होंने क्रमशः आवश्यक, दशवैकालिक, उत्तराध्ययन, बृहत्कल्प—इन चार आगमों को कंठाग्र किया। सूत्रों की हुंडिया, आचार्य भिक्षु कृत-३०६ बोलों की हुंडी तथा अनेक व्याख्यान आदि सीखे। ३२ सूत्रों का वाचन कर सूक्ष्म-सूक्ष्म चर्चाओं के विशेषज्ञ बने[1]।

सं० १८८१ पौष शुक्ला ३ वाली में मुनिश्री जीतमलजी का सिंघाड़ा होने के पश्चात् शान्ति मुनि को हेमराजजी स्वामी के सम्मुख प्रतिनिधि रूप से नियुक्त किया गया। व्याख्यान देना, गोचरी की देखरेख रखना तथा अन्यान्य कार्यों की संभाल वे ही रखने लगे। उनका कंठ सुरीला और वाणी में माधुर्य था जिससे उनका व्याख्यान अधिक सरस बन जाता और श्रोताओं को प्रिय लगता। उन्होंने लगभग २० वर्षों तक मुनिश्री हेमराजजी की तन्मयता से सेवा-भक्ति कर उनके मन में विविध प्रकार से समाधि उत्पन्न की। हेम मुनि ने भी शान्ति मुनि को परम विनीत व सुयोग्य समझकर पढ़ाया और सूत्रे दिल से ज्ञान दिया[2]। शान्ति मुनि को मुनिश्री हेमराजजी का योग मणिकांचन की तरह मिला तो मुनिश्री हेमराजजी को भी शान्ति मुनि का योग मिलना कम सौभाग्य-सूचक नहीं था।

---

हरख सतीदासजी रूप वदो रे, मुनि निर्मल नयणा नंदो ॥
(शा० वि० ढा० ८ गा० १)

१ भारीमाल सनजुगी नैं हेमो रे, ऋषिराय तणो अति पेमो रे।
सीरो निमल निभावण नेमो।
जीत सूं करी रीत सुखाणी रे, पीत दै (नव) अस जेम पिछाणी रे।
सुन्दर प्रकृति सखर सुहाणी ॥
(शा० वि० ढा० ८ गा० १२, १३)

२ समत अठारै इक्यासीए, पोष शुकल तिथि तीज।
सिंघाड़ो जीत नो, आप्या मन सुधीज ॥
सतीदासजी नैं सखर, आप्या अधिक सुहाण।
हेम तणी सुख आगे रे, आप्या आतेशाण ॥
हेम तणी हद रीत सूं, सखरी सिख समाय।
ढाळ दिन दिन करी, आणी अति अह्लाद ॥
[illegible] वाणी सरस, [illegible] ।
हेम [illegible] ॥
(शा० वि० [illegible] १ से ६)

जयाचार्य ने हेमनवरसा में लिखा है—

सौम्य प्रकृति अति पुन्य सरोवर, सुविनीतां सिरदारी।
एहवा सतीदास मिलिया हेम नैं, पूरब पुन्य प्रकारी॥
चाकण चौकण कार्य में, अन्न पान वस्त्रादि विशाली।
विविध साता उपजाई सतीदास, प्रीत घणी धर पाली॥

(हेमनवरसो ढा० ६ गा० २९, ३०)

मुनि सतीदासजी ने अनेक आगम तथा ग्रंथों की प्रतिलिपि की। जिनमें भगवती सूत्र (जिसका एक मुनि जीतमलजी ने और दो भाग मुनि सतीदासजी ने लिखे) तथा अन्य कई ग्रंथ तो उन्होंने मुनिश्री हेमराजजी के पढ़ने के लिए विशेष रूप से लिखे थे। उन प्रतियों के अन्त में लिखा हुआ मिलता है कि यह प्रति मुनि हेमराजजी के पठनार्थ लिखी गई है।

३ सं० १९०४ ज्येष्ठ शुक्ला २ को सिरियारी में मुनिश्री हेमराजजी के स्वर्गस्थ होने के बाद आचार्यश्री रायचंदजी ने छह साधुओं से शान्ति मुनि का सिंघाड़ा किया[1]। मुनिश्री ने अनेक गांवों नगरों में विचरण कर अच्छा उपकार किया और जैन शासन की महिमा बढ़ाई। मुनिश्री के आकर्षक व्यक्तित्व, सरस व्याख्यान शैली तथा मधुर व्यवहार से अन्य मतावलम्बी भी बहुत प्रभावित हुए[2]।

संवत् १८७८ से १९०४ तक के चातुर्मास मुनिश्री हेमराजजी के साथ

---

(वर्ष) सत्तावीस आसो सधर, हेम तणी ऋष शांति।
सेव करी साचै मनै, भाजी मन री भ्रांति॥
अठवीस दीधो अधिक, सखरो संजम साज।
शांति ऋषीसर सूरमो, सुवनीतां सिरताज॥

(शा० वि० ढा० १० दो० २, ३)

सखर पढ़ाया थानैं सोभता, हेम ऋषी हद रीत हो०।
भाजन जांणी भणाविया, वले जाण्यां घणा सुविनीत हो॥
परम भाजन थांनें परखिया, सखर प्रकृत सुखकार हो।
अधिक विनय गुण आगला, तिण सूं हेम भणाया थानैं सार हो॥

(शा० वि० ढा० ६ गा० १०, १३)

१. शांति ऋषि नें सूपिया, सुगुणा संत उदार।
ऋषिराय चौमासो मलावियो, परगट संहर पीपाड़॥

(शा० वि० ढा० १० दो० ६)

२. अन्य मति पिण ऋष शांति नी, मुद्रा देखत पाण हो।
तन मन हियड़ो हुलसैं, वले हरषैं सांभल वाण हो॥

(शा० वि० ढा० १० गा० ३)

कई वर्ष साथ रहने से वह और अधिक घनिष्ठ बनता चला गया। मुनिश्री हेमराजजी की वात्सल्यमय प्रेरणा एवं मुनिश्री जीतमलजी की सौहार्द-भरी सहानुभूति से शान्ति मुनि श्रमपूर्वक ज्ञानार्जन करने लगे। उन्होंने क्रमश: आवश्यक, दशवैकालिक, उत्तराध्ययन, बृहत्कल्प—इन चार आगमों को कंठाग्र किया। सूत्रों की हुंडियां, आचार्य भिक्षु कृत-३०६ बोलों की हुंडी तथा अनेक व्याख्यान आदि सीखे। ३२ सूत्रों का वाचन कर सूक्ष्म-सूक्ष्म चर्चाओं के विशेषज्ञ बने[1]।

सं० १८८१ पोष शुक्ला ३ पाली में मुनिश्री जीतमलजी का सिंघाड़ा होने के पश्चात् शान्ति मुनि को हेमराजजी स्वामी के सम्मुख प्रतिनिधि रूप से नियुक्त किया गया। व्याख्यान देना, गोचरी की देखरेख रखना तथा अन्यान्य कार्यों की संभाल वे ही रखने लगे। उनका कंठ सुरीला और वाणी में माधुर्य था जिससे उनका व्याख्यान अधिक सरस बन जाता और श्रोताओं को प्रिय लगता। उन्होंने लगभग २७ वर्षों तक मुनिश्री हेमराजजी की तन्मयता से सेवा-भक्ति कर उनके मन में विविध प्रकार से समाधि उत्पन्न की। हेम मुनि ने भी शान्ति मुनि को परम विनीत व सुयोग्य समझकर पढ़ाया और खुले दिल से ज्ञान दिया[2]। शान्ति मुनि को मुनिश्री हेमराजजी का योग मणिकांचन की तरह मिला तो मुनिश्री हेमराजजी को भी शान्ति मुनि का योग मिलना कम सौभाग्य-सूचक नहीं था।

---

हरष सतीदासजी ऋष वदो रे, मुनि निर्मल नयणा नदो॥

(शा० वि० ढा० ८ गा० ९)

१. भारीमाल सतजुगी नैं हेमो रे, ऋषराय तणो अति पेमो रे।
नीको निमल निभावण नेमो।
जीत सूं रूडी रीत सुजांणी रे, पीत पै (पय) जल जेम पिछांणी रे।
सुन्दर प्रकृति सखर सुहांणी॥

(शा० वि० ढा० ८ गा० १२, १३

२. समत अठारै इक्यासीये, पोस सुकल तिथि तीज।
कियो सिंघाड़ो जीत नों, आप्या सत सुबीज॥
सतीदासजी नै सखर, आप्यां अधिक सुजाण।
हेम तणें मुख आगलै, थाप्या आगेवाण॥
हेम भणी हद रीत सूं, सखरी चित्त समाध।
उपजाई विध विध करी, आंणी अति अहलाद॥
सरस कंठ वाणी सरस, सरस कला सुविहाण।
हेम समीपे शांति ऋष, वांचै सरस वखाण॥

(शा० वि० ढा० -१०१)

जयाचार्य ने हेमनवरसा मे लिखा है—

सौम्य प्रकृति अति पुन्य सरोवर, सुविनीतां सिरदारी।
एहवा सतीदास मिलिया हेम नैं, पूरव पुन्य प्रकारी॥
चालण बोलण कार्य मे, अन्न पान वस्त्रादि विशाली।
विविध साता उपजाई सतीदास, प्रीत भली पर पाली॥

(हेमनवरसो ढा० ६ गा० २६, ३०)

मुनि सतीदासजी ने अनेक आगम तथा ग्रथो की प्रतिलिपि की। जिनमे भगवती सूत्र (जिसका एक मुनि जीतमलजी ने और दो भाग मुनि सतीदासजी ने लिखे) तथा अन्य कई ग्रथ तो उन्होंने मुनिश्री हेमराजजी के पठन के लिए विशेष रूप मे लिखे थे। उन प्रतियो के अन्त मे लिखा हुआ मिलता है कि यह प्रति मुनि हेमराजजी के पठनार्थ लिखी गई है।

३. स० १६०४ ज्येष्ठ शुक्ला २ को सिरियारी मे मुनिश्री हेमराजजी के स्वर्गस्थ होने के बाद आचार्यश्री रायचदजी ने छह साधुओ से शान्ति मुनि का सिंघाडा किया[1]। मुनिश्री ने अनेक गावो नगरो मे विचरण कर अच्छा उपकार किया और जैन शासन की महिमा बढाई। मुनिश्री के आकर्षक व्यक्तित्व, सरस व्याख्यान शैली तथा मधुर व्यवहार से अन्य मतावलम्बी भी बहुत प्रभावित हुए[2]।

सवत् १८७८ से १६०४ तक के चातुर्मास मुनिश्री हेमराजजी के साथ

---

(वर्ष) सत्तवीस जाझो सखर, हेम तणी ऋप शाति।
सेव करी सावै मनै, भाजी मन री भ्राति॥
अतमीम दीधो अधिक, सखरो सजम साझ।
शांति ऋषीसर सूरमो, सुवनीतां सिरताज॥

(शा० वि० ढा० १० दो० २, ३)

सखर पढाया थानै सोभता, हेम ऋषी हद रीत हो०।
भाजन जाणी भणाविया, वले जाण्या घणा सुविनीत हो॥
परम भाजन थांने परखिया, सखर प्रकृत सुखकार हो।
अधिक विनय गुण आगला, तिण सू हेम भणाया थानै सार हो॥

(शा० वि० ढा० ६ गा० १०, ११)

१. शांति ऋषि नें सूपिया, सुगुणा सत उदार।
ऋषिराय चौमासो भलावियो, परगट सैहर पीपाड॥

(शा० वि० ढा० १० दो० ६)

२. अन्य मति पिण ऋष शाति नी, मुद्रा देखत पाण हो।
तन मन हिवड़ो हूलसैं, वले हरषै सांभल वाण हो॥

(शा० वि० ढा० १० गा० ..

कई वर्ष साथ रहने से वह और अधिक घनिष्ठ बनता चला गया। मुनिश्री हेमराजजी की वात्सल्यमय प्रेरणा एवं मुनिश्री जीतमलजी की सौहार्द-भरी सहानुभूति से शान्ति मुनि श्रमपूर्वक ज्ञानार्जन करने लगे। उन्होंने क्रमश आवश्यक, दशवैकालिक, उत्तराध्ययन, बृहत्कल्प—इन चार आगमों को कण्ठ किया। सूत्रों की हुंडियां, आचार्य भिक्षु कृत-३०६ बोलों की हुंडी तथा अनेक व्याख्यान आदि सीखे। ३२ सूत्रों का वाचन कर सूक्ष्म-सूक्ष्म चर्चाओं के विशेषज्ञ बने[1]।

सं० १८८१ पोष शुक्ला ३ पाली में मुनिश्री जीतमलजी का सिंघाड़ा होने के पश्चात् शान्ति मुनि को हेमराजजी स्वामी के सम्मुख प्रतिनिधि रूप से नियुक्त किया गया। व्याख्यान देना, गोचरी की देखरेख रखना तथा अन्यान्य कार्यों की संभाल वे ही रखने लगे। उनका कंठ सुरीला और वाणी में माधुर्य था जिससे उनका व्याख्यान अधिक सरस बन जाता और श्रोताओं को प्रिय लगता। उन्होंने लगभग २७ वर्षों तक मुनिश्री हेमराजजी की तन्मयता से सेवा-भक्ति कर उनके मन में विविध प्रकार से समाधि उत्पन्न की। हेम मुनि ने भी शान्ति मुनि को परम विनीत व सुयोग्य समझकर पढ़ाया और खुले दिल से ज्ञान दिया[2]। शान्ति मुनि को मुनिश्री हेमराजजी का योग मणिकांचन की तरह मिला तो मुनिश्री हेमराजजी को भी शान्ति मुनि का योग मिलना कम सौभाग्य-सूचक नहीं था।

---

हरष सतीदासजी रूप वदो रे, मुनि निर्मल नयणा नदो॥

(शा० वि० ढा० ८ गा० १)

१. भारीमाल सतजुगी नैं हेमो रे, ऋषराय तणो अति पेमो रे।

नीको निमल निभावण नेमो।

जीत सूं रूडी रीत सुजांणी रे, पीत पै (पय) जल जेम पिछांणी रे।

सुन्दर प्रकृति सत्वर सुहांणी॥

(शा० वि० ढा० ८ गा० १२, १३)

२. समत अठारै इक्यासीये, पोस सुकल तिथि तीज।

कियो सिंघाडो जीत नो, आप्या सत सुधीज॥

सतीदासजी नैं सघर, जाण्यां अधिक सुजांण।

हेम तणैं मुख आगलै, थाप्या आगेवाण॥

हेम भणी हद रीत सूं, सखरी चित्त समाध।

उपजाई विध विध करी, आणी अति अहलाद॥

सरस कंठ वाणी सरस, सरस कला सुविहाण।

हेम समीपे शांति ऋष, वांचै सरस वखाण॥

(शा० वि० ढा० ८ गा० ... से ६)

जयाचार्य ने हेमनवरसा में लिखा है—

सोम्य प्रकृति अति गुण सरोवर, सुविनीतां सिरदारो।
एहवा सतीदास सिखिया हेम में, पूरण पुण्य प्रकारो॥
आगम बोलन बांचे थे, अन्न पान बरपादि विमासो।
लिखिया साझा उरधाई सतीदास, प्रीत घणी घर पासी॥

(हेमनवरसो ढा० ६ गा० २६, ३०)

मुनि सतीदासजी ने अनेक आगम तथा ग्रंथों की प्रतिलिपि की। जिनमें भगवती सूत्र (जिसका एक मुनि जीतमलजी ने और दो भाग मुनि सतीदासजी ने लिखे) तथा अन्य कई ग्रंथ तो उन्होंने मुनिश्री हेमराजजी के पढ़ने के लिए विशेष रूप से लिखे थे। उन प्रतियों के अन्त में लिखा हुआ मिलता है कि यह प्रति मुनि हेमराजजी के पठनार्थ लिखी गई है।

१. सं० १९०४ ज्येष्ठ शुक्ला २ को सिरियारी में मुनिश्री हेमराजजी के स्वर्गस्थ होने के बाद आचार्यश्री रायचंदजी ने छह साधुओं से शान्ति मुनि का सिंघाड़ा किया[1]। मुनिश्री ने अनेक गांवों नगरों में विचरण कर अच्छा उपकार किया और जैन शासन की महिमा बढ़ाई। मुनिश्री के आकर्षक व्यक्तित्व, सरस व्याख्यान शैली तथा मधुर व्यवहार से अन्य मतावलम्बी भी बहुत प्रभावित हुए[2]।

संवत् १८७८ से १९०४ तक के चातुर्मास मुनिश्री हेमराजजी के साथ

---

(वर्ष) सत्तवीस आयो सखर, हेम तणी ऋष शांति।
सेव करी सार्वे मनै, भाजी मन री भ्रांति॥
अरुमीस दीधो अधिक, सखरो संजम साज।
शांति ऋषीसर सूरमो, सुवनीता सिरताज॥

(शा० वि० ढा० १० दो० २, ३)

सखर पढ़ाया थानें सोभता, हेम ऋषी हद रीत हो०।
भाजन जाणी भणाविया, भले आण्या घणा सुविनीत हो॥
परम भाजन थाने परखिया, सखर प्रकृत सुखकार हो।
अधिक विनय गुण आगला, तिण सूं हेम भणाया थानें सार हो॥

(शा० वि० ढा० ६ गा० १०, १३)

१. शांति ऋषि नें सूंपिया, सुगुणा संत उदार।
ऋषिराय चौमासो मलावियो, परगट सेंहर पीपाड॥

(शा० वि० ढा० १० दो० ६)

२. अन्य मति पिण ऋष शांति नी, मुद्रा देखत पाण हो।
तन मन हिवड़ो हुलसै, भले हरखै सांभल वाण हो॥

(शा० वि० ढा० १० गा० २१)

कई वर्ष साथ रहने से वह और अधिक घनिष्ठ बनता चला गया। मुनिश्री हेमराजजी की वात्सल्यमय प्रेरणा एवं मुनिश्री जीतमलजी की सौहार्द-भरी सहानुभूति से शान्ति मुनि श्रमपूर्वक ज्ञानार्जन करने लगे। उन्होंने क्रमशः आवश्यक, दशवैकालिक, उत्तराध्ययन, बृहत्कल्प—इन चार आगमों को कंठाग्र किया। सूत्रों की हुंडियां, आचार्य भिक्षु कृत-३०६ बोलों की हुंडी तथा अनेक व्याख्यान आदि सीखे। ३२ सूत्रों का वाचन कर सूक्ष्म-सूक्ष्म चर्चाओं के विशेषज्ञ बने[1]।

सं० १८८१ पोष शुक्ला ३ पाली में मुनिश्री जीतमलजी का सिंघाड़ा होने के पश्चात् शान्ति मुनि को हेमराजजी स्वामी के सम्मुख प्रतिनिधि रूप में नियुक्त किया गया। व्याख्यान देना, गोचरी की देखरेख रखना तथा अन्यान्य कार्यों की संभाल वे ही रखने लगे। उनका कंठ सुरीला और वाणी में माधुर्य था जिससे उनका व्याख्यान अधिक सरस बन जाता और श्रोताओं को प्रिय लगता। उन्होंने लगभग २७ वर्षों तक मुनिश्री हेमराजजी की तन्मयता से सेवा-भक्ति कर उनके मन में विविध प्रकार से समाधि उत्पन्न की। हेम मुनि ने भी शान्ति मुनि को परम विनीत व सुयोग्य समझकर पढ़ाया और खुले दिल से ज्ञान दिया[2]। शान्ति मुनि को मुनिश्री हेमराजजी का योग मणिकांचन की तरह मिला तो मुनिश्री हेमराजजी को भी शान्ति मुनि का योग मिलना कम सौभाग्य-सूचक नहीं था।

---

हरष सतीदासजी ऋष वदो रे, मुनि निर्मल नयणा नंदो॥

(शा० वि० ढा० ८ गा० १)

१ भारीमाल सतजुगी नैं हेमो रे, ऋषराय तणो अति पेमो रे।
नीको निमल निभावण नेमो।
जीत सूं रूडी रीत सुजांणी रे, पीत पै (पय) जल जेम पिछांणी रे।
सुन्दर प्रकृति सखर सुहांणी॥

(शा० वि० ढा० ८ गा० १२, १३)

२. संमत अठारैं इक्यासीये, पोस सुकल तिथि तीज।
कियो सिंघाड़ो जीत नो, आप्या संत सुधीज॥
सतीदासजी नैं सखर, जाण्यां अधिक सुजांण।
हेम तणैं मुख आगलै, थाप्या आगेवाण॥
हेम भणी हद रीत सूं, सखरी चित्त समाध।
उपजाई विध विध करी, आंणी अति अहलाद॥
सरस कंठ वाणी सरस, सरस कला सुविहाण।
हेम समीपै शांति ऋष, वांचै सरस वखाण॥

(शा० वि० ढा० ते ६)

जयाचार्य ने हेमनवरसा में लिखा है—

> सौम्य प्रकृति अति पुन्य सरोवर, सुविनीता सिरदारी।
> एहवा सतीदास मिलिया हेम नै, पूरब पुन्य प्रकारी॥
> आगम बोलण कार्य में, अन्न पान वस्त्रादि विचारी।
> विविध साता उपजाई सतीदास, धीर मनी पर कामी॥
>
> (हेमनवरसो ढा० ६ गा० २९, ३०)

मुनि सतीदासजी ने अनेक आगम तथा पद्यों की प्रतिलिपि की। जिनमें सत्तरो सूत्र (जिसका एक भाग मुनि श्रीचन्दजी ने और दो भाग मुनि सतीदासजी ने लिखे) तथा अन्य कई पत्र तो उन्होंने मुनिश्री हेमराजजी के पढ़ने के लिए विशेष रूप में लिखे थे। उन प्रतियों के अन्त में लिखा हुआ मिलता है कि यह प्रति मुनि हेमराजजी के पठनार्थ लिखी गई है।

सं० १९०४ ज्येष्ठ शुक्ला २ को सिरियारी में मुनिश्री हेमराजजी के स्वर्गस्थ होने के बाद आचार्यश्री रायचन्दजी ने छह साधुओं से शान्ति मुनि का सिंघाड़ा किया[1]। मुनिश्री ने अनेक गाँवों नगरों में विचरण कर अच्छा उपकार किया और जैन शासन की महिमा बढ़ाई। मुनिश्री के आकर्षक व्यक्तित्व, सरस व्याख्यान शैली तथा मधुर व्यवहार से अन्य मतावलम्बी भी बहुत प्रभावित हुए[2]।

संवत् १८७८ से १९०४ तक के चातुर्मास मुनिश्री हेमराजजी के साथ

---

> (वर्ष) सप्तवीस आसरे सखर, हेम तणी ऋष शांति।
> सेव करी साधै मनै, भाजी मन री भ्रांति॥
> अंतेवासि दीपो अधिक, सखरो सजम साज।
> शांति ऋषीसर सूरमो, सुवनीतां सिरताज॥
>
> (शा० वि० ढा० १० दो० २, ३)

> सखर पढ़ाया थांनै सोभता, हेम ऋषी हद रीत हो०।
> भाजन जाणी भणाविया, वले जाण्या घणा सुविनीत हो॥
> परम भाजन थांने परखिया, सखर प्रकृत सुखकार हो।
> अधिक विनय गुण आगला, तिण सू हेम भणाया थांनै सार हो॥
>
> (शा० वि० ढा० ६ गा० १०, १३)

1. > शांति ऋषि नैं सूपिया, सुगुणा संत उदार।
   > ऋषिराय चौमासो भलावियो, परगट संहर पीपाड़॥
   >
   > (शा० वि० ढा० १० दो० ६)

2. > अन्य मति पिण ऋष शांति नी, मुद्रा देखत पांण हो।
   > तन मन हियड़ो हुलसै, वले हरषे सांभल वांण हो॥
   >
   > (शा० वि० ढा० १० गा० २)

कई वर्ष साथ रहने से वह और अधिक घनिष्ठ बनता चला गया। मुनिश्री हेमराजजी की वात्सल्यमय प्रेरणा एवं मुनिश्री जीतमलजी की सौहार्द-भरी सहानुभूति से शान्ति मुनि श्रमपूर्वक ज्ञानार्जन करने लगे। उन्होंने क्रमश आवश्यक, दशवैकालिक, उत्तराध्ययन, बृहत्कल्प—इन चार आगमों को कंठाग्र किया। सूत्रों की हुंडिया, आचार्य भिक्षु कृत-३०६ बोलों की हुंडी तथा अनेक व्याख्यान आदि सीखे। ३२ सूत्रों का वाचन कर सूक्ष्म-सूक्ष्म चर्चाओं के विशेषज्ञ बने[1]।

सं० १८८१ पोष शुक्ला ३ पाली में मुनिश्री जीतमलजी का सिंघाड़ा होने के पश्चात् शान्ति मुनि को हेमराजजी स्वामी के सम्मुख प्रतिनिधि रूप में नियुक्त किया गया। व्याख्यान देना, गोचरी की देखरेख रखना तथा अन्यान्य कार्यों की संभाल वे ही रखने लगे। उनका कंठ सुरीला और वाणी में माधुर्य था जिससे उनका व्याख्यान अधिक सरस बन जाता और श्रोताओं को प्रिय लगता। उन्होंने लगभग २७ वर्षों तक मुनिश्री हेमराजजी की तन्मयता से सेवा-भक्ति कर उनके मन में विविध प्रकार से समाधि उत्पन्न की। हेम मुनि ने भी शान्ति मुनि को परम विनीत व सुयोग्य समझकर पढ़ाया और खुले दिल से ज्ञान दिया[2]। शान्ति मुनि को मुनिश्री हेमराजजी का योग मणिकांचन की तरह मिला तो मुनिश्री हेमराजजी को भी शान्ति मुनि का योग मिलना कम सौभाग्य-सूचक नहीं था।

---

हरष सतीदासजी रूप वदो रे, मुनि निर्मल नयणा नदो॥

(शा० वि० ढा० ८ गा० १)

१. भारीमाल सतजुगी नैं हेमो रे, ऋषिराय तणो अति पेमो रे।

नीको निमल निभावण नेमो।

जीत सूं रूडी रीत सुजाणी रे, प्रीत पै (पय) जल जेम पिछाणी रे।

सुन्दर प्रकृति सखर सुहाणी॥

(शा० वि० ढा० ८ गा० १२, १३)

२. समत अठारै इक्यासीये, पोस सुकल तिथि तीज।

कियो सिंघाड़ो जीत नो, आप्या संत सुधीज॥

सतीदासजी नैं सखर, आप्या अधिक सुजाण।

हेम तणे सुख आगले, थाप्या करि पिछाण॥

हेम भणी हद रीत सूं, सतजुगी चित्त लगाय।

उपजाई विध विध करी, आणी अति अह्लाद॥

सरस कंठ वाणी सरस, सरस कला सुविहाण।

हेम सझोत रूडी जाण, वांचे सरस वखाण॥

(शा० वि० ढा० ९ गा० १ से ४)

अ० मु० प्रगट 'पाली' सैहर मे, पक्का ह्लेना ममाचार हो।
अ० मु० जीत थली माहे अच्छै, अथवा आया मेवाड हो॥
अ० मु० जिह ग्रामे ऋप जीत ह्वै, तिहा जाणो आपा नै वेग हो।
अ० मु० तास आणा सिर पर घरा छाडो मन नो आवेम हो॥
अ० मु० वडेरो ऋप काल किया छता, जाणो जोग्य'तणी'[1]दिशी धारहो।
अ० मु० आप छादे नहीं विचरणो, कह्यो सूत्र व्यवहार हो॥
अ० मु० आप छादे रहै तेहनै, प्रसस्या डड आय हो।
अ० मु० नसीत उद्देशे इग्यार मे, भाख्यो श्री जिनराय हो॥
अ० मु० उत्तराध्येन चोथा अधेन मे, छादो रुध्या रही मोख हो।
अ० मु० गुरु नीं आज्ञा माहे चालणो, प्रभु वच निर्दोख हो॥
अ० मु० इत्यादिक सूत्र नी बात नो, शाति ऋपिश्वर जाण हो।
अ० मु० विहार कियो पाली दिशा, शाति गुणा तणी खाण हो॥
अ० मु० रोयट माहे आया ऋपि, इह अवसर माहि हो।
अ० मु० कासीद बीदासर थी मोकल्यो, शाति ऋपि पासे ताहि हो॥
अ० मु० रोयट मे ऋप शाति थी, आय मिल्यो तिण वार हो।
अ० मु० बीदासर जीत विराजिया, कह्या सहू समाचार हो॥
अ० मु० पाली होयने आवै पाघरा, इह अवसर माहि हो।
अ० मु० सत हुता जे मेवाड मे, ते पिण आवै छै ताहि हो॥
अ० मु० केयक चडावल भेला हुआ, केई जैतारण माहि हो।
अ० मु० केयक पादू माहे मिल्या, मतिया पिण मिली ताहि हो॥
अ० मु० केयक सिरीयारी होय आवता, केई नवेनगर बाट हो।
अ० मु० केयक कृष्णगढ मारगे, संत सत्या रा आवै थाट हो॥
अ० मु० इण विध साधु बहु साधव्या, थली कानी आवत हो।
अ० मु० अचरज लोक पाम्यां घणा, थयो उद्योत अत्यन हो॥
अ० मु० अन्यमती पिण अचरज हुआ, थारै एवठ अत्यत हो।
अ० मु० आज्ञा तणी तीखी आसता, दीप्यो प्रभू तणो पथ हो॥
अ० मु० स्वमती च्यार तीर्थं सहू, पाया चित चिमत्कार हो।
अ० मु० शक्ति वाला बहु साधु साधवी, आय गया तिणवार हो॥

(शा० वि० ढा० ११ गा० १ से १६ तक)

इस तरह अनेक साधुओं के साथ शान्ति मुनि के लाडनू पधारने की सूचना सुनकर जयाचार्य ने दो साधुओं को उनके सामने भेजा। जिन्होंने तीस कोश लगभग चलकर ईडवा मे शान्ति मुनि के दर्शन किये—

---

1. उस।

कई वर्ष साथ रहने से वह और अधिक घनिष्ठ बनता चला गया। मुनिश्री हेमराजजी की वात्सल्यमय प्रेरणा एवं मुनिश्री जीतमलजी की सौहार्द-भरी सहानुभूति से शान्ति मुनि श्रमपूर्वक ज्ञानार्जन करने लगे। उन्होंने क्रमशः आवश्यक, दशवैकालिक, उत्तराध्ययन, बृहत्कल्प—इन चार आगमों को कण्ठस्थ किया। सूत्रों की हुंडिया, आचार्य भिक्षु कृत-३०६ बोलों की हुंडी तथा अनेक व्याख्यान आदि सीखे। ३२ सूत्रों का वाचन कर सूक्ष्म-सूक्ष्म चर्चाओं के विशेषज्ञ बने[1]।

सं० १८८१ पौष शुक्ला ३ पाली में मुनिश्री जीतमलजी का सिंघाड़ा होने के पश्चात् शान्ति मुनि को हेमराजजी स्वामी के सम्मुख प्रतिनिधि रूप में नियुक्त किया गया। व्याख्यान देना, गोचरी की देखरेख रखना तथा अन्यान्य कार्यों की संभाल वे ही रखने लगे। उनका कंठ सुरीला और वाणी में माधुर्य था जिससे उनका व्याख्यान अधिक सरस बन जाता और श्रोताओं को प्रिय लगता। उन्होंने लगभग २७ वर्षों तक मुनिश्री हेमराजजी की तन्मयता से सेवा-भक्ति कर उनके मन में विविध प्रकार से समाधि उत्पन्न की। हेम मुनि ने भी शान्ति मुनि को परम विनीत व सुयोग्य समझकर पढ़ाया और खुले दिल से ज्ञान दिया[2]। शान्ति मुनि को मुनिश्री हेमराजजी का योग मणिकांचन की तरह मिला तो मुनिश्री हेमराजजी को भी शान्ति मुनि का योग मिलना कम सौभाग्य सूचक नहीं था।

---

हरष सतीदासजी अति घणो रे, मुनि निर्मल नयणा नरो॥
(शा० वि० ढा० ८ गा० ?)

१. भारीमाल सम्प्रदाय में हेमो रे, ऋषराय तणो अति प्रेमो रे।
नीको निमल निभावण नेमो।
जीत सूं रही रीत सुजाणी रे, प्रीत री (नय) जम जेम पिछाणी रे।
सुन्दर प्रकृति सखर सुहाणी॥
(शा० वि० ढा० ८ गा० १२, १३)

२ समत अठारै इक्यासीये, पोस सुकल तिथि तीज।
कियो सिंघाड़ो जीत नो, आप्या मन सुधीज॥
सतीदासजी नै सखर, सूंप्या अधिक सुजाण।
हेम तणी सुख साता रे, सूंप्या आगवाण॥
हेम भणी हद रीत सूं, सघरी विध समझाय।
उजवाई दिल दिल करी, आणी अति उच्छाह॥
[illegible]
[illegible]
(शा० वि० ढा० ६ दो० १-६)

अ० मु० प्रगट 'पाली' सैहर मे, पक्का ह्वेला समाचार हो।
अ० मु० जीत थली माँहि अच्छै, अथवा आया मेवाड हो॥
अ० मु० जिह ग्रामे ऋप जीन ह्वैं, तिहा जाणो आपा नैं वेग हो।
अ० मु० तास आणा सिर पर धरो, छाडी मन नो आवेग हो॥
अ० मु० वडेरो ऋप काल कियां छता, जाणो जोग्य 'तणी'[1] दिशी धार हो।
अ० मु० आप छादे नही विचरणो, कह्यो सूत्र व्यवहार हो॥
अ० मु० आप छादे रहै तेहनैं, प्रसंस्या डड आय हो।
अ० मु० नसीन उद्देशे इग्यार मे, भाख्यो श्री जिनराय हो॥
अ० मु० उत्तराधेन चोथा अध्येन मे, छादो रूध्यां कह्यो मोक्ष हो।
अ० मु० गुरु नी आज्ञा माहे चालणो, प्रभु वच निर्दोख हो॥
अ० मु० इत्यादिक सूत्र नी बात नो, शाति ऋषिश्वर जाण हो।
अ० मु० विहार कियो पाली दिशा, शाति गुणा तणी खाण हो॥
अ० मु० रोयट माँहे आया ऋषि, इह अवसर माहि हो।
अ० मु० कासीद बीदासर थी मोकल्यो, शाति ऋषि पासे ताहि हो॥
अ० मु० रोयट मे ऋप शाति थी, आय मिल्यो तिण वार हो।
अ० मु० बीदासर जीत विराजिया, कह्या सहू समाचार हो॥
अ० मु० पाली होयने आवै पाधरा, इह अवसर माँहि हो।
अ० मु० मन हुता जे मेवाड मे, ते पिण आवै छैं ताहि हो॥
अ० मु० केयक चडावल भेला हुआ, केई जैतारण माँहि हो।
अ० मु० केयक पादू माहे मिल्या, सतिया पिण मिली ताहि हो॥
अ० मु० केयक सिरीयारी होय आवता, केई नवेनगर बाट हो।
अ० मु० केयक कृष्णगढ मारगे, संत सत्या रा आवै घाट हो॥
अ० मु० इण विध साधु बहु साधव्यां, थली कानी आवत हो।
अ० मु० अचरज लोक पाम्यां घणां, थयो उद्योत अत्यत हो॥
अ० मु० अन्यमती पिण अचरज हुआ, मारै एकठ अत्यत हो।
अ० मु० आज्ञा तणी तीखी आसता, दीप्यो प्रभु तणो पथ हो॥
अ० मु० स्वमती च्यार तीर्थं सहू, पाया चित चिमत्कार हो।
अ० मु० भक्ति वाला बहु साधु साधवी, आय गया तिणवार हो॥

(शा० वि० ढा० ११ गा० १ से १६ तक)

इस तरह अनेक साधुओं के साथ शान्ति मुनि के लाडनू पधारने की सूचना सुनकर जयाचार्य ने दो साधुओं को उनके सामने भेजा। जिन्होंने तीन कोश लगभग चलकर ईडवा मे शान्ति मुनि के दर्शन किये—

---

१. उस।

महावदि चवदश रात्रि मे, छोटी रावलियां माहि।
ऋषराय परलोक पधारिया, अचाणचक रा ताहि।
विशेष वेदन ना हुई, बैठा बैठा जांण।
आउ अचित्यो आवियो, गुणियो शांति सुजाण॥
कड़मी लागी अति घणी, कही कठा लग जाय।
शांति समय रम थी तदा, सीयो मन समझाय॥
धिग-धिग ए संसार नै, काल थी जोर न कोय।
ऋषराय जिसा महापुरुष था, जाय पहुंता परलोय॥
साध साधवी श्रावक श्राविका, वली अनेरा लोग।
स्वाम मरण निसुणी करी, हुओ घणा नैं सोग॥
माह सुदि सातम सांभल्यो, शांति ऋषि तिणवार।
चिहुं लोगस काउसग करी, पचक्ख्या तीनूं आहार॥

(शान्ति विलास ढा० ११ दो० १ से ६

शान्ति ऋषि ने साधुओं से कहा—जयाचार्य यदि थली प्रदेश में हैं तो हम लोगों को शीघ्र उस तरफ विहार करना चाहिए। पाली जाने पर हमें पक्के समाचार मिल जायेंगे कि जयाचार्य थली में ही हैं या मेवाड़ पधार गये हैं। वे जहां भी हों हमें वहां जाकर उनकी आज्ञा शिरोधार्य करनी है।

मुनिश्री ने बाघावास से तुरंत पाली की तरफ विहार किया। वे रोयट पहुंचे तब बीदासर से एक कासीद आया और बोला—जयाचार्य अभी बीदासर विराज रहे हैं। उसने वहां के सारे समाचार भी सुनाये। तब शांति मुनि ने पाली होते हुए बीदासर जाने का निश्चय कर विहार कर दिया। पाली से कुछ मील आगे बढ़े तब रास्ते में मेवाड़ से आने वाले साधुओं के कई सिंघाड़े चड़ावल, कई जैतारण और कई पादू में मुनिश्री के साथ हो गये। कई सिंघाड़े गिरियारी, कई ब्यावर (नयाशहर) और कई किशनगढ़ के रास्ते से आ रहे थे। इस प्रकार चल सकने वाले प्राय साधु-साध्वियों के सिंघाड़े थली की तरफ चरण बढ़ा रहे थे। समूह रूप में साधु-साध्वियों को एक शुद्ध दिशा में जाते देखकर स्वपर-मती लोग आश्चर्यचकित हो गये और तेरापंथ की एकता का गौरव गाने लगे। इस संदर्भ में मूल पद्य इस प्रकार हैं—

अहो मुनि जीत ऋषि थली देश में, विचरै छै मुनिराज हो।
अ० मु० पद युवराज पैहली दियो, वरां चांणुअं समाज हो।
अहो मुनि धिन-धिन शांति मुनीश्वर॥
अ० मु०। निरै किल्याण आपो भणी, इहां थी करिज्यो विहार हो।
अ० मु० जीत कनै जाज्यो वेग सू, न करणी ढील लिगार हो॥

दिया।'

१ मुनिश्री बड़े आत्मार्थी, पापभीरु और आगमज्ञ थे। उन्होंने उपवास, बेले, तेले, चोले, पंचोले अनेक बार किये। एक बार मास और दो बार आठ दिनों का तप किया। सं० १८९८ के पाली चातुर्मास में मुनिश्री हेमराजजी के साथ उन्होंने आछ के आगार से ३१ दिन का तप किया। उस मासखमण के समय वे प्रतिदिन मुनिश्री की वैयावृत्य करते और दोनों समय का व्याख्यान भी देते थे। उन्हें छह विगय में से तीन विगय के अतिरिक्त खाने का जीवन पर्यंत परित्याग था।'

मुनिश्री ने जिस दिन दीक्षा ली उस रात्रि को दो पछेवड़ी (चद्दर) ओढ़ी। तब मुनि जीतमलजी ने उनसे कहा—'मैं एक पछेवड़ी ओढ़ता हूं, मुनिश्री

---

१. थंदर लाडणू मे सखर, शांति मुनि नी सार।
पात्री छोड़ी जीत ऋष, आंणी महा गुणधार॥
सत्र पैंतीसा सूं सकर, विहार करी निरधार।
सुजानगढ़ आया सही, शांति संग जय सार॥
प्रात. वखाण समय पवर, च्यार तीर्थ रा थाट।
सहु सुणतां ऋष शांति नें, जीत कहै सुध वाट॥
इन्द्र पास त्रायत्रिंश सुर, दोगुंदक कहिजेह।
तिम म्हारै ए शांति है, तावतीसग सम एह॥
(शा० वि० ढा० १२ दो० २ से ६)

चौथ छठ कियो बहु वारो, अठम दशम अधिक उदारो।
मुनि कीधा है हरष अपारो रे।
मुनि प्यारा, रूडो शान्ति विलास सुणीजे॥
पांच पांच ना थोकड़ा सीधा, शांति ऋषि बहुवार कीधा।
नरभव ना लाहवा लीधा रे॥
सात दिवस किया इकवार, वले दोय अठाई उदार।
शांति ज्ञान गुणां रो भंडार रे॥
वर्ष अठाणुवे सुमुनीस, पाली मांहे पवर सुजगीस।
आछ आगारे किया इकतीस रे॥
मासखमण में शांति सयाण, नित्य हेम नी वियावच जाण।
दिया दोनूं टंक रा वखाण रे॥
त्याग तीन विगै उपरंत, जावजीव किया मुनि शांति।
सुखदायक महा गुणवंत रे॥
(शा० वि० ढा० १२ गा० १ से ६)

अ० मु० शांति ऋषिश्वर आदि दे, सत पर्णां त्यांरै सार हो।
अ० मु० लाडणूं आवै आणद सूं, मुनियां जीत निहार हो।।
अ० मु० दोय साधु तो पेहला मोकल्या, शांति ऋषि सांहमा जाय हो।
अ० मु० ईडवे जाय भेला हुआ, तीस कोस उनमान हो।।

(शांति विलास ढा० ११ गा० १७, १८)

शान्ति मुनि जिस दिन लाडनूं पधारे उस दिन जयाचार्य ने मुनि स्वरूपचन्दजी आदि साधुओं को उनकी अगवानी के लिए भेजा। अनेक भाई-बहन मुनिश्री के दर्शनार्थ सामने गये। शहर में सर्वत्र उल्लास उमड़ पड़ा और नया रंग खिल गया। शान्ति मुनि ने मुनिवृन्द के साथ जयाचार्य के दर्शन किये और भावविभोर होकर चरणों में गिर गए। 'जयाचार्य ने आत्मीय स्नेह उंडेलते हुए उन्हें हाथ पकड़कर अपने बराबर पाजोट पर बिठा लिया।'[1] शान्ति मुनि अस्वीकार करते हुए तुरन्त नीचे उतरकर जमीन पर बैठ गये। उस समय वहां उपस्थित साधु-साध्वियां तथा सैकड़ों श्रावक-श्राविकाएं उस दृश्य को देखकर अत्यन्त हर्षित हुए।'[2]

(शा० वि० ढा० ११ गा० १६ से २१)

जयाचार्य ने विशेष अनुग्रह कर शान्ति मुनि को भोजन विभाग से मुक्त किया। फिर जयाचार्य श्रमण परिवार से सुजानगढ़ पधारे। वहां प्रातःकालीन प्रवचन के समय जयाचार्य ने फरमाया—'जिस प्रकार स्वर्ग में इन्द्र के समीप सामानिक देव होते हैं उसी तरह हमारे सम्मुख शान्ति मुनि है।' इस प्रकार जयाचार्य ने शान्ति मुनि को सम्मानित किया व अपने हृदय में स्थान

---

1. इस सम्बन्ध में कहा जाता है कि जयाचार्य को रात्रि के समय स्वप्न में आभास हुआ कि ऐसा नहीं करना चाहिए।

2. अ० मु० 'लाडनूं' आई ने तिहां, जीत कहै सुणो सत हो।
   अ० मु० शान्ति साहमा सीघ्र आवजो, मन मुनी हरषत हो।।
   अ० मु० [illegible] आदि दे, सत [illegible] हो।
   अ० मु० साहमा आया [illegible], [illegible] हो।।
   अ० मु० [illegible], शांति ऋषि साहमा [illegible] हो।
   अ० मु० [illegible], [illegible] हो।।
   अ० मु० [illegible] हो।
   अ० मु० [illegible] हुआ, [illegible] हो।।
   अ० मु० [illegible] हो।
   अ० मु० [illegible] हुआ, [illegible] हो।।

   शा० वि० ढा० ११ गा० ११ [illegible]

3. [illegible]

वहा शाति मुनि सहित ५ साधु थे। पावस काल मे मुनिश्री की मधुर-प्रेरणा एव उनके प्रौढ प्रभाव से धर्म का जोर-शोर से प्रचार-प्रसार हुआ। भाई-बहनो ने दर्शन-सेवा, व्याख्यान-श्रवण, तत्त्वज्ञान आदि का अत्यधिक लाभ लिया। तपस्या की तो बाड सी आ गई। चोले से लेकर २१ तक के थोकडो की सख्या पाच सौ करीब हो गई।[1]

साधुओं मे भी अच्छी तपस्या हुई—

१. शाति मुनि ने पचोला किया।

२. मुनिश्री उदयचदजी (६५) ने ५६ दिन का तप किया (पानी के आगार से)।

३ „ हरखचदजी (११४) ने दो पचोले किये।

४. „ दीपचदजी (१४६) ने पचोला, आठ और १३ दिन (पानी के आगार से) तथा ६१ दिन आछ के आगार से किये।

५. „ नाथूजी (१५३) ने तेला तथा पचोला किया।

इस प्रकार चातुर्मास मे बहुत उपकार हुआ। मुनिश्री की यशोगाथा जन-जन के मुख पर गूजने लगी। (शा० वि० ढा १२ दो० २, ४, ७, १५ से १६ तथा ढा० १३ दो० १ से ५ और गा० १ से १० के आधार से)

७ कार्तिक महीने मे बीकानेर के श्रावकों द्वारा भेजा हुआ एक कासीद बीदासर आया। उसने शाति मुनि से बीकानेर पधारने की भावभरी प्रार्थना की। मुनिश्री ने कहा—'स्वरूपचन्दजी स्वामी का लाडनू चातुर्मास है। चातुर्मास के पश्चात् उनके दर्शन होने पर वे मुझे जहा भेजेंगे उधर ही मेरा जाने का विचार है।'

(शा० वि० ढा० १३ गा० ५)

क्रमश चातुर्मास सपन्न हुआ। मृगसर कृष्णा १ के दिन साधु श्रावकों के घर से कपडा लेकर आये। शान्ति मुनि के शरीर पर फटी हुई पछेवडी देखकर कहा—'अब शीत ऋतु आ रही है, अत. आप नई पछेवडी ओढ लीजिए।' शाति मुनि बोले—'मुनिश्री स्वरूपचन्दजी यहा पधारने वाले हैं, वे अपने हाथ से नई पछेवडी देंगे तभी ओढने की इच्छा है।' मुनि हरखचन्दजी ने अत्याग्रह किया तो शाति मुनि ने नई पछेवडी ओढने का त्याग कर दिया। शाति मुनि के चारित्र के निर्मल और रीति के जानकार थे। वे आचार्यों तथा दीक्षा-ज्येष्ठ साधुओं को हर कार्य मे आगे रखते और उन्हें विशेष महत्त्व दिया करते थे।[2]

---

१. दशम भक्त स्यू अकबीस तांई, मखर थोकडा जाण।
शाति तणी वाणी सांभल कीधा, पचसया उनमान ॥

२. बीकानेर थी आई बीनती, कार्तिक मे कासीद।
शांति कृपा कर दर्शन दीजे, बड़ा जश केरा बींद ॥

हेमराजजी वृद्ध होने पर भी दो पछेवड़ी ओढ़ते हैं तो फिर तुम इस बालक वय में ही दो पछेवडी क्यों ओढ़ते हो ?' जय मुनि की इस बात को हृदय से स्वीकार कर उन्होंने एक पछेवडी ओढ़ना शुरू कर दिया। लगभग २७ वर्ष सं० १८७७ से १९०४ तक (मुनि हेमराजजी के स्वर्गवास तक) स्वस्थ अवस्था में एक ही पछेवड़ी ओढ़ी।

मुनिश्री हेमराजजी के दिवंगत होने के पश्चात् आचार्यश्री रायचंदजी ने उन्हें आदेश दिया कि अब दो पछेवडी से कम नहीं ओढ़ना है। तब से वे दो पछेवड़ी ओढ़ने लगे।

उनकी कर्म-निर्जरा की इतनी दृष्टि रहती कि वे सर्दी के समय भी ठंडे स्थान में बैठकर अध्ययन आदि किया करते थे।[1]

६. मुनिश्री साधिक चार वर्षों तक स्व-पर का कल्याण करते हुए अग्रगण्य रूप में विचरते रहे। जयाचार्य ने उनका सं० १९०९ का चातुर्मास बीदासर के लिए घोषित किया। वे जयाचार्य की सेवा में लाडनूं से सुजानगढ़ तथा बीदासर पधारे। वहां जयाचार्य एक महीना विराजे। वापस लाडनूं पधार कर जयाचार्य ने जयपुर की तरफ विहार कर दिया। शान्ति मुनि कुछ दिन वहां ठहर कर आषाढ़ महीने में चातुर्मास के लिए बीदासर पधार गये।

---

१. दिख्या लीधी ते रात्रि मझार, ओढ़ी दोय पछेवड़ी धार।
ऋषि जीत कह्यो तिणवार रे॥
एक चादर ओढ़ूं हूं सोय, हेम वय नेड़ा आया जोय।
ते बिण ओढ़ूं पछेवड़ी दोय रे॥
स्थिवरा वास अवस्था माय, दोय चदर ओढ़ूं तूं ताय।
जीत बोल्यो इण विध वाय रे॥
शान्ति जीत तिणी सुण वाण, एक ओढ़ण लागो जाण।
तन सुख समाधे पिछाण रे॥
हेम दीक्ष्या जठा तांई देख, मुनि ओढ़ी पछेवड़ी एक।
करण री बात न्यारी पेख रे॥
हेम अवस्था पछे ऋषिराय, मुनि शान्ति भणी कहै वाय।
दोयां सूं ओछी आज्ञा नाय रे॥
जठा पछे ओढ़ण लागा दोय, आचार्य रो वचन अवलोय।
गुणनीत न लोपै कोय रे॥
शीतकाल में थर्णी शीत स्थानों रे, बैठ सके निज मौन आणो रे।
ग्यान ध्यान रमी वनानी रे॥
(शा० वि० ढा० गा० ७ से ११ तथा ढा० ८ गा० १०)

दिया। मुनिश्री स्वरूपचन्दजी ने शान्ति मुनि से पूछा—'तुम्हारे क्या तकलीफ है?' मुनिश्री ने हाथ की एक अंगुली ऊंची की पर मुख से बोला नहीं गया। शहर में सूचना मिलते ही बहुत लोग वैद्य को साथ लेकर वहां पहुंच गये। वैद्य ने नाड़ी देखकर कहा—'इन्हें शीघ्र गांव में ले चलें।' लगभग आठ मुनि उनको वंदन आदि में सुनाकर एवं विधिवत् उठाकर शहर में लाये। सर्वत्र हाहाकार सा मच गया।

औषध, तेल मर्दन आदि विविध उपचार किये परंतु एक भी कामयाब नहीं हुआ। साढ़े पांच प्रहर करीब अत्यधिक असाता रही। अजान घर तो की ही पर इशारा भी नहीं कर सके। कर्मों की गति बड़ी विचित्र होती है। न जाने किस जन्म के बंधे हुए कर्म किस जन्म में उदित हो जाते हैं। शान्ति मुनि जैसे महापुरुष को भी घोर वेदना ने आकर घेर लिया। उसी दिन लगभग अर्धरात्रि के समय वे काल प्राप्त कर गये। इस प्रकार सं० १९०९ मृगसर वदि ९ को बीदासर में शान्ति मुनि का आकस्मिक स्वर्गवास हो गया।[1]

(शा० वि० ढा० १३ गा० १७ से ३६ के आधार से)

शान्ति मुनि जैसे महापुरुष के एकाएक दिवंगत होने पर सबकी आंखों के सामने संसार की नश्वरता का चित्र घूमने लगा। काल के आगे किसी का वश नहीं चलता, ऐसा घोष बार-बार जनता के मुख से निकलने लगा। साधुओं ने शान्ति मुनि के पौद्गलिक शरीर का विसर्जन कर चार लोगस्स के ध्यान द्वारा अर्हतों का स्मरण किया। दसमी के दिन सभी ने उपवास किया। श्रावकों ने मृत्यु-महोत्सव मनाते हुए उनकी दाहसंस्कार-क्रिया की। शान्ति मुनि के अचानक स्वर्गवास होने पर चतुर्विध संघ को भारी विरह-वेदना उत्पन्न हुई[2]।

---

1. आधी रात मंदेरी आमरे, शांति मुनि कियो काल।
   उगणीसे नवके मृगसर विद, नवमी तिथ निहाल॥
   (शा० वि० ढा० १३ गा० ३६)

   गोगुदा ना जाण रे, सतीदास चरण सनतरे।
   मृगसर विद नवमी पिछाण रे, परभव बीदासर मझे॥
   (आर्या दर्शन ढा० १ सो० २)

   वर्ष सितनरै चर्ण हेम पै, सोम्य प्रकृति सुखकारो रे।
   उगणीसै नवके मुनि परभव, सतीदास गुण धारो रे॥
   (शासन विलास ढा० २ गा० ४०)

2. धिग-धिग ए संसार भणी रे, काल स्यूं जोर न कोय।
   शांति सरीखा महापुरुष ते, जाय पोहता परलोय॥
   तब योमराय काउसग में, गुणिया लोगस च्यार।
   दसम दिन सगलाई मुनिवर, पचख्या तीनूं आहार

शांति मुनि मृगसर बदि १ की रात्रि को गांव के बाहर रहे। दूसरे दिन
लाडनूं से मुनिश्री सरूपचन्दजी के पधारने पर वापस शहर में आ गये। उनके
कल्प से वहां रहे। शांति मुनि ने मुनिश्री सरूपचन्दजी के सम्मुख सारा कथन रख
दिया। उन्होंने जो दिया वह ले लिया। फिर उन्होंने शांति मुनि को निर्देश दिया
कि मृगसर बदि १२ को विहार कर बीकानेर की तरफ जाना है। मुनिश्री ने उसे
सहर्ष स्वीकार किया।

शांति मुनि मुनिश्री स्वरूपचन्दजी की आज्ञा का अखण्ड पालन करते एवं
समर्पित होकर रहते। प्रतिदिन प्रभात के समय व्याख्यान देते। मृगसर बदि ८ के
दिन शांति मुनि ने मुनि हरखचन्दजी से कहा—'आज सूत्रकृतांग सूत्र सम्पूर्ण हो
गया है। कल सुबह व्याख्यान में वाचन के लिए उत्तराध्ययन सूत्र के अन्त
मृगा पुत्र के १६ वें अध्ययन के पत्र निकालकर तैयार रखना।'

मृगसर बदि ६ के दिन मुनिश्री सरूपचन्दजी ने शांति मुनि को कहा—
'बीकानेर एक महीने रहना है। फिर आस-पास के क्षेत्रों में विचरण कर सं०
१६२० का चातुर्मास बीकानेर करना है।'

इस प्रकार परम उल्लासपूर्वक परस्पर वार्तालाप हुआ। परन्तु भावी बलवान
होती है वह कुछ का कुछ कर देती है।

उक्त वार्ता प्रसंग के पश्चात् मुनिश्री सरूपचंदजी शांति मुनि आदि के साथ
गांव के बाहर धोरों (ताजियों के धोरों) में शौचार्थ पधारे। वहां शांति मुनि के
शरीर में घोर वेदना उत्पन्न हुई एवं भयंकर उपद्रव हुआ। जबान बिल्कुल बंद
हो गई पर अन्तर चेतना थी। कुछ समय बाद मुनिश्री नाथूजी (१५३) ने उनकी
यह स्थिति देखी तब तुरत मुनिश्री सरूपचंदजी को बुलाया। मुनिश्री आये, सब
संत इकट्ठे हो गये। शांति मुनि को वहां से उठाकर एक टीबे पर लाकर सुला

---

शांति ऋषीसर इण पर भाखै, स्वरूपचजी स्वाम।
जिण दिश मुझ मेलेसी तिण दिश, विहार करण परणाम।
मृगसर विद एकम दिन मुनिवर, ततु जाच्यो ताम॥
जीर्ण चदर देख शांति रे, साध कहै सुण स्वाम॥
नवी पछेवड़ी आप करीजै, अधिक सीत अवलोय।
पवर नीत ऋष शांति तणी, भल उत्तर आपै सोय॥
सरूपचंदजी स्वाम लाडणूं, चोमासो चित्त चाव।
ते निज कर स्यूं चदर देसी, जद ओढण रा भाव॥
हरखचंद अति ही हठ कीधो, त्याग कीधा तिणवार।
शांति मुनि इम आण रीत नो, नीत प्रतीत उदार॥

सुखदाई सता भणी, समणी नै सुखदाय।
श्रावक नै वलि श्राविका, सहु नै घणू सुहाय॥
शांति प्रकृति सुन्दर सरस, मुद्रा शांति सुमोद।
शांति रसे मुनि शोभतो, पेखत लहै प्रमोद॥
उपशम रस रो आगरू, हरतमुखी हद नैण।
प्रबल पुण्य नो पोरसो, बारू अमृत वैण॥
जशधारी भारी सुजश, इकतारी अणगार।
जयकारी मुनि जन तणो, अवतरियो इण आर॥
(शा० वि० ढा० १ दो० १ से ५)

सुदर स्वभाव थां सारिखो, मनुष्य हजारा रे माय हो।
बहुलपणे नहीं देखियो, तुझ गुण अनघ अथाय हो॥
सखर मुद्रा धारी शोभतो, पवर प्रशात आकार हो।
प्रशात रस प्रभूजी कह्यो, देखलो अनुयोगद्वार हो॥
(शा० वि० ढा० ६ गा० १४, १५)

निकलक शांति मुनि निरख्यो, म्है तो मन तन सेती परख्यो।
गुण गावत हिवडो हरख्यो॥
वाह वाह रे शांति सधीरा, सायर गेहर गभीरा।
हद विमल अमोलक हीरा॥
अति सुन्दर मुद्रा एन, रूप याद आवै दिन रैण।
चित्त माहे लहै अति चैन॥
रूपराज शांति मुनि रटियो, म्हारो दुरित उपद्रव मिटियो।
पचमे आरे प्रगटियो॥
करुणानिध शांति सी किरिया, विरला चौथे आरे विरिया[1]।
इण आरे मुनि अवतरिया॥
बारमी ढाले मत सलूनो, जश धार शांति रूप जूनो।
मानू वीतराग नो नमूनो॥
(शा० वि० ढा० १२ गा० २८ से ३३)

स्वमती अथवा अन्यमती नैं, शांति मुनीसर सार।
सगला नैं सुखदाई अधिको, धर्म-मूर्त गुण धार।
बडभागी त्यागी वैरागी, सोभागी सुखकार॥
ध्यान गुणे अनुरागी गिरवो, सखर शांति अणगार॥
समता खमता दमता जमता, नमता वचन निहाल।
तमता भ्रमता वमता तन मन, मुनि शांति गुणमाल॥

१. स्वीकार की।

शान्ति मुनि सोलह साल गृहस्थ वय में रहे। बत्तीस वर्ष निर्मल भावों से चारित्र का पालन किया और अनेक प्राणियों को धर्म का प्रतिबोध दिया। हठात् अड़तालीस वर्ष की उम्र में आयुष्य पूर्ण कर गये।[1]

८. जयाचार्य ने मुनिश्री सतीदासजी के जीवन प्रसंग पर 'शांति विलास' नामक आख्यान की रचना की। उसकी १३ ढालें हैं। जिसमें ६३ दोहा १ कलश और २६५ गाथाएं हैं। जो सं० १९१० भाद्रव शुक्ला १२ बुधवार को नाथद्वारा में रचा गया है[2]। इस आख्यान को जयाचार्य ने स्वयं जोड़ते समय लिपिबद्ध किया। कुछ भाग साधुओं से लिखवाया। वह मौलिक प्रति पुस्तक भण्डार में सुरक्षित है।

उनके गुण वर्णन की मुनिश्री हरखचंदजी (१४४) तथा साध्वीश्री गुलाबांजी (२३१) इन दो ढालें 'प्राचीन गीतिका संग्रह' में है।

ख्यात, शासन विलास, ढा० ३ गा० ४१ की वार्त्तिका तथा शासन प्रभाकर भारी मल वर्णन ढा० ४ गा० १८३ से २०२ में उनके जीवन-प्रसंग का कुछ वर्णन मिलता है।

जयाचार्य ने शान्ति मुनि के विरल गुणों का मार्मिक शब्दों में उल्लेख करते हुए हार्दिक भावाभिव्यक्ति की। पढ़िये निम्नोक्त पद्य—

सुखदायक लायक सखर, वायक अमृतवान।
दायक शिव-सम्पत्ति दमी, सतीदास सुखदान॥

---

गन महोत्सव दशम प्रमाने, कीधा विविध प्रकार।
ते कारण संसार तणा छै, नहीं धर्म पुन्य लिगार॥
शांति मुनि ना समाचार सुण, गाम नगर पुर देश।
चित करड़ी सगी अधिकेरी, जाग रह्या मुनिजेश॥
(शां० वि० ढा० १३ गा० ३७ से ४०)

१. सोले वर्ष आसरै घर में, रह्या शांति ऋषि जान।
वर्ष बत्तीस आसरै चारित्र, पाल्यो अधिक प्रधान॥
सर्व आउखो शांति तणो, आसरै वर्ष अड़ताल।
घणा जीवा नैं प्रतिबोधी नैं, कियो अधिक्यो काम॥
(शां० वि० ढा० १३ गा० ४९, ५०)

२. संवत् उगणीसै वर्ष दशे, मास भाद्रवा मास।
सुदि पख बारस बुधवार मन, सिद्ध जोग सुखदाय॥
सेंधु मार्गनाथ श्रृंगार प्रधार, जोड्यो शान्ति विलास।
वर तम अन्तर मगन कारण, श्रीजीदुवार चोमास॥
(शां० वि० ढा० १३ गा० २२, २३)

कहा अंतरंगी लोग के, हो गया जीव भी मग्न हो।
वय थी तेरह वर्ष की, पड़ गया पसोपेश मन हो ॥२१॥
गाँवनि मंगल पाठ सुन, घर आये पालग पोक हो।
जीव एक पीछे रहा, झुक झुक देता है धोक हो ॥२२॥
सविनय अनुनय कर रहा, है भाव अभी उत्कृष्ट हो।
जगत में मगन करो, दे करके संयम इष्ट हो ॥२३॥

### रामायण-छन्द

बोले सेठ स्वरूप शहर में वापस आकर कुछ दिन बाद।
तेरे भाई को पृच्छा कर दीक्षा दें ज्यों हो न विवाद।
कहा जीव ने भाव इस समय मेरे उत्कंठित मुनिवर।
खबर न पल में क्या हो जाये अत: अभी दें चरण-प्रवर ॥२४॥

### दोहा

सोच रहे अब क्या करें, मन में 'शशी-स्वरूप'।
एक बात स्मृति गत हुई, इतने में तद्रूप ॥२५॥

लय—भीखणजी स्वामी···

एक वर्ष पहले लिखा, इक दीप ने पत्र स्व हाथ हो।
जो दीक्षा छह मास के, पीछे मेरा लघु भ्रात हो ॥२६॥
भारी गुरु के पास में, कागद की सही सबूत हो।
लिखित आज्ञा हो गई, है शिशु भी यह मजबूत हो ॥२७॥
दीक्षित तत्क्षण कर लिया, मुनि श्री ने नि.संकोच हो।
गृहि के कपड़ों सहित ही, कर दिया शीश का लोच हो।
जीवोजी स्वामी, दीक्षा पाये हैं गृहि के वेष में ॥२८॥
साल सततर विक्रमी, छठ कृष्ण महीना पोष हो।
स्थान 'कागणीमाल' का, कूपान्तिक साधिक कोश हो ॥२९॥
दीक्षित करते ही उन्हें, पहनाया मुनि का वेष हो।
एकव्रती को भेज के, घर पहुंचाया संदेश हो ॥३०॥
दीप गया वाणिज्य हित, थी उनकी स्त्री गृह मध्य हो।
जीव संयमी बन गया, कह आया वह मुनि सद्य हो ॥३१॥

दोनों ने मिल लोच किया है, धोवन बहु दिन विरस पिया है।
सतत साधना पथ पर पलक बिछाते ॥८॥
गुरु भाई को कहता अवरज, दो आज्ञा लूं संयम सजधज।
भ्रातृ-मोह से उनके नयन भराते ॥९॥
कठिन कठिनतम साधु नियम हैं, दु:सह परिषह अति दुर्गम हैं।
बालक वय है अभी, क्यों न ठहराते ॥१०॥
भारी-ऋषिवर-जीत विरागी, बने बाल वय में गृह त्यागी।
मुझको क्यों फिर इतना भय दिखलाते ॥११॥
बातचीत में खींचातान, देख उपासक अगेवान।
शान्ति भाव से दोनों को समझाते ॥१२॥
कागद लिख कर दी साह्लाद, अनुमति एक अयन के बाद।
सबके सम्मुख पढ़कर उसे सुनाते ॥१३॥
सतों ने वह पत्र ले लिया, प्रभु चरणों में नजर कर दिया।
कर उपकार वहां से सुगुरु सिधाते ॥१४॥
पहुंचाने को आये जीव, लगी वहां संयम की नींव।
कर विवाह के त्याग गेह पर आते ॥१५॥
देवर भोजाई सोमग, खूब बढ़ाते अंतर रंग।
आध्यात्मिक भावों को शिखर चढ़ाते ॥१६॥

लय—भीखणजी स्वामी…

जीवोजी स्वामी, दीक्षा पाये हैं तेरापथ में।
लघु सोदर दीपाजि के, लाये जीवन में आब हो। जीवो…
ध्रुवपद॥

सोभागा जय-ध्यान ने, कर पुर में सनत्तर साल हो।
गंगापुर पावन किया, छाई है मंगलमाल हो ॥जी०…१७॥
धर्म ध्यान की लौ लगी, नव ज्योति जगी दिन-रात हो।
मुनि श्रमणी संयोग में, आ जाती स्वर्ण प्रभात हो ॥१८॥
करके दीप व जीव ने, ऋषि स्वरूप-सपर्क हो।
धर्म-लाभ अच्छा लिया, सात्विक रस लिया सतर्क हो ॥१९॥
अति बड़ा उपकार कर, मुनिवर ने किया विहार हो।
पहुंचाने नर-नारियां, आये वर्द्धमान विचार हो ॥२०॥

किया सिंघाड़ा पूज्य ने, जब हो पाये मुनि योग्य हो।
पढ़े लिखे मुनिवृन्द में, पाया है स्थान मनोज्ञ हो।।६७।।
बोलचाल की धारणा, की पढ़ आगम बत्तीस हो।
सूत्र याद कितने किये, फल श्रम का बिसवाबीस हो।।६८।।
रंग चित्र लिपि शिल्प की, पटुता में मुनि पारीण हो।
लिखा पत्र चालीस में, भगवती सूत्र सगीन हो।।६९।।
करते दोनों हाथ से, लेखन आदिक सब काम हो।
श्रमण नाम सार्थक किया, कर-कर के श्रम हर याम हो।।७०।।
कंठ मधुर व्याख्यान की, सीखी है कला सयत्न हो।
उदाहरण वा हेतु के, थे जानकार मुनि रत्न हो'।।७१।।
साहित्यिक अभिवृद्धि मे, था योगदान अनुकूल हो।
रचनाएं संक्षेप में, करते भरते रस मूल हो।।७२।।
सूत्रों की जोड़ें विविध, की निजमति के अनुसार हो।
दश हजार अनुमानतः, पद संख्या का विस्तार हो'।।७३।।
विचर-विचर अच्छा किया, पुर पुर मे धर्म प्रसार हो'।
समझाये नर सैंकड़ो, दी नौ दीक्षा दिलदार हो'।।७४।।

दोहा

रहे अकेले एकदा, वासर सत्ताईस।
दोष न कारण में तनिक, बोले शासन-ईश'।।७५।।

लय—भीखणजी…

आयम्बिलि वर्धमान का, तप चालू किया विशिष्ट हो।
ऊंचे चौवालीस की, श्रेणी तक चढ़े बलिष्ठ हो''।।७६।।
जय ने अन्तिम समय मे, सहाय्य दिया सुप्रशस्त हो।
सेवा में भेजे व्रती, है सब व्यवस्था स्वस्थ हो।।७७।।
शतोन्नीस उन्नीस में, पहुंचे सकुशल परलोक हो।
अमर नाम वे कर गये, भर गये नया आलोक हो।।७८।।

दोहा

दो बांधव की जीवनी, लिखी साथ में एक।
सामग्री एकत्र की, विवरण-स्थल मत टेर''।।७९।।

बेले में भी छोड़ दिया जल, धर कर अधिक विराग।
यदि पीये तो पूर्णाहुति-दिन, छहों विगय का त्याग ॥५३॥
सतरह द्रव्य रखे हैं केवल, तीन विगय परिहार।
रुग्णावस्था में भी छोड़ा, औषध का उपचार ॥५४॥
एक प्रहर की मौन हमेशा, समता भाव अमाप।
शीत सहा बारह वर्षों तक, आठ साल तक ताप' ॥५५॥
भिलवाड़ा अन्तिम पावस कर, पुर में मुनिवर आये।
तनु-आमय होने से अनशन, सागारी कर पाये ॥५६॥
फाल्गुन कृष्ण अमा को बोले, प्रबल मनोबल धारी।
आजीवन करवाओ सतो ! सथारा सुखकारी ॥५७॥
जीव, गुलाब श्रमण तब कहते, कठिन कार्य यह भारी।
धान धूलवत् लगता मुझको, बोले पौरुष धारी ॥५८॥
दुष्कर कायर नर को है पर, नहीं वीर हित गाऊ।
मृत्यु नींद में आ जाए तो, अनशन बिना सिधाऊ ॥५९॥
चिंता नही मास दो निकले, दृढ़तम मन का चक्का।
सुनकर शब्द सतोले अनशन करवाया है पक्का ॥६०॥
दिया सुखद सहयोग जीव ने, सच्ची प्रीति निभाई।
भगिनी 'मया' सती कर दर्शन, तन मन में फूलाई ॥६१॥
धन्य तपस्वी वीर वृत्ति को, धन्य तपस्वी ध्यान।
धन्य तपस्वी विरति भाव को, गाते जन गुणगान ॥६२॥
नवति तीन शत अष्टादश की, फाल्गुन शुक्ला तीज।
पुर से सुरपुर में पहुंचे हैं, मिली सुकृत की रीझ' ॥६३॥

## दोहा

गाना अब जीवर्षि के, यशोगान रुचिकार।
सयम में रम के किया, कैसे आत्मोद्धार ॥६४॥

### लय—भीखणजी···

लघु सोदर मुनि जीव भी, संयम रस में गलतान हो।
भद्र प्रकृति विनयी गुणी, थे मधुभाषी मतिमान हो ॥६५॥
चतुर्मास पहला किया, भारी गुरुवर के सग हो।
सेवा में ऋषिराय की, फिर जय पद में सोमग हो ॥६६॥

अनेक गांवों के भाई-बहन गुरु दर्शनार्थ एवं प्रवचन सुनने के लिए आते। स्थानीय लोगों के लिए तो मानो घर बैठे साक्षात् गंगा ही आ गयी थी। वे तो सेवा-भक्ति तथा व्याख्यान-श्रवण आदि का पूरा-पूरा लाभ उठाते। दीपोजी, जीवोजी तथा दीपोजी की स्त्री ने बोधप्रद उपदेश सुना तो उनके दिल में विरति के अंकुर प्रस्फुटित हो गए। कुछ ही दिनों बाद छोटे भाई जीवोजी ने गुरुदेव के सम्मुख अपनी संयम लेने की भावना प्रस्तुत की तो आचार्य प्रवर ने फरमाया—'जो समय जाता है वह वापस नहीं आता अतः शुभ कार्य को शीघ्रतर कर लेना चाहिए।' जीवोजी गुरु-वचनों को हृदयगम कर अपने घर आए और बुलंद शब्दों में बोले—'भाभीजी! हम दोनों को साधुत्व-ग्रहण कर अपने जीवन का कल्याण करना है।' भाभी ने कहा—'हां! देवरजी! मेरी भी यही इच्छा है इसलिए हमें इस कार्य में विलंब नहीं करना चाहिए। आप अपने बड़े भाई से अनुमति प्राप्त कर लीजिए, मैं अन्तःकरण से आपके साथ ही दीक्षित होने की कामना करती हूं। इससे पहले हमें कुछ समय अपनी शक्ति को तोल लेना चाहिए, जिससे हम साधु जीवन में आने वाले कष्टों को सहर्ष सहन कर सकें।' इस प्रकार देवर-भौजाई ने निर्णय कर साधना हेतु बहुत दिनों तक अचित्त प्रासुक धोवन पानी पीने का अभ्यास किया और परस्पर केश लुंचन कर अपनी क्षमता को कसौटी से कसा[1]।

अपनी ओर से सभी तरह की तैयारी कर लेने के बाद एक दिन जीवोजी ने अपने बड़े भाई दीपोजी के सामने अपनी विचारधारा रखी और दीक्षा की स्वीकृति प्रदान करने के लिए कहा। यह सुनते ही मोहवश दीपोजी की आंखों में आंसू बहने लगे और गद्गद् स्वर में बोले—'मेरे मना करने का तो परित्याग है पर साधु-जीवन बड़ा कठोर है और तुम्हारी अभी कोमल बालक वय है अतः तुम इस गुरुतर भार को कैसे निभा सकोगे?' जीवोजी ने दृढ़तापूर्वक कहा—'जिसके मन में वास्तविक वैराग्य होता है वह बालक भी साधना के दुर्गम पथ पर चल सकता है। पूर्वकाल में भी अनेक व्यक्तियों ने बालक वय में दीक्षा ग्रहण की और वर्तमान में भी आचार्य भारीमालजी, मुनि रायचंदजी तथा शीतमलजी का उदाहरण आपके सम्मुख है जो शैशव वय में ही दीक्षित हुए थे।'

इस प्रकार आपस में वार्तालाप हुआ और कुछ-कुछ खिंचाव होने लगा। तब समझदार श्रावकों ने दोनों को समझाया और दीपोजी द्वारा एक पत्र लिखवाया, जिसमें लिखा था कि 'आज से छह महीनों बाद मेरा भाई दीक्षा ले तो मेरी आज्ञा है।' श्रावक फतेहचन्दजी ने उस पत्र को पढ़कर सुना दिया। साधुओं ने दूर दृष्टि

---

१. पछै माहोमां लोच कियो दोनूं जणांजी, धोवण पीधो बहु दिन छाण रे।
ए देवर भोजाई मनसोबो कियोजी, भाखी पेली ढाल वखाण रे॥
(जी० कृ० ढा० १ गा० ८)

अनेक गांवों के भाई-बहन गुरु दर्शनार्थ एवं प्रवचन सुनने के लिए आते। स्थानीय लोगों के लिए तो मानो घर बैठे साक्षात् गंगा ही आ गयी थी। वे तो सेवा-भक्ति तथा व्याख्यान-श्रवण आदि का पूरा-पूरा लाभ उठाते। दीपोजी, जीवोजी तथा दीपोजी की स्त्री ने बोधप्रद उपदेश सुना तो उनके दिल में विरति के अंकुर प्रस्फुटित हो गए। कुछ ही दिनों बाद छोटे भाई जीवोजी ने गुरुदेव के सम्मुख अपनी संयम लेने की भावना प्रस्तुत की तो आचार्य प्रवर ने फरमाया—'जो समय जाता है वह वापस नहीं आता अतः शुभ कार्य को शीघ्रतर कर लेना चाहिए।' जीवोजी गुरु-वचनों को हृदयंगम कर अपने घर आए और बुलंद शब्दों में बोले—'भाभीजी! हम दोनों को साधुत्व-ग्रहण कर अपने जीवन का कल्याण करना है।' भाभी ने कहा—'हां! देवरजी! मेरी भी यही इच्छा है इसलिए हमें इस कार्य में विलंब नहीं करना चाहिए। आप अपने बड़े भाई से अनुमति प्राप्त कर लीजिए, मैं अन्तःकरण से आपके साथ ही दीक्षित होने की कामना करती हूं। इससे पहले हमें कुछ समय अपनी शक्ति को तोल लेना चाहिए, जिससे हम साधु जीवन में आने वाले कष्टों को सहर्ष सहन कर सकें।' इस प्रकार देवर-भौजाई ने निर्णय कर साधना हेतु बहुत दिनों तक अचित्त प्रासुक धोवन पानी पीने का अभ्यास किया और परस्पर केश लुंचन कर अपनी क्षमता को कसौटी से कसा[1]।

अपनी ओर से सभी तरह की तैयारी कर लेने के बाद एक दिन जीवोजी ने अपने बड़े भाई दीपोजी के सामने अपनी विचारधारा रखी और दीक्षा की स्वीकृति प्रदान करने के लिए कहा। यह सुनते ही मोहवश दीपोजी की आंखों में आंसू बहने लगे और गद्गद् स्वर में बोले—'मेरे मना करने का तो परित्याग है पर साधु-जीवन बड़ा कठोर है और तुम्हारी अभी कोमल बालक वय है अतः तुम इस गुरुतर भार को कैसे निभा सकोगे?' जीवोजी ने दृढ़तापूर्वक कहा—'जिसके मन में वास्तविक वैराग्य होता है वह बालक भी साधना के दुर्गम पथ पर चल सकता है। पूर्वकाल में भी अनेक व्यक्तियों ने बालक वय में दीक्षा ग्रहण की और वर्तमान में भी आचार्य भारीमालजी, मुनि रायचन्दजी तथा जीतमलजी का उदाहरण आपके सम्मुख है जो शैशव वय में ही दीक्षित हुए थे।'

इस प्रकार आपस में वार्तालाप हुआ और कुछ-कुछ खिंचाव होने लगा। तब समझदार श्रावकों ने दोनों को समझाया और दीपोजी द्वारा एक पत्र लिखवाया, जिसमें लिखा था कि 'आज से छह महीनों बाद मेरा भाई दीक्षा ले तो मेरी आज्ञा है।' श्रावक पन्नेहचन्दजी ने उस पत्र को पढ़कर सुना दिया। साधुओं ने दूर दृष्टि

---

१. पछै मांहोमां लोच कियो देवू बच्चेजी, धोवन पीयो बहु दिन छन्द रे।
ए देवर भोजाई मनरो जो विरोजी, धाली देखी हरख बधाय रे॥
(डी० बृ० ग० १ गा० ८)

द्वितीयाचार्य श्री भारीमालजी ने सं० १८७६ का पुर में चातुर्मास किया। चातुर्मास संपन्न कर मृगसर महीने में वे गंगापुर (मेवाड़) पधारे। उस समय मुनिश्री हेमराजजी ६ साधुओं से देवगढ़ में चातुर्मास कर एवं वहां तीन भाइयों (रतनजी, जितजी, कर्मचन्दजी) को दीक्षा देकर १२ साधुओं से गंगापुर पहुंचे और गुरुदेव के दर्शन कर उनके चरणों में नव-दीक्षित मुनि-त्रिपुटी को भेंट किया[1]। आचार्य प्रवर ने प्रसन्न होकर मुनिश्री द्वारा किए गए उपकार की भूरि-भूरि प्रशंसा की। अनेक साधुओं के सम्मिलित होने से गंगापुर में नई चहल-पहल लग गयी। श्रावक-श्राविकाओं में नया उल्लास उमड़ पड़ा।

वहां हीरजी (हरजी) चावत (ओसवाल) के दो पुत्र दीपोजी और जीवोजी थे। उनकी माता का नाम सुगणाजी (चावेलों की बेटी) था। दीपोजी की पत्नी का नाम चनूजी था[2]।

उनके एक बहिन मयाजी थी, जिनका विवाह देवगढ़ के सहलोत गोत्र में हुआ था। दीपोजी और जीवोजी के पूर्वज पहले आमेट में रहते थे फिर गंगापुर में निवास करने लगे[3]।

मयाजी ने दोनों भाईयों से पहले सं० १८७२ मृगसर कृष्णा १ को आमेट में साध्वीश्री जोताजी (४८) द्वारा दीक्षा ग्रहण की थी, ऐसा मया सती गुण वर्णन ढा० १ गा० ४, ५ में उल्लेख है।

आचार्यश्री भारीमालजी का वहां कई दिनों तक ठहरना हुआ। आसपास के

---

१. विचरत विचरत पूज पधारिया जी, गंगापुर शहर मझार रे।
हलुकर्मी तो सुण हरख्या घणा जी, तन मन नैण उलसिया सार रे॥
(मुनि जीवोजी कृत दीप गुण वर्णन ढा० १ गा०)

बारै ऋषि सू हेम ऋषि, गणपति दर्शण कीध।
स्वाम प्रशंसा करै तदा, वर उपगार प्रसीध॥
(स्वरूप नवरसा ढा० ६ दो० ३)

तीनू नैं दीक्षा देई विशालो रे, हेम आया गंगापुर चालो रे।
तिहां भेट्या पूज भारीमालो रे॥
(कर्मचन्द गुण० व० ढा० १ गा० ३२)

२. हीराजी चावत रो बेटो दीपजी, चनू भोजाई नैं जीवराज रे।
ए तीनूं ही वखाण सुणी वेरागिया, जी, सधु बधव सुधारै काज रे॥
(जी० कृ० दी० गु० व० ढा० १ गा० ३)

३. पीहर संजम पाइयो रे, सैहर आमेट मझार।
सुरगढ़ पायो सासरो रे, जात सेलोत सुधार॥
(जी० कृ० मयासती गु० व० ढा० १ गा० २)

तक वहां ठहरे जिससे श्रावक-श्राविकाओं में अच्छी धर्म-जागरणा हुई। जीवोजी ने तो बड़ी तन्मयता से मुनिश्री के सान्निध्य का लाभ लिया। यथासमय मुनिश्री ने विहार किया तब भाई-बहनें उन्हें पहुंचाने आए। जीवोजी भी बस्ता और अंगरखी (अचकन) को खोलकर साथ हो गए। सारी जनता गांव के बाहर तक आयी और मंगल पाठ सुनकर वापस चली गयी। केवल १३ वर्षीय बालक जीवोजी ही मुनिश्री की सेवा में रहे। उन्होंने वहां जंगल में ही मुनिश्री के चरणों में झुक-कर नम्र निवेदन किया—'मुनिश्री ! मेरी अभी प्रबल भावना है अतः आप मुझे अभी और इसी जगह साधुत्व अंगीकार करवा दें।' मुनिश्री ने कहा —'तुम्हारी इतनी उत्कट इच्छा है तो हम वापस गंगापुर चलें और तुम्हारे भाई-भौजाई को पूछकर तुम्हें दीक्षा दे दें।' जीवोजी बोले—'मुनिवर्य ! इस समय मेरे भावों की श्रेणी उत्कृष्टतम है, पीछे न जाने कैसी स्थिति रहे इसलिए आप मेरी प्रार्थना को अभी क्रियान्वित करें।' इस प्रकार जीवोजी का अत्याग्रह देखकर मुनिश्री ने चिन्तन किया—'इसके (जीवोजी के) बड़े भाई दीपोजी ने आज से लगभग १ साल पहले एक कागद लिख दिया था, जिसमें लिखा था कि छह महीनों के बाद मेरा छोटा भाई जीवोजी दीक्षा ले तो मेरी आज्ञा है।' और वह कागद आचार्यश्री भारीमालजी के पास सुरक्षित है इसलिए दीक्षा देने में सिद्धान्ततः कोई आपत्ति नहीं है।' इसके बाद फिर अच्छी तरह पूछताछ कर मुनिश्री ने जंगल में ही जीवोजी को साधुव्रत ग्रहण करवा दिया। तत्पश्चात् केशलुंचन की रश्म अदा की और साधु वेष पहनाया। गृहस्थ के कपड़े एक साधु को देकर गंगापुर भेजा। वह दीपोजी के घर गया। उस समय दीपोजी घर पर नहीं थे उनकी पत्नी (जीवोजी की भाभी) थी, वह उन्हें 'जीवोजी तो साधु बन गया है' ऐसा कहकर तुरंत वापस लौट आया।

इस प्रकार सं० १८७७ पोष कृष्णा ६ को गंगापुर से डेढ़ कोस दूर कागणी के माल (ताल) में कुएं के समीप मुनि स्वरूपचन्दजी ने जीवोजी को १३ वर्ष की अविवाहित वय में दीक्षा प्रदान की—

पुर सूं विहार करी मुनि रे, गंगापुर में आय।
जीव ऋषि नैं सौंभलो रे, चरण दियो सुखदाय॥

(स्वरूप नवरसो ढा० ६ गा० १)

लघु बंधव तिण अवसरे रे, लीधो संजम भार।
बंधव नैं न जणाइयो रे, कर दियो खेवो पार॥

(जी० कृ० दीप गु० व० ढा० ३ गा० ७)

उनके संयम-भार की महत्ता बतलाते हुए किसी ने एक पद्य में लिखा है—
'जीवा तूं तो भोलो रे, कागणी का माल (ताल) में उठायो घी को गोल्डो रे।'
मुनिश्री स्वरूपचन्दजी वहां से विहार कर कांकडोली पधारे। आचार्यश्री

से चिंतन कर उस पत्र को लेकर भारीमालजी स्वामी की पुस्तिका में सुरक्षित रख दिया[1]। भारीमालजी स्वामी ने अच्छा उपकार कर यथासमय वहां से विहार कर दिया।

(मुनि जीवोजी कृत दीप मुनि गु० व० ढा० १, २ के आधार से)

जीवोजी आचार्यश्री को पहुंचाने के लिए गांव के बाहर तक गए। वहां उन्होंने गुरुदेव के मुखारविन्द से विवाह करने का प्रत्याख्यान कर लिया। गुरु-चरणों में वंदना कर व मंगलपाठ सुनकर वापस अपने घर आ गए। वे बड़े हलुकर्मी थे जिससे त्याग-विराग के प्रति उनका दिन-दिन आकर्षण बढ़ता रहा। उन्होंने अपनी भोजाई के साथ तत्त्वज्ञान करना चालू कर दिया। देवर-भौजाई का माता-पुत्र की तरह पारस्परिक हेत-मिलाप इतना था कि एक घड़ी के लिए भी अलग-अलग रहना दोनों के लिए कठिन था। जब दीक्षित होने के लिए उत्सुक हुए तब उनका वह संबंध वैराग्य रस में ओत प्रोत हो गया[2]।

सं० १८७७ में मुनिश्री स्वरूपचंदजी ने ५ साधुओं से पुर में वर्षावास किया। वहां बहुत उपकार कर चातुर्मास के पश्चात् मुनिश्री गंगापुर पधारे[3]। कई दिनों

---

१. यह आमी सामी जकजोलो रे, श्रावकां मिल कीधो कोलो रे।
पट्मास पछै आज्ञा नों बोलो रे।।
इण कागद में लिख वाचो रे, फतैचन्द श्रावक मुख साथो रे।
साधां सीधो कागद नें जाचो रे।।
(जी० कृ० ढा० २ गा० ७, ८)

२. मुनिवर रे! पहुंचावण जाता थकां रे, बोले एहवी वाय हो लाल।
करायदो मुज सामजो रे, परणवा रा पचखाण हो लाल।
सत सगण फल एहवा रे।। मु०।।
मु० सील आदरियो चूप सू रे, पहुंचावी गिर नाम।
त्याग वैराग बधाय नै रे, आया घर अभिराम।।
(जी० कृ० ढा० ३ गा० १, २)
सीधं चरचा वारता रे, भाई भोजाई तीन।
हलुकर्मी छै जीवड़ा रे, हेत मिलाप महलीन।।
थव भौजाई तणां रे, देवर सू दिन जाय।
एक घड़ी अलगा रहा रे, दोय जणां दुख थाय।।
कबुयक रस मैं कमणो रे, कबुयक करै विनोद।
कबुयक जीमै एकठा रे, बात करै दिल मोद।।
(जी० कृ० ढा० ३ गा० ४, ५)

३. काम विनोयक सीना पछै रे, सरूपचन्द अणगार।
गंगापुर मे आविया रे, पच साथ परिवार।।
(जी० कृ० दी० गु० व० ढा० ३ गा०.

सामाजिक के लोग जो विरुद्ध हो गए थे उन्होंने जब यह सुना कि स्वयं दीपोजी ने भी पत्नी सहित दीक्षा ले ली है तो उनके आश्चर्य का ठिकाना न रहा। उनकी जबान पर ताला-सा लग गया। आखिर गुरु-दर्शन कर अपनी भूल को स्वीकार करते हुए वे संघ और गणपति के प्रति आस्थावान व वफादार बन गए।

मुनि जीवोजी ने पौष महीना में और मुनि सतीदासजी ने माघ महीना में दीक्षा ली। सतीदासजी की 'बड़ी दीक्षा' (छेदोपस्थाप्य चारित्र) आठवें दिन होने से वे जीवोजी से बड़े हो गए। दीपोजी बड़े भाई थे अतः गुरुआज्ञानुसार उन्हें बड़ा रखने के लिए जीवोजी को बड़ी दीक्षा छह महीनों से दी गयी जिससे दीपोजी जीवोजी से बड़े हो गए।

(दीपोजी जीवोजी की ख्यात तथा शासन विलास ढा० ३ गा० ४२, ४३ की वार्तिका)

मुनि दीपोजी और जीवोजी की बड़ी बहन साध्वीश्री मयाजी (८२) ने सं० १८७२ में दीक्षा ग्रहण की थी। इस प्रकार एक घर के चार व्यक्ति संयमी बन गए[1]।

३. मुनि दीपोजी और जीवोजी साधनारत होकर साधु जीवन का निखार करने लगे। मुनि दीपोजी प्रौढ़वय में दीक्षित हुए थे अतः वे अधिक अध्ययन नहीं कर सके परन्तु उन्होंने अपने पुरुषार्थ को त्याग तपस्या में लगाकर अनुकरणीय उदाहरण प्रस्तुत किया। उनके तप आदि का विवरण इस प्रकार है—शेषकाल में उपवास बेले आदि बहुत किए तथा—

$\frac{७}{१}$ — $\frac{१७}{१}$ (उदक के आगार से), सात महीने एकान्तर तथा २ महीने बेले-बेले तप किया।

सोलह चातुर्मासों में[2]—

---

साम सरूप आयो करी रे, बिहु नै दिख्या दीध।
दर्शन चोथा पूजा ना रे, जग माहे जश लीध॥
(सरूप नवरसो ढा० ६ गा० ४, ५)

भाई भोजाई साभली रे, आणी मोह अथाय हो।
अनुक्रमे त्या पिण लियो रे, साधपणो सुखदाय हो॥
(जो० कृ० दी गु० व० ढा० २ गा० ८)

१. दीपचन्द ऋषि दीपतो, भाई भगिनी नार।
या मगना संजम लियो, एकण घर का च्यार॥
(जयाचार्य विरचित दीप गु० व० ढा० १ दो० १)

२. सतनरे संजम लियो, त्राणुए संथार।
चौमासा सोलह मझे, तप कियो दीप अणगार॥
(जय० कृ० दी० गु० व० ढा० १ दो० २)

भारीमालजी के दर्शन कर नव दीक्षित मुनि को भेंट किया और सब हकीकत कही। आचार्य प्रवर तथा सभी साधु बहुत प्रसन्न हुए।

(दीपोजी जीवोजी की ख्यात तथा शासन विलास ढा० ३ गा० ४२, ४३ की वार्तिका के आधार से)

२. दीपोजी व्यापार के निमित्त आसपास के गांवों में गए हुए थे। जब वे वापस घर आए तब उन्हें पता चला कि मेरे भाई जीवोजी को दीक्षित कर लिया गया है। फिर तो वे इतने क्रोधावेश में आ गए कि अपने को संभाल नहीं सके और मुख से अटसट बोलने लगे। कुछ ही दिन बाद आमेट में जाकर लोगों के समक्ष भारी बकवास किया और भिक्षु-शासन के बहुत अवर्णवाद बोले। कुछ व्यक्ति विरोधी थे ही और कुछ इस बात को सुनकर विपक्ष में हो गए। उन्होंने चारों ओर मिथ्या प्रचार करना प्रारम्भ कर दिया। इससे आमेट तथा लावा आदि गावों के काफी लोग साधुओं की निन्दा करने लगे और धर्मसंघ से विमुख हो गए।

थोड़े दिनों के बाद स्वयं दीपोजी कांकडोली में भारीमालजी के समीप पहुंचे और उत्तेजित होकर अपना सारा बफारा निकालने लगे। आचार्य प्रवर एवं साधुओं ने खामोशी के साथ उनकी सब बातें सुनी और उन्हें उनके हाथ का लिखा हुआ वह आज्ञा का पत्र दिखलाया। उसे देखते ही वे ठंडे पड़ गए। बोलने के लिए कोई शब्द नहीं रहा। फिर मुनि खेतसीजी तथा रायचन्दजी ने उन्हें धीरे-धीरे मधुर शब्दों में समझाया और वैराग्यवर्धक अनेक हेतु-दृष्टान्तों द्वारा संसार की नश्वरता का बोध कराया। समय की बात थी कि मुनिवृंद का वह उपदेश उन पर जादू की तरह असर कर गया। दीपोजी की पत्नी चनूजी भी साथ में थी। दोनों इतने प्रभावित हुए कि उनके मन में वैराग्य की धारा प्रवाहित हो गयी और दोनों ने तत्काल खड़े होकर गुरु-साक्षी से आजीवन ब्रह्मचर्य का त्याग कर दिया। फिर दोनों ने गुरु-चरणों में सादर सविनय भक्ति पूर्वक वंदन कर कहा—'प्रभुवर! हमारी भी दीक्षा लेने की उत्कट भावना है अतः आप कृपा कर शीघ्रातिशीघ्र हमें संयम देकर हमारी नैया को भव-समुद्र के पार पहुंचाएं।' ऐसा निवेदन कर वे वापस गंगापुर आ गए।

भारीमालजी स्वामी ने अनुग्रह कर मुनिश्री स्वरूपचन्दजी को ही गंगापुर भेजा। साथ में साध्वियों को वहां जाने का आदेश दिया। मुनिश्री ने गुरु-आदेशानुसार वहां जाकर सं० १८७७ ज्येष्ठ शुक्ला १३ को दीपोजी और उनकी पत्नी चनूजी को संयम प्रदान किया। फिर मुनिश्री ने गुरु-दर्शन कर उन्हें समर्पित किया[1]।

---

१. साम स्वरूप नै गंगापुरे, चारित देवा सार।
अति हर्षे मनमांही भणी रे, भारीमाल विचार॥

किया¹। बेले-बेले तप तो चालू था ही। पारणे के दिन विविध अभिग्रह ग्रहण करते। बेले की तपस्या में यदि पानी पीए तो पारणे में छहों विगय खाने का परित्याग किया।

फिर उसी वर्ष सतरह द्रव्य एवं तीन विगय के अतिरिक्त खाने का तथा रुग्णावस्था में औषध लेने का प्रत्याख्यान कर दिया। प्रतिदिन एक प्रहर मौन रखने का संकल्प किया। इस प्रकार वे प्रतिदिन वैराग्य वृद्धि करते रहे²।

(१६) सं० १८९३ के सोलहवें बीमवासा चातुर्मास में बेले बेले तप किया। सं० १८९१ से ९३ तक लगभग दो वर्ष लगातार बेले-बेले तप हो गया। उक्त तप के कुल थोकड़े इस प्रकार हैं—

उपवास बेले आदि बहुत,

| ७ | ८ | ९ | १० | १७ | ३० | ३१ |
|---|---|---|---|---|---|---|
| १ | २ | १ | १ | १ | ४ | १ |

| ३६ | ४५ | १२५ | १५५ | छहमासी | एकांतर | बेले बेले |
|---|---|---|---|---|---|---|
| १ | १ | १ | १ | १ | ८॥ महीने | २ वर्ष २ महीने लगभग |

मुनि जीवोजी कृत दीप गुण वर्णन ढा० ४ गा० ७ से ९ तथा ढा० ५ गा० १ में मुनि दीपोजी की तपस्या का विवरण उपर्युक्त उल्लेख से कदाचित् भिन्न है।

| एकांतर | बेले | मासखमण | ३१ | ३२ |
|---|---|---|---|---|
| ८॥ महीने | २७५ अधिक चौविहार | ५ | १ | १ |

| ३६ | ४५ | चौमासी | पांचमासी | छहमासी |
|---|---|---|---|---|
| १ | १ | १ | १ | १ |

अठाई आदि अनेक थोकडे किए।

कुल सोलह चातुर्मासों के तप के दिन ४ वर्ष और एक महीना लगभग होता है।

तपस्या के साथ मुनिश्री स्वाध्याय, ध्यान तथा साधुओं की वैय्यावृत्य भी भी करते थे³।

---

१. इस मासखमण में केवल एक मन पानी पिया।
'मण जल नो महिनो कियो रे।'
(दी० गु० व० ढा० ४ गा० ११)

२. पछै बेला में पाणी पचखियो, पाणी पीधा हो पारणें विगैं त्याग।
द्रव्य सतरैं उपरत त्यागिया, दिन-दिन हो चढ़तो छैं वैराग।।
विगै तीन उपरत लेणी नहीं, कारण पड़िया हो औषध रा पचखाण।
नित्य एक पौहर मून साझणी, चित्त धैर्यो हो मुनि समता आण।।
(ज० कृ० दी० गु० व० ढा० १ गा० १३, १४)

३. नित्य प्रति ज्ञान चितारता रे, सत ध्यावच चित्त धार।
(दी० गु० व० ढा० ५ गा० १३)

(१) १८७८ के प्रथम चातुर्मास में मासखमण।
(२) १८७९ के दूसरे „ „ ३६ दिन।
(३) सं० १८८० के तीसरे चातुर्मास में १२५ दिन।
(४) सं० १८८१ के चौथे „ „ मासखमण।
(५) सं० १८८२ के पांचवे „ „ १५५ दिन।
(६) सं० १८८३ के छठे „ „ मासखमण।
(७) सं० १८८४ के सातवें „ „ ८ दिन।
(८) सं० १८८५ के आठवें „ „ ८ दिन।
(९) सं० १८८६ के नौवें पीपाड़ चातुर्मास में मुनि हेमराजजी (३६) के साथ छहमासी तप किया[1]।
(१०) सं० १८८७ के दसवें नाथद्वारा चातुर्मास में मुनि हेमराजजी के साथ ३१ दिन का तप किया[2]।
(११) सं० १८८८ के ग्यारहवें गोगुंदा चातुर्मास में मुनिश्री हेमराजजी के साथ ४५ दिन का तप किया[3]।
(१२) सं० १८८९ के बारहवें चातुर्मास में ३६ दिन का तप किया।
(१३) सं० १८९० के तेरहवें चातुर्मास में ६ दिन तथा डेढ़ महीना एकांतर तप किया।
(१४) सं० १८९१ के चौदहवें चातुर्मास में १० दिन का तप किया।

इन १४ चातुर्मासों में किसी चातुर्मास में पानी के आगार से तथा किसी चातुर्मास में आछ के आगार से तप किया।

फिर इसी वर्ष फाल्गुन शुक्ला १५ से आजीवन बेले-बेले तप करना स्वीकार किया।

(१५) सं० १८९२ के पन्द्रहवें चातुर्मास में पानी के आगार से मासखमण

---

१. शहर पीपाड़ में वर्ष छियासिये, मास उदयचंद धारी।
दिवस एक सौ छियासी दीसवो, कीया छै आछ आगारी॥
(हेम नवरसो ढा० ९ गा० ४)

२. सित्यासीये बरस श्रीजीदुवारे, कीय पाणी रे आगारी।
दिवस इकतीस किया बिन उदयचंद, मास उदै अधिकारी॥
(हेम नवरसो ढा० ९ गा० ५)

३ बरस अठासीये शहर गोगुंदे, उदयचंद उदै धीर स्वामी।
हेम समांद किया तप भारी, चोतीस तीस ...
(हे... ९ गा० ६)

इस प्रकार मुनिश्री के सतोले शब्दो को सुनकर सभी हर्षित हुए और मुनि जीवोजी ने आजीवन तीनो आहारो (अशन, खादिम, स्वादिम) का परित्याग करवा दिया। मुनि जीवोजी व गुलाबजी ने अध्यात्म पद आदि सुनाकर उन्हें बहुत-बहुत सहयोग दिया। उनकी ससार-पक्षीया भगिनी साध्वीश्री मयाजी (८६) साध्वियों के साथ मुनि जीवोजी के अनशन पर पहुच गयी। मुनिश्री के भाव उत्तरोत्तर बढते-बढते रहे। चतुर्विध सघ मुनिश्री की वीरवृत्ति की मुक्त कठो से प्रशसा करने लगा और मुख-मुख पर धन्य-धन्य की ध्वनि गूजने लगी[1]।

मुनिश्री का संथारा कुछ दिन तक चलेगा, ऐसी सभावना थी लेकिन २२ प्रहर मे ही (तीन दिन लगभग) सपन्न हो गया और स० १८६३ फाल्गुन शुक्ला ३ गुरुवार को पुर मे मुनिश्री समाधिपूर्वक प्रस्थान कर गए—

समत अठारै त्राणूए, फागण सुदि हो तीज नें गुरुवार।
दीप ऋष परलोक पधारिया, बावीस पोहर नो हो आयो सथार॥
च्यार तीर्थ उच्छरग पाया घणो, पुर क्षेत्र हो सुविनीत श्रीकार।
जिन मार्ग कलश चढ़ावियो, धिन-धिन हो तपसी नो अवतार॥

(जय कृ० दी० गु० व० ढा० १ गा० २३, २४)

जयाचार्य ने मुनिश्री के गुणानुवाद की एक गीतिका बनायी। उसमे उनके

---

१. सोलमो चोमासो भीलोड़े कियो, छठ-छठ हो तप करता तिवार।
दोय वर्ष आसरै छठ तप कियो, विचरत आया हो पुर सैंहर मझार॥
कायक असाता ऊपनी, मुनि पचख्यो हो सागारी सथार।
तपसी रा परिणाम तीखा घणा, चित्त उज्जल हो भावे भावना सार॥
फागुण विद अमावस दिन पाछिले, मुनि बोल्यो हो ततखिण धर प्रेम।
पको संथारो मोनै पचखाय हो, तीन आहार ना हो कराओ मुझ नेम॥
लघु बधव गुलाब ऋष इम कहै, तपसीजी हो सथारो दुक्करकार।
तपसी कहै धान धूल समान छै, सूरा वीरां हो नही दुक्कर लिगार॥
निद्रा मे जो निकसै प्राण माहरा, विण सथारे हो तो हू कर जाऊ काल।
दोय मास ताइ चिता मत करो, इम सांभल नै हो सहु हरख्या ततकाल॥
लघु भाई सथारो पचखावियो, चित्त उज्जल हो दियो धर्म नो साझ।
मया बाई आदि आरजीयां आवी मिली, विस्तरियो हो जग जग अवाज॥
धिन-धिन तपसी रा परिणाम नैं, मन कीधो हो मुनि मेर समान॥
धिन-धिन तपसी रा वैराग नैं, धिन-धिन हो तपसी रो शुभ ध्यान।
धिन २ धिन २ मुख ऊचरै, च्यारू तीर्थ हो करै गुण तहतीक।
धिन धिन तपसी रो सूरापणो, धिन धिन हो तपसी साहसीक॥

(जय कृ० दी० गु० व० ढा० १, गा० १५ से, २२)

(१) १८७८ के प्रथम चातुर्मास में मासखमण।
(२) १८७९ के दूसरे ,, ,, ३६ दिन।
(३) सं० १८८० के तीसरे चातुर्मास में १२५ दिन।
(४) सं० १८८१ के चौथे ,, ,, मासखमण।
(५) सं० १८८२ के पांचवें ,, ,, १५५ दिन।
(६) सं० १८८३ के छठे ,, ,, मासखमण।
(७) सं० १८८४ के सातवें ,, ,, ८ दिन।
(८) सं० १८८५ के आठवें ,, ,, ८ दिन।
(९) सं० १८८६ के नौवें पीपाड़ चातुर्मास में मुनि हेमराजजी (३६) के साथ छहमासी तप किया[1]।
(१०) सं० १८८७ के दसवें नाथद्वारा चातुर्मास में मुनि हेमराजजी के साथ ३१ दिन का तप किया[2]।
(११) सं० १८८८ के ग्यारहवें गोगुंदा चातुर्मास में मुनिश्री हेमराजजी के साथ ४५ दिन का तप किया[3]।
(१२) सं० १८८९ के बारहवें चातुर्मास में ३६ दिन का तप किया।
(१३) सं० १८९० के तेरहवें चातुर्मास में ९ दिन तथा डेढ़ महीना एकान्तर तप किया।
(१४) सं० १८९१ के चौदहवें चातुर्मास में १० दिन का तप किया।

इन १४ चातुर्मासों में किसी चातुर्मास में पानी के आगार से तथा किसी चातुर्मास में आछ के आगार से तप किया।

फिर इसी वर्ष फाल्गुन शुक्ला १५ से आजीवन बेले-बेले तप करना स्वीकार किया।

(१५) सं० १८९२ के पन्द्रहवें चातुर्मास में पानी के आगार से मासखमण

---

१. शहर पीपाड़ में वर्ष छियासिये, मास उदयचंद धारी।
दिवस एक सौ छियांसी दीपजी, कीधा छै आछ आगारी॥
(हेम नवरसो ढा० ६ गा० ४)

२. सित्यासीये वरस श्रीजीदुवारे, दीप पाणी रे आगारी।
दिवस इगतीस किया चित उज्जल, मास उदै अधिकारी॥
(हेम नवरसो ढा० ६ गा० ५)

३. वरस अठासीये शैहर गोघुंदे, उत्तम उदै दीप म्हासी।
हेम प्रसाद कियो तप सखरो, चोतीस तीस पैंतासी॥
(हेम नवरसो ढा० ६ गा० ६)

इस प्रकार मुनिश्री के सलोने शब्दों को सुनकर सभी हर्षित हुए और मुनि जीवोजी ने यावज्जीवन तीनों आहारों (अशन, खादिम, स्वादिम) का परित्याग करवा दिया। मुनि जीवोजी व गुलाबजी ने अध्यात्म पद आदि सुनाकर उन्हें बहुत-बहुत सहयोग दिया। उनकी संसार-पक्षीया भगिनी साध्वीश्री सयांजी (८६) साध्वियों के साथ मुनि दीपोजी के अनशन पर पहुंच गयी। मुनिश्री के भाव उत्तरोत्तर बढ़ते-बढ़ते रहे। चतुर्विध संघ मुनिश्री की वीरवृत्ति की मुक्त कंठों से प्रशंसा करने लगा और मुख-मुख पर धन्य-धन्य की ध्वनि गूंजने लगी[1]।

मुनिश्री का संथारा कुछ दिन तक चलेगा, ऐसी संभावना थी लेकिन २२ प्रहर में ही (तीन दिन लगभग) संपन्न हो गया और सं० १८६३ फाल्गुन शुक्ला ३ गुरुवार को पुर में मुनिश्री समाधिपूर्वक प्रस्थान कर गए—

संमत अठारै त्राणूए, फागण सुदि हो तीज नैं गुरुवार।
दोय पहुर परलोक पधारिया, बावीस पोहर नो हो आयो संथार।।
च्यार तीर्थ उच्छरंग पाया घणो, पुर क्षेत्र हो सुविनीत श्रीकार।
जिन मार्ग कलश चढ़ावियो, धिन-धिन हो तपसी नो अवतार।।

(जय कृ० दी० गु० व० ढा० १ गा० २३, २४)

जयाचार्य ने मुनिश्री के गुणानुवाद की एक गीतिका बनायी। उसमें उनके

---

१. सोलमो चोमासो भीलोड़े कियो, छठ-छठ हो तप करता तिवार।
दोय वर्ष आसरै छठ तप कियो, विचरत आया हो पुर सैहर मझार।।
कायक असाता ऊपनी, मुनि पचख्यो हो सागारी संथार।
तपसी रा परिणाम तीखा घणा, चित्त उज्जल हो भावे भावना सार।।
फागुण विद अमावस दिन पाछिले, मुनि बोल्यो हो तत्क्षिण धर प्रेम।
पक्को संथारो मोनैं पचखाय द्यो, तीन आहार ना हो कराओ मुझ नेम।।
लघु बंधव गुलाब ऋष इम कहै, तपसीजी हो संथारो दुक्करकार।
तपसी कहै धान धूल समान छै, सूरां वीरां हो नहीं दुक्कर लिगार।।
निद्रा में जो निकसै प्राण माहरा, विण संथारे हो तो हूं कर जाऊं काल।
दोय मास ताई चिंता मत करो, इम सांभल नै हो सहु हरख्या ततकाल।।
लघु भाई संथारो पचखावियो, चित्त उज्जल हो दियो धर्म नो साझ।
सयां बाई आदि आरजीयां आवी मिली, विस्तरियो हो जग जश अवाज।।
धिन-धिन तपसी रा परिणाम नैं, मन कीधो हो मुनि मेर समान।।
धिन-धिन तपसी रा वैराग नैं, धिन-धिन हो तपसी रो शुभ ध्यान।
धिन २ धिन २ मुख ऊचरै, च्यारू तीर्थ हो करै गुण तहतीक।
धिन धिन तपसी रो सूरापणो, धिन धिन हो तपसी साहसीक।।

(जय कृ० दी० गु० व० ढा० १ गा० १५ से २२)

चित्रकला तथा लेखनकला मे भी वे बड़े निपुण थे। लेखन, सिलाई आदि कार्य दोनों हाथो से करते थे। चालीस पन्नो मे भगवती सूत्र (मूलपाठ) को लिपिबद्ध किया जो सूक्ष्म लिपि व कला का एक सुन्दर प्रतीक है और भी अनेक ग्रथो की प्रतिलिपि की। उनकी कठकला मधुर और व्याख्यानशैली सुन्दर थी। हेतु दृष्टान्त व राग-रागिनियो की अच्छी जानकारी थी। अनेक गावो के लोग उनका व्याख्यान सुनने के लिए आते और प्रभावित होते। इत्यादिक विशेषताओं से उनकी सुयश-सुरभि जन-जन मे फैल गयी।

(ख्यात)

६. आचार्यों के अतिरिक्त साधु-वृन्द मे साहित्य रचना करने वाले मुनि वेणीरामजी (२६) व हेमराजजी (३६) सर्वप्रथम हुए। उसके बाद मुनि जीवोजी ने उस क्षेत्र मे प्रवेश कर साहित्य का निर्माण किया। यद्यपि उनकी रचना अधिक सक्षिप्त होती थी फिर भी शासन विलास औपदेशिक गीत तथा आगमो की जोड आदि लगभग १० हजार पद्यो की रचना कर साहित्य वृद्धि मे अपना हाथ बढाया। उनके द्वारा निर्मित साहित्य की सूची इस प्रकार है—

| (क) आगमों की जोड़ | रचनाकाल | स्थान |
|---|---|---|
| १. निरावलिका | स० १६१३ आषाढ वदि १ | टाटगढ़ |
| २. निशीथ | स० १६१३ आषाढ वदि ११ | देवगढ |
| ३. वृहत्कल्प | स० १६१३ आषाढ़ सुदि ६ | ,, |
| ४. व्यवहार | सं० १६१४ सावण वदि ६ | ,, |
| ५. विपाक | स० १६१४ फागुण शुक्ला ४ | लावा |
| ६ ज्ञाता | | |
| ७. उपासकदशा | | |
| ८. अतगड़ | | |
| ९. अनुत्तरोपपातिक | | |
| १०. प्रश्नव्याकरण | सं० १९१६ | सिरोही |
| ११. दशाश्रुतस्कध | | |

(ख) ऐतिहासिक

१ शासनविलास

२. भिक्षु दृष्टान्तों की जोड सं० १६२१ भादवा सुदि ११

३. आचार्यों के गुणानुवाद की गीतिकाएं—

(१) धन धन भिक्षु स्वाम दीपाई दान दया'''इत्यादिक। स० १ माघ, लाडनूं।

का स्थान जीवन का सम्यग् प्रतिपादन किया है। अन्य गीतिकाओं में भी उनका स्मरण किया है—

> दीप गणीनो दीप बडो गण सार के, पट्टगामी गणना करी जी।
> तरमत पोङ्गा बाल कर मनार के, त जिम भणा भारीमाल रा जी॥
>
> (संत गुणमाला ढा० ४ गा० ३२)

५. मुनिश्री जीवोजी बाल्यावस्था में दीक्षित होकर संयम में रमण करते हुए गुरुदेव के निर्देशानुसार शिक्षार्जन करने लगे। उन्होंने सं० १८७८ का प्रथम चातुर्मास आचार्यश्री भारीमालजी की सेवा में किया।[1]

सं० १८७९, ८० और ८१ में अनुमानतः वे आचार्यश्री रायचन्दजी के साथ थे।

सं० १८८१ पौष शुक्ला ३ को पाली में आचार्यश्री रायचन्दजी ने मुनिश्री जीतमलजी को अग्रणी बनाया तब मुनिश्री जीवोजी को मुनि जीतमलजी के साथ दिया।[2]

उसके बाद के चातुर्मास उपलब्ध नहीं हैं। सं० १८९१ में आचार्यश्री ऋषिराय ने मुनि दीपोजी का सिंघाड़ा किया तब संभवतः मुनि जीवोजी को उनके साथ दिया। सं० १८९२ का चातुर्मास स्थान प्राप्त नहीं है। सं० १८९३ में उनके साथ भीलवाड़ा चातुर्मास किया जो दीप गुण व० ढाल से प्रमाणित है।

सं० १८९३ में मुनि दीपोजी के दिवंगत होने पर आचार्यश्री ने मुनि जीवोजी का सिंघाड़ा[3] बनाया ऐसा प्रतीत होता है। क्योंकि सं० १८९५ में उनके द्वारा दीक्षा देने का उल्लेख मिलता है।

मुनिश्री ने श्रमपूर्वक अध्ययन कर विद्वान् मुनियों की कोटि में अपना स्थान प्राप्त कर लिया। कितने सूत्र व आख्यान आदि कंठस्थ किए। ३२ सूत्रों का वाचन कर तत्त्वचर्चा एवं बोलचालों की अच्छी धारणा की। सिलाई, रंगाई,

---

१. नवमो नाम्हो जीवो साध, ते पिण चोमासे खरो जी।
इण केलवे शहर समाध, ओ नव साधां रो ग्रहो जी॥
(भारीमाल चरित्र ढा० ७ गा० ११)

२. जीत अनें वर्द्धमानजी रे, कर्मचन्द नें इकतार।
जीवराज साध गुणी रे, यानें मेल्या देश मेवाड़॥
(ऋषिराय चरित्र ढा० ८ गा० १२)

सं० १८८२ का चातुर्मास उन्होंने मुनि जीतमलजी के साथ उदयपुर किया।
(जय सुजश ढा० १० गा० ६, ७)

३. मुनिश्री स्वरूपचंदजी द्वारा दीक्षित ५ साधु अग्रणी बने, उनमें एक मुनि जीवोजी थे (मुनि स्वरूप—ख्यात)।

८ साधु थे उनके नाम भी यहां एक दोहा में दिए गए हैं—

चेतन (क्रमांक-८९), उदैचंद (६४), जीव ऋषि (१११), वीरभाण (१३५), रूपचंद (१३४)। भवानजी (१२०), माणक (६६), मन बसियें, कालू (११३) करे आनंद ।।

सं० १९११ ठाणा ३ रामनगर।

मुनि जीवोजी रचित सं० १९११ के चातुर्मास विवरण की ढाल १ गा० ४ में इसका उल्लेख है।

सं० १९१४ ठाणा ५ देवगढ़।

वहां उन्होंने श्रावण कृष्णा ६ के दिन व्यवहार सूत्र की जोड़ की थी।

सं० १९१६ आमेट।

वहां चातुर्मास के समय उन्होंने उत्तराध्ययन सूत्र की प्रतिलिपि की थी।

८. मुनिश्री ने ९ दीक्षाएं दीं, उनकी सूची इस प्रकार है—

(क) साधु—

१. मुनिश्री खूबचन्दजी (१४५) को सं० १९०२ में दीक्षा दी

२. „ किस्तूरजी (१८५) को सं० १९१८ „ „।

(बाद में गणबाहर)

(ख) साध्वियां—

१. साध्वी श्री नन्दूजी (१६७) को सं० १८९६ वैशाख वदि ५ को आंजणे में दीक्षा दी।

२. „ रभाजी (२२०) को सं० १९०१ जेठ सुदी १२ को पदराड़ा में दीक्षा दी।

३. „ नोजाजी (२३६) को सं० १९०३ फाल्गुन शुक्ला ५ को दीक्षा दी।

४. „ साकरजी (२९९) को सं १९१२ जेठ वदि १० को दीक्षा दी।

५. „ नोजांजी (३००) को „ „ „ ।

६. „ मगदूजी (३०१) को „ „ „ ।

७. „ नोजांजी (३४१) को सं० १९१९ जेठ वदि १० को ताल ग्राम में दीक्षा दी।

(उक्त साधु-साध्वियों की ख्यात के आधार से)

९. एक बार मुनि जीवोजी तथा मुनि ताराचन्दजी (११६) ने नागौर से विहार किया। रास्ते में ताराचंदजी गण से अलग हो गए। मुनिश्री का शरीर उस समय अस्वस्थ था। ग्रीष्म ऋतु थी। वे अकेले खालड़ गांव में गये। वहां साध्वीश्री नगाजी (७६) विराजती थीं। मुनि जीवोजी को वहां २७ रात्रि रहना पड़ा। बाद में आचार्यश्री रायचंदजी के दर्शन किए तब आचार्यश्री ने फरमाया—

(२) गण लायक पद लायक निरखो...इत्यादिक।

४. साधु-साध्वी गुण वर्णन गीतिकाएं—

(१) मुनिश्री भगजी (४७) १६०० वैशाख जसोल

(२) „ भागचंदजी (४८) १८९७ आषाढ़ सुदी १३ लाडनूं

(३) „ मोजीरामजी (५४)

(४) „ हीरजी (७६) १८९३ आसोज वदि ३ भीलवाड़ा

(५) „ शिवजी (८२)

(६) „ दीपोजी (८५) ढालें ५

(७) „ अनोपचंदजी (११४) ढाल १, सं० १८९२ चैत्र वदि ८ गुरुवार कुष्टानपुर (कोठारिया)

(८) साध्वी मयांजी (८६) ढाल २

(९) साध्वी नवलाजी (२८५) सं० १९१२ नाथद्वारा

## चातुर्मासादिक

१. जयाचार्य के स० १९१३ के उदयपुर चातुर्मास आदि का विवरण।

२. जयाचार्य के स० १९१३ के चातुर्मास के पश्चात् का वर्णन।

३. स० १९१३ के साधु-साध्वियों के चातुर्मासो का विवरण ढा० २।

४. तपस्वी साधु-साध्वियों के स्मरण की ढाल १।

उक्त तालिका के अतिरिक्त कुछ आख्यान व गीतिकादिक और भी हैं पर वे उपलब्ध नहीं होते।

७. मुनिश्री ने अग्रगण्य की अवस्था मे विचरकर धर्म का अच्छा प्रचार-प्रसार किया और जन-जन को प्रतिबोध देकर शासन की गरिमा को बढ़ाया। उनके चातुर्मासो की उपलब्ध तालिका इस प्रकार है—

स० १८९३ भीलवाड़ा (जयकृत दी० गु० व० ढा० १ गा० १५)

स० १८९७ बोरावड़

सं० १८९७ कार्तिक वदि १ बोरावड़ मे उन्होंने भगवती सूत्र (४० पत्र) की प्रतिलिपि की थी। इससे उनका उक्त चातुर्मास निर्णीत होता है।

स० १८९८ लाडनूं

स० १८९७ आषाढ़ शुक्ला १३ को लाडनूं मे मुनि जीवोजी ने मुनि भागचन्दजी (४८) के गुणों की ढाल बनायी थी इससे उक्त चातुर्मास का निर्णय किया गया है।

सं १९१२ नाथद्वारा (मुनि स्वरूपचन्दजी की सेवा मे)

मुनि जीवोजी रचित साध्वी नवलांजी (२८५) के गुण वर्णन की ढाल के आधार मे उक्त चातुर्मास प्रमाणित होता है। उस वर्ष मुनि स्वरूपचन्दजी के साथ

१. मुनिश्री मोडजी चंदेरा (मेवाड) के वासी थे, ऐसा 'चामत्कारिक तप विवरण संग्रह' में लिखा हुआ है। जाति का उल्लेख नहीं मिलता।

उन्होंने सं० १८७७ चैत्र शुक्ला ८ को दीक्षा स्वीकार की। दीक्षा कहां और किसके द्वारा ली इसका उल्लेख नहीं मिलता। वे आचार्यश्री भारीमालजी के अन्तिम शिष्य हुए।

'चरण मोडजी वर्ष सितत्तरे'

(शासन विलास ढा० ३ गा० ४४)

ख्यात आदि में दीक्षा सं० १८७८ लिखा है जो चैत्रादि क्रम से समझना चाहिए।

२. मुनिश्री बड़े विनयी, विरागी, नीतिमान्, प्रकृति से सरल थे। उन्होंने यथाशक्य ज्ञान-ध्यान का विकास किया और विविध गुणों को सजोया।

(ख्यात)

३. मुनिश्री बड़े घोर तपस्वी हुए (ख्यात में काकडी मूल लिखा है), 'तप सूर अणगार' की सूक्ति को सार्थक करते हुए इस प्रकार तप के मैदान में आए कि मानो कोई बलिदानी योद्धा रणस्थल में डटकर खड़ा हो गया हो। उनकी घोर तपस्या का वर्णन करते हुए शरीर में रोमांच हो जाता है और मन आश्चर्य से भर जाता है। उनका नाम युगों-युगों तक तपस्वी मुनियों के इतिहास में स्वर्ण-पंक्ति में अंकित रहेगा। उन्होंने उपवास, बेले, तेले, चोले अनेक बार किए। इससे ऊपर के आंकड़े इस प्रकार हैं—

| ५ | ६ | ८ | ११ | १८ | ३० | ३१ | ३२ | ३३ | ४६ | ४७ | ५७ | ६३ | ६४ | ६६ |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| २ | १ | १ | ३ | १ | १ | १ | २ | २ | १ | १ | १ | १ | १ | १ |

| ७२ | ७५ | ७६ | ८६ | ९० | ९१ | ९२ | ९३ | १०७ | १०८ | १८१ | १८५ |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| १ | २ | १ | १ | १ | १ | २ | १ | १ | १ | १ | १ |

यह तप प्राय: आछ के आगार से तथा कुछ छाछ के आगार से किया।

(ख्यात, शासन प्रभाकर ढा० ४ गा० २४७ से २६१)

शासन विलास ढा० ३ गा० ४४ की वार्तिका में पचोला एक है तथा १८ की तपस्या का उल्लेख नहीं है अन्य तपस्या उपर्युक्त ही है।

उक्त दो छहमासियों में एक छहमासी उन्होंने सं० १९१२ के मोखणदा चातुर्मास में की थी। उनके साथ मुनि सूबजी (१३५) ने भी १९३ दिन का तप किया था। चातुर्मास के पश्चात् स्वयं जयाचार्य ने वहां पधारकर दोनों मुनियों को अपने हाथ से पारणा कराया था—

'हिवै मोखणदे आया मुनिपति, आ
मोडजी तपसी नो छ मासी नो, प

# प्रस्तावना ।

ृत्ति प्रधान है। उसके उपदेष्टा तीर्थंकरों ने आत्मा
रूप बहुत विस्तार से वर्णन करते हुए प्रत्येक
भोग विलासों से अलग होकर आत्मस्वरूप में
परमात्मस्वरूप बन सकता है, इसी पर जोर
र्म मे ईश्वर या परमात्मापद प्राप्ति का ठेका किसी
नही मानते हुए प्रत्येक प्राणी को अपने पुरुषार्थ
कर सकने का विधान है। अतः जैन दृष्टिकोण से
न, पूजन और भक्ति उन्हें खुश करने के लिए
प की प्राप्ति में वे निमित्त कारण हैं यही मान कर
नके दर्शन, वंदन व भक्ति से हमें अपने परमात्म-
व भान होता है और उनके बतलाये हुए मार्ग पर
परमात्मा बन सकतो है। इसीलिये उनके गुणानुवाद
त-स्तवन जैन कवियों ने बनाये हैं जिनमे से भक्ति
तत्त्व विचारणामय चौईस तीर्थंकरों के स्तवनों में
नजी की चौवीसी के बाद श्रीमद् देवचंद्रजी रचित
एव अतीत चौवीसी का उल्लेखनीय स्थान है।

चंद्रजी खरतर-गच्छ के विद्वान थे। आपका जन्म
कटवर्त्ती ग्राम में सं० १७४६ में हुआ था। सं० १७५६
ा ग्रहण की। प्रारम्भ से ही आपका झुकाव आध्या-
ओर अधिक रहा फलतः २० वर्ष की यौवनावस्था में
और आध्यात्मिक रस से सराबोर "ध्यानदीपिका
क ग्रन्थ की रचना की। सं० १७६६ से स० १८१२
आर जीवित रहे—निरंतर जैन तत्त्वज्ञान और
विषयों पर ग्रन्थ रचना करते रहे। इन सब का
बुद्धिसागर सुरिजी ने करवा कर आध्यात्म ज्ञान